"मनुष्य जैसे आर्थिक स्थिति की समीक्षा करता है, उसी प्रकार उसे अपने जीवन-व्यवहार की भी समीक्षा करनी चाहिये। प्रत्येक को सोचना चाहिये कि मेरा जीवन कैसा होना चाहिये? वर्तमान में कैसा है? उसमें जो कमी है, उसे दूर कैसे किया जाए? यदि यह कमी दूर न की गयी तो क्या परिणाम होगा? इस प्रकार जीवन की सही-सही आलोचना करने से आपको अपनी बुराई-भलाई का स्पष्ट पता चलेगा। आपके जीवन का सही चित्र आपके सामने उपस्थित रहेगा। आप अपने को समझ सकेंगे।

ब्यावर, ८ सित. १९४१ —मुनिश्री चौथमलजी म.

भारत-भूषण

एक बात : सरल और अनुभवगम्य

'क्रोध और ताक़त का दबाव कोई स्थायी दबाव नही है। शान्ति, क्षमा और प्रेम के दबाव मे ही यह शक्ति है कि दबा हुआ व्यक्ति फिर कभी सिर नही उठाता और न लड़ने आता है। यह एक ऐसी सरल और अनुभवगम्य बात है कि संसार के इतिहास से सहज ही समझी जा सकती है; फिर भी आश्चर्य है कि बुद्धिमान कहलाने वाले राजनीतिज्ञ इसे नही समझ पाते और पागलो की तरह शस्त्रास्त्र तैयार करके एक-दूसरे पर चढ़ बैठते है। अब तक के युद्धो से ये लोग जरा भी शिक्षा नही लेते।

—मुनि चौथमल

जैन दिवाकरजी : एक पारस-पुरुष

"उनकी वाणी में, वस्तुतः, एक अद्भुत-अपूर्व पारस-स्पर्श था, जो लौह चित्त को भी स्वर्णिम कान्ति-दीप्ति से जगमगा देता था। उनका प्रवचनामृत हज़ार-हज़ार रूपों में बरसा था। राजा-महाराजाओं से लेकर अछूतों, भील-भिलालों और मज़दूरों तक उनकी कल्याणकारी वाणी पहुँची थीं। वे सघन अन्धकार में प्रखर प्रकाश थे।

☐ आचार्य आनन्दऋषि

भारतीय संस्कृति की अन्तरात्मा है संत-संस्कृति, जो संतों की साधना-आराधना से ही अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित हुई है। वस्तुतः संतों की महिमाशालिनी चर्या और वाणी का इतिहास ही भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का इतिहास है। अतीत के अगणित संत-महात्माओं की जीवनी आज भी प्रेरणा का अजस्र-प्रखर स्रोत है। ऐसे ही थे श्रमण संस्कृति की गौरवमयी संत-परम्परा के महान् संत जैन दिवाकर, प्रखर वक्ता श्री चौथमलजी महाराज। उनके दर्शन करने का परम सौभाग्य मुझे सर्वप्रथम मिला मनमाड़ में। लम्बा कद, विशाल देह, गेहुँआ रंग, दीप्त-तेजोमय-शान्त मुखछबि, उन्नत भाल आज भी मेरे स्मृति-पटल पर ज्यों-का-त्यो विद्यमान है।

तब स्थानकवासी समाज में अलग-अलग अनेक संप्रदाय थे। वह युग था जब संतवर्ग एक-दूसरे के साथ व्यवहार-संबन्ध रखने में भी झिझक का अनुभव करता था। ऐसे विषम समय भी हम एक ही स्थान पर ठहरे थे। परस्पर आत्मीयतापूर्ण व्यवहार रहा। उन्होने मुझे उस समय यही सुझाव दिया था कि तुम्हें अपने संप्रदाय को सुसंगठित करना चाहिये। सभी को एक मंच पर मिल-बैठकर विधान आदि पर विचार-विमर्श करना चाहिये। उनका सुझाव शत-प्रतिशत अनुकरणीय था, क्योंकि संगठन में ही बल है, उत्कर्ष है। कलयुग में जन, धन, राज्य, अणु आदि कई शक्तियाँ है; किन्तु इन सब मे सर्वोपरि शक्ति 'संघ-शक्ति' है। 'यूनाइटेड वी स्टेड, डिवाइडेड वी फाल'—स्वामी विवेकानन्द का यह दिव्य घोष सभी के लिए सार्थक एवं अनुसरणीय है। इस तरह दो-चार दिन उनसे खूब खुलकर बातचीत हुई। परस्पर मधुर व्यवहार और अभूतपूर्व स्नेह रहा; इसके बाद भी कई बार मिलने के मौके आये और सौहार्द्र उत्तरोत्तर बढ़ता गया। कुछ वर्षों बाद संगठन की हवा चली। ब्यावर मे नौ संप्रदायों के प्रमुख संतों का मिलन हुआ, उसमें ऋषि-संप्रदाय की ओर से मै उपस्थित हुआ। अपने-अपने पूर्वपदों को छोड़कर सब का एक समुद्र बना, सब का विलीनीकरण हुआ। उस समय जैन दिवाकरजी ने 'वर्धमान

संघ' के आचार्यपद के चुनाव की बात कही और उसके लिए मेरा नाम सुझाया। वे स्वयं किसी पद के लिए उत्कण्ठित नही थे; इससे उनकी उदारता, संगठन के प्रति उत्कट प्रेम, सहिष्णुता तथा उदात्त विचार के दर्शन होते थे। संगठन के पूर्व भी उनके अनुयायी क्षेत्रो में जहाँ भी मेरा जाना हुआ, वहाँ उन्होंने संतों और श्रावकों को मुझे पूर्ण सहयोग देने का इशारा किया। इन सब प्रसंगो पर मुझे उनकी उदार आँखो के भीतर छलकती निष्काम-अकलुष आत्मीयता दिखायी दी थीं।

जैन दिवाकरजी ओजस्वी वक्ता भी थे। वाणी का चमत्कार उनके व्यक्तित्व की एक अन्यतम विशेषता थी। उनकी वाणी में, वस्तुत: एक अद्भुत-अपूर्व पारस-स्पर्श था, जो लौह चित्त को भी कान्ति और दीप्ति से झलमला देता था। उनकी प्रवचन-पीयूषधारा हजार-हजार धाराओं में प्रवाहित हुई थी। राजा-महाराजाओं से लेकर मजदूरो के झोपड़ों तक उनकी कल्याणकर वाणी पहुँची थी और उसने अंधेरे में रोशनी पहुँचाई थी। उनकी भाषा में मधुराई थी, मंजुल और प्रभविष्णु मुखाकृति के कारण वे जहाँ भी गये सहस्र-सहस्र जनमेदिनी ने उनका अभिनन्दन किया, अपने पलक-पाँवड़े बिछा दिये। कई राजाओं ने उनके प्रवचन सुनकर अपनी-अपनी राज्य-सीमाओ मे हिंसा रोकने का प्रयत्न किया। उनकी वत्सलता बड़ी वरदानी थी, इसीलिए अछूतो को गले लगाकर, जैनधर्म मे उन्हे प्रवेश देकर उन्होंने एक ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत किया। यह था उनके पतितपावन व्यक्तित्व का प्रभाव।

उनकी साहित्य-साधना भी अनूठी थी। दिवाकर-साहित्य मे से काव्य-साहित्य खूब लोकप्रिय हुआ। जनता-जनार्दन के कण्ठ में आज भी उसकी अनुगूँज है।

मैने मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशो मे भी विहार किया। वहाँ भी स्थान-स्थान पर उनकी कीर्ति-कथाएँ सुनीं। मेरे खयाल से उनके जीवन की सब में बड़ी उपलब्धि एक यह भी है कि मैने उनके विषय मे कोई अपवाद नही सुना।

जब मैने कोटा मे उनके देहावसान का दु:खद संवाद सुना तब मेरे मन को गहन चोट लगी। शीघ्र ही हम सब ब्यावर मे पुन: एकत्रित हुए। आचार्य होने के नाते मेरी उपस्थित लगभग अपरिहार्य थी। उनके प्रति मेरी अगाध श्रद्धा है। जब मै कोटा गया तब उनकी पुण्य-पुनीत स्मृति में 'दिवाकर जैन विद्यालय' चलाने की प्रेरणा देकर आया था। विद्यालय मेरी उपस्थिति मे ही खुल गया था; प्रसन्नता है कि वह विकासोन्मुख है और आवश्यक उन्नति कर रहा है। □

लालटेन किसलिए?

'एक अन्धा हाथ में लालटेन लेकर पानी लेने गया। जब लौट रहा था तब उसे एक सूझता आदमी मिला। उसने पूछा–'सूरदास, तुम क्यो वृथा तेल खर्च करते हो?' अंधे ने उत्तर दिया–'तुम्हारे जैसों के लिए। तुम जैसे सामने आ जाते और मेरे हाथ मे लालटेन न होती तो तुम मुझसे टकरा जाते!'

चौथमल : एक शब्दकथा

"चौथ हर पखवाड़े हमारा द्वार खटखटानेवाली एक तिथि है। सामान्य जन इसे 'चौथ' कहता है। ज्योतिष में 'चौथ' को रिक्ता कहा गया है। जैनागमों में चारित्र को रिक्तकर कहा है। इस तरह 'चौथ' और 'चारित्र' निर्जरा और निर्मलता के जीते-जागते प्रतीक हैं। जो कर्ममल को प्रतिफल तिलांजलि देते चले वे थे अन्धविश्वासों के अन्धकार को छिन्न-भिन्न करनेवाले मनस्वी महर्षि चौथमलजी महाराज।

☐ मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

मैंने स्व. जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन बृहत्साधु सम्मेलन के अवसर पर अजमेर में किये थे। यद्यपि सीमित शब्दों में उनके असीमित साधुत्व का अंकन संभव नही है तथापि जन्मशताब्दि-वर्ष के इस पुनीत प्रसंग पर उस महान् व्यक्तित्व का कुछ पंक्तियों मे परिचय लिखना मेरे स्वयं के तथा अन्य मुमुक्षु सुधीजनों के लिए श्रेयस्कर है।

१. सर्व साधारण की भाषा में 'चौथ' प्रतिपक्ष आने वाली एक तिथि है। ज्योतिष की भाषा में 'चौथ' रिक्ता तिथि है। जैनागमों में चारित्र को रिक्तकर कहा है। चारित्र की व्युत्पत्ति है–'चयरित्तकरं चारित्तं' अर्थात् अनन्तकाल से अर्जित कर्मो के चय, उपचय, संचय को रिक्त (निःशेष) करने वाला अस्तित्व चारित्र है। इस तरह चरित्र को 'चौथ' तिथि के नाम से 'मल' अर्थात् धारण करने वाले हुए श्री चौथमलजी महाराज।

२ मोक्ष के चार मार्गों मे चौथा मार्ग है तप। तप आत्मा के अन्तहीन कर्ममल की निर्जरा करने वाला है–'भवकोडी संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ'। इस तरह तप की आराधना का सूचक नाम धारण करनेवाले थे स्व. चौथमलजी महाराज। आपने तथा आपके तपोधन अन्तेवासियों ने बाह्याभ्यन्तर तपाराधनापूर्वक मुक्ति की राह का अनुसरण कर अपना नाम चरितार्थ किया।

३. पाँच महाव्रतों में चौथा महाव्रत ब्रह्मचर्य है। यह महान् व्रत ही ब्रह्म (आत्मा) को परमब्रह्म (परमात्मा) में उत्थित करनेवाला है। विश्व में यही सर्वोत्तम व्रत है। इसकी आराधना में सभी व्रतों की आराधना सन्निहित है। यह शेष महाव्रतों का कवच है, मूल है–'पंचमहव्वय सव्वय मूलं'। इस मूल महाव्रत के नाम से अपने नाम को सार्थक करनेवाले थे स्व. श्री जैन दिवाकरजी महाराज।

चातुर्मास-द्योतक मानचित्र (वि स १९५३ से २००७)

चातुर्मास . २७ स्थानो पर ५५, वर्षानुक्र से इस प्रकार---झालरापाटन (वि. सं. १९५३), रामपुरा (१९५४), बड़ी सादड़ी (१९५५), जावरा (१९५६), रामपुरा (१९५७), मन्दसौर (१९५८), नीमच (१९५९), नाथद्वारा (१९६०), खाचरौद (१९६१), रतलाम (१९६२), कानोड़ (१९६३), जावरा (१९६४), मन्दसौर (१९६५), उदयपुर (१९६६); जावरा (१९६७), बड़ी सादड़ी (१९६८), रतलाम (१९६९), चित्तौड़ (१९७०), आगरा (१९७१), पालनपुर (१९७२),

जोधपुर (१९७३), अजमेर (१९७४), ब्यावर (१९७५), दिल्ली (१९७६), जोधपुर (१९७७), रतलाम (१९७८), उज्जैन (१९७९), इन्दौर (१९८०), घाणेराव सादड़ी (१९८१), ब्यावर (१९८२), उदयपुर (१९८३), जोधपुर (१९८४), रतलाम (१९८५), जलगाम (१९८६), अहमदनगर (१९८७), बंबई (१९८८), मनमाड़ (१९८९), ब्यावर (१९९०), उदयपुर (१९९१), कोटा (१९९२), आगरा (१९९३), कानपुर (१९९४), दिल्ली (१९९५), उदयपुर (१९९६), जोधपुर (१९९७), ब्यावर (१९९८), मंदसौर(१९९९), चित्तौड़ (२०००), उज्जैन (२००१), इन्दौर (२००२), घाणेराव सादड़ी (२००२), ब्यावर (२००४), जोधपुर (२००५), रतलाम (२००६), कोटा (२००७)।

पदवियाँ : जगद्वल्लभ, प्रसिद्ध वक्ता, जैन दिवाकर

साहित्य-सृजन : भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, जम्बूकुमार, श्रीपाल, भविष्यदत्त, चम्पक सेठ, धन्ना, शालिभद्र, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ आदि चरित्र; आदर्श रामायण, जैन सुबोध गुटका, चतुर्थ चौबीसा आदि के अलावा कई उपदेशपरक स्तवन, निर्ग्रन्थ-प्रवचन का संपादन

लोकोपकार : लाखों लोगों द्वारा मांस-मदिरा, गांजा, भांग, तम्बाकू का त्याग; कई राजाओं द्वारा शिकार एवं पशुबलि का त्याग; प्रेरणा प्रदान कर कई शिक्षण-संस्थाओं, पांजरापोलों, वृद्धाश्रमों आदि लोकोपकारी संस्थाओं की स्थापना

शिष्य-परिकर : सर्वश्री मुनि शंकरलालजी, उपाध्याय प्यारचंदजी, कवि केवल-मुनिजी, तपस्वी माणकचन्दजी आदि विविध प्रतिभाओं के धनी ४० से अधिक शिष्य, तथा चन्दन मुनि, मूल मुनि, विमल मुनि, अशोक मुनि आदि अनेक प्रशिष्य

अवदान : संघ-ऐक्य के लिए "वीर वर्द्धमान श्रमण संघ" का निर्माण; अन्तिम वर्षायोग कोटा (राजस्थान) मे दिगम्बर आचार्य श्री सूर्यसागरजी और श्वेताम्बर आचार्य श्री आनन्दसागरजी के साथ सम्मिलित प्रवचन

दिवंगति : कोटा (राजस्थान); ७४ वर्ष के आरंभ मे, वि. सं. २००७ मार्ग-शीर्ष शुक्ला ९, रविवार

संयोग : जन्म– **रविवार**; दीक्षा– **रविवार**, दिवंगति– **रविवार**

मुनिश्री चौथमल-साहित्य

अष्टादश पाप-निषेध (पद्य)

आदर्श उपकार (राजा-महाराजाओ को दिये गये ओजस्वी प्रवचनो का संग्रह; मुनि प्यारचन्द)

आदर्श मुनि (प्रथम भाग, सामाजिक, धार्मिक, सदाचार, दयामयी आदि कार्यो का दिग्दर्शन)

आदर्श रामायण (पद्य)

उदयपुर का आदर्श चातुर्मास : (मुनि प्यारचन्द)

एक आलोकपुंज : जैन दिवाकर (संक्षिप्त जीवन-झांकी, सुभाष मुनि 'सुमन')

कृष्ण चरित्र (पद्य)

चतुर्थ रत्नमाला (पद्य)

चम्पक चरित्र (पद्य)

जम्बूकुमार (गद्य)

जैन गज़ल गुल चमन बहार

जैन गज़ल बहार

जैन दिवाकर : संस्मरणों के आइने में (रमेश मुनि)

जैन सुख चैन बहार (पद्य, भाग १ से ५)

जैन सुबोध गुटका (चार सौ चार गायनो का संग्रह)

ज्ञान गीत-संग्रह

त्रिलोक सुन्दरी चरित्र (पद्य)

दम्मन खां चरित्र (पद्य)

दिवाकर देन, (१, २, ३, चन्दनमुनि)

दिवाकर दिव्य ज्योति (भाग १ से २२, प्रवचन-मुनि श्री चौथमलजी, संपादन-पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल)

धन्ना चरित्र (पद्य)

धर्मबुद्धि चरित्र (पद्य)

धर्मोपदेश (मुनि प्यारचन्द)

निर्ग्रन्थ प्रवचन (जिनागामो का सार; संकलन-अनुवाद . मुनि श्री चौथमलजी; हिन्दी-भाष्य-पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल)

निवेदन (मासिक पत्र, स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर अप्रैल-मई, ४७ में प्रकाशित आदर्श उत्सव-अंक)

द्वय चरित्र (तरंगवती, रतनकुँवर, पद्य)

पार्श्वनाथ (गद्य)

प्रदेशी राजा का चरित्र (पद्य)

भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र (पद्य)

भगवान महावीर का आदर्श जीवन (गद्य)

भगवान महावीर का दिव्य सन्देश (प्रथम भाग, गद्य)

मनोहर पुष्प (पद्य)

महाबल चरित्र (पद्य)

मुक्तिपथ (पद्य)

मोचियों की त्यागवृत्ति (मोचियो के मध्य दिये गये दो प्रवचन)

राममुद्रिका (पद्य)

लावणी-संग्रह (भाग १, २)

वैराग्य जैनस्तवनावली

श्रद्धांजलि (गीत-संकलन . वर्द्धमानमुनि)

श्री जैन दिवाकर चित्रावली (दिवाकर विचार-बिन्दु सहित, संयोजन-प्रकाशन-फकीरचन्द जैन)

श्री जैन दिवाकर स्मृतिग्रन्थ या श्रद्धांजलि (संकलन गुलाबचन्द)

श्री दिवाकर अभिनन्दन ग्रन्थ (भगवती दीक्षा के ५१ वे वर्षारंभ के मंगल प्रसंग पर, सपा. प. शोभाचन्द्र भारिल्ल, पं. मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही')

श्रीपाल चरित्र (पद्य)

सती अंजना और वीर हनुमान (पद्य)

सम्यक्त्व कौमुदी (अर्हदास चरित्र; पद्य)

सीता वनवास (पद्य)

सुपार्श्व चरित्र (पद्य)

स्त्री-शिक्षा भजन-संग्रह (पद्य)

हरिबल चरित्र

हरिश्चन्द्र चरित्र (पद्य)

[प्रकाशक—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति, रतलाम अथवा श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, महावीर (मेवाड़ी) बाजार, ब्यावर (राजस्थान)] □

'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' के कुशल शिल्पी - मुनि श्री चौथमलजी

वस्तुतः कोई भी चयन आत्मनिष्ठ (सब्जेक्टिव्ह) और व्यक्ति की अभिरुचियों का प्रतिनिधि प्रतिबिम्ब होता है। प्रस्तुत कृति में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जहाँ चयन में मुनिजी की अन्तरात्मा ने अपनी व्यथा को उघाड़ा है। आचरण-विहीन शास्त्रीय पाण्डित्य के प्रति अपनी अन्तर्व्यथा का प्रकटीकरण उन्होंने 'ज्ञान-प्रकरण' में 'उत्तराध्ययन' की कुछ गाथाओं को संकलित करके किया है।

□ डॉ. सागरमल जैन

मुनिश्री चौथमलजी संगीतमय भक्तिगीतों के रचना-शिल्प के कुशल अभियन्ता एवं स्वर-लहरी के साधक गीतकार के रूप में जैन साहित्य-जगत् के एक भास्वर नक्षत्र थे। उनकी आरतियाँ और भजन जैनों में आज भी बड़े चाव से गाये जाते हैं। उनकी रचनाओं में श्रोता के हृदय की अतल गहराइयो को छू लेने की अद्भुत-अपूर्व क्षमता है। एक सफल गीतकार के अतिरिक्त वे एक कुशल प्रवचनकार भी थे। उनकी सहज प्रवचन-शैली में श्रोता को अभिभूत कर लेने की विलक्षण शक्ति थी। उनके शब्द सीधे हृदय से निकलते थे, किन्तु इस सब से ऊपर वे एक साहित्य-सृष्टा भी थे। उनके रचना-शिल्प का सर्वोत्तम सौन्दर्य उनके ग्रन्थ 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन भाष्य' में प्रतिबिम्बित हुआ है। यद्यपि प्रस्तुत कृति की मूलगाथाएँ आगमों से संकलित है, तथापि इनके चयन, संयोजन तथा उन पर भाष्य करने मे वे एक मौलिक लेखक की अपेक्षा भी अधिक व्यक्त हुए है।

जैन-जगत् में 'गीता' एवं 'धम्मपद' के समान एक संक्षिप्त किन्तु सारभूत ग्रन्थ की महती आवश्यकता वर्षो से अनुभव की जा रही थी। इसकी पूर्ति का एक प्रयास पं. बेचरदासजी ने 'महावीर-वाणी' के रूप में श्वे. आगमो से कुछ गाथाओ का संकलन करके किया था; किन्तु मुनिजी का यह प्रयास उससे अधिक व्यापक एवं गम्भीर था। मुनिजी ने गीता की शैली पर १८ अध्यायों मे 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' का संकलन किया और आचारांग, सूत्रकृतांग, समवायांग, स्थानाग, ज्ञाताधर्मकथाग, प्रश्नव्याकरण, भगवती, जीवाभिगम, उत्तराध्ययन एवं दशवैकालिक सूत्रों से उसके हेतु गाथाओं का चयन किया। प्रस्तुत ग्रन्थ षड्द्रव्य-निरूपण, कर्म-निरूपण, धर्म-स्वरूप, आत्मशुद्धि, ज्ञान प्रकरण, सम्यक्त्व प्रकरण, (चरित्र) धर्म निरूपण, ब्रह्मचर्य निरूपण, साधुधर्म निरूपण, प्रमाद-परिहार, भाषास्वरूप, लेश्या-स्वरूप, कषाय-स्वरूप, वैराग्य सम्बोधन, मनोनिग्रह आवश्यक कर्तव्य, स्वर्ग-नर्क निरूपण एवं मोक्ष स्वरूप इन अठारह अध्यायो मे विभक्त है। विषयो के अनुरूप शास्त्रीय गाथाओं का चयन कर एव उन पर भाष्य लिखकर मुनिजी ने जैन साहित्य की अपूर्व सेवा की है। यद्यपि भगवान् महावीर के २५ वे निर्वाणशताब्दि-वर्ष में दिल्ली में जैन विद्वत्वर्ग के सान्निध्य मे पारित 'समणसुत्तं' इसी दिशा में एक अगला कदम अवश्य है (जो कि सर्व जैन सम्प्रदायों के आगमो से संकलित एवं सर्व जैन सम्प्रदायो द्वारा स्वीकृत है) तथापि इससे 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' की गरिमा खण्डित नही होती, अपितु एक व्यक्तिके द्वारा वर्षो पूर्व किये गये इस महान् प्रयास की महिमा और भी बढ़ जाती है।

यही कारण था कि उसके प्रकाशन पर शताधिक जैन-जैनेतर विद्वानों ने और राष्ट्रीय स्तर के अनेक पत्रों ने उसकी असाम्प्रदायिकता एवं महत्ता की मुक्तकण्ठ से सराहना की थी।

वस्तुत: प्रस्तुत संकलन मे हम उनके विचारों का सच्चा प्रतिविम्ब पाते हैं और यही उनकी मौलिकता भी परिलक्षित होती है। व्यक्ति की अभिरुचि और दृष्टि 'चयन' को प्रभावित करती है। वस्तुतः कोई भी चयन आत्मनिष्ठ (सब्जेक्टिव्ह) और व्यक्ति की अभिरुचियो का प्रतिनिधि प्रतिविम्व होता है। प्रस्तुत कृति मे ऐसे अनेक प्रसंग है, जहाँ मुनिजी की अन्तरात्मा ने अपनी व्यथा को खोला है। आचरण-विहीन शास्त्रीय पाण्डित्य के प्रति अपनी आत्मव्यथा का प्रकटीकरण उन्होने 'ज्ञान प्रकरण' मे उत्तराध्ययन' की कुछ गाथाओ को संकलित करके किया हे। वस्तुत. इस प्रकरण में ज्ञान की महत्ता गायी जा सकती थी और तत्संवन्धी अनेक गाथाएँ भी संकलित की जा सकती थी, किन्तु मुनिजी ने जिन गाथाओं को चुना वे एक ओर उनकी मौलिक सूझ को अभिव्यक्त करती है, तो दूसरी ओर युग-प्रवाह मे चरित्र-विहीन ज्ञान का जो वर्चस्व वढ़ता जा रहा था उसके प्रति उनकी आत्म-व्यथा की परिचायक भी है। मुनिजी ने उक्त अध्याय मे 'उत्तराध्ययन' की जिन गाथाओ को लिया है, वे निम्न है–

इहमेगे उ मण्णति, अप्पच्चक्खाय पावग।
आयरिअ विदित्ताण, सव्व दुक्खा विमुच्चई॥
भणता अकरिंता य, बधमोक्ख पइण्णिणो।
वायाविरियमत्तेण समासासति अप्पय॥
ण चित्ता तायएभासा कओ विज्जाणु सासणं।
विसण्णा पावकम्मेहि वाला पण्डिय माणिणो॥

—ज्ञान प्रकरण ८–१०

(कुछ लोग यह मानते है कि पाप-कर्मो का परित्याग किये विना ही केवल आर्यतत्त्व के ज्ञान से ही वे सव दु.खो से मुक्ति पालेगे, किन्तु जानते हुए भी आचरण नही करनेवाले वे लोग, वंधन और मोक्ष के वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ, केवल शब्दो से अपनी आत्मा को संतोष देते है (अर्थात् आत्मप्रवञ्चना करते हैं।) अपने आप को पण्डित माननेवाले, पाप कर्मो मे अनुरक्त. वे मूर्ख लोग यह नही जानते कि यह शब्द-कौशल से युक्त वाणी (भाषा) उनकी त्राता नही होगी।)

वस्तुतः 'ज्ञान प्रकरण' मे (एकान्त) ज्ञानवाद की इन आलोचनात्मक गाथाओ का संकलन निष्प्रयोजन या अस्वाभाविक नही है। यह रचनाकार एवं संकलन-कर्ता की सोद्देश्यता का प्रतीक है। वाणी का एक जादूगर एवं अगाध पाण्डित्य का धनी व्यक्ति जब इन पक्तियों से जुडा होगा तो निश्चय या तो आत्म-पीडा के अनुभव से गुजरा होगा, या फिर सच्चरित्र के प्रति अनन्य निष्ठा से युक्त रहा होगा। प्रस्तुत ग्रन्थ में इस प्रकार के अनेक संदर्भ है जहा उसके शिल्पकार की अन्तरात्मा के दर्शन और उसके शिल्प-वैभव का आस्वाद हमें मिल जाता है। काश, हम उस महान् शिल्पी के शताब्दि-वर्ष मे उसके जीवन-दर्शन से प्रेरणा ले सकते! □

जैन दिवाकर : एक विलक्षण व्यक्तित्व

"वे गुत्थियों को और अधिक उलझाना नहीं वरन् सरल-सहज मुद्रा में सुलझाना जानते थे। दो भिन्न तटों पर खड़े व्यक्तियों के बीच उनके प्रवचन मित्रता और एकता के सेतु होते थे; वस्तुतः वे कैंची नहीं सूई थे, जिनमें चुभन थी किन्तु दो फटे दिलों को जोड़ने की अपूर्व क्षमता थी। उनके प्रवचन सरल, सरस, सुबोध, सुलझे हुए और अध्ययनपूर्ण होते थे, जिनमें वैचारिक निर्मलता के साथ अनुभूति का अमृत भी मिला होता था। छोटे-छोटे तराशे हुए रूपक, लोककथाएँ, दोहे, शेर, श्लोक, आगम-गाथाएँ और भजन की स्वर-लहरी सब विषय-वस्तु को इतना सुबोध-सहज बना देते थे कि श्रोता आत्मविभोर हो उठता था।

☐ देवेन्द्र मुनि शास्त्री

जैन दिवाकर स्व. श्री चौथमलजी महाराज स्थानकवासी जैन परम्परा के एक देदीप्यमान नक्षत्र थे। वे बीसवी सदी के एक प्रतिभासम्पन्न साधक थे। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी था। एक ओर जहाँ वे अध्यात्म-साधना मे तल्लीन रहते थे, दूसरी ओर वही समाज का कुशल नेतृत्व भी करते थे। तीसरी ओर वे जन-जन की व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान मे तत्पर-सन्नद्ध थे तो चौथी ओर अध्ययन-अध्यापन-प्रवचन में पटु थे। वे कविता लिखते थे, लेख लिखते थे, जनता-जनार्दन से बातचीत करते थे, किन्तु आत्मा की अनन्त-अतल गहराइयों में घूमते-झूमते रहते थे। पनिहारिन का ध्यान जैसे घड़े में, नट का नृत्य करते हुए रस्सी में, और पत्नी का अन्यान्य गार्हस्थिक कार्य करते हुए भी अपने प्रियतम में बना रहता है ठीक वैसे ही उनका ध्यान आत्मा मे अनवरत बना रहता था।

मैने उनके सर्वप्रथम दर्शन अपनी जन्मस्थली उदयपुर मे किये। उस वर्ष उनका वर्षावास वही था। पंचायती नोहरे के विशाल प्रागण में उनके मर्मस्पर्शी प्रवचन होते थे, जिनमे हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख-पारसी, जैन-वैष्णव-शैव सभी हजारों की संख्या मे उपस्थित होते थे। विशाल काया, प्रशस्त ललाट, उन्नत शीर्ष, ओजस्व-वर्चस्व-निर्मित पेशिल भुजाएँ, प्रेम-पीयूष बरसाते निर्मल नेत्र, श्वेत परिधान-वेष्टित शरीर और मुखचन्द्र पर शोभित मुखवस्त्रिका देखकर दर्शक प्रथम दर्शन मे ही उनसे प्रभावित हो जाता था और जब उनकी मेघ-मन्द्र गर्जना सुनता था तो उसका मन-मयूर नाच उठता था।

उनकी प्रवचन-शैली अपनी निराली थी। वह किसी का अनुकरण-अनुसरण नहीं थी, मौलिक थी। जब वे बोलना प्रारम्भ करते तब कुछ उखड़े-उखड़े लगते, एकदम बालको की तरह साधारण बाते सुनाते। श्रोता सोचता कि क्या ये ही जैन दिवाकर है, जिनकी मैने इतनी प्रशसा और ख्याति सुन रखी थी? किन्तु कुछ ही क्षणो बाद वे प्रवचन के बीच इस प्रकार जमते और अन्त मे कुछ ऐसे असाधारण-अलौकिक हो उठते कि सारा मैदान उनके हाथ रहता। मै उनकी प्रवचन-शैली की तुलना फ्रान्स के विशिष्ट विचारक विक्टर ह्यूगो की लेखन-शैली से करता हूँ। विक्टर ह्यूगो के प्रारम्भिक परिच्छेद इतने 'इनवाइटिंग' नही होते थे किन्तु बाद के इतने आकर्षक होते थे कि पाठक उन्हे छोड़ नही पाता था। पाठक के दिल-दिमाग मे वे एक चलचित्र की भॉति घूमने लगते थे। जैन दिवाकरजी की भाषण-कला की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे अपने प्रवचनो में कभी खारे नही पड़ते थे, खारी बात को भी वे इस प्रकार रखते थे कि श्रोता समझते कि वे खारे नही है, खरे है। भाषा उनकी सीधी-सादी, सरल-सुबोध होती थी। उसमे राजस्थानी और मालवी शब्दो के साथ उर्दू का भी किंचित् पुट होता था। उच्चारण साफ था, आवाज बुलन्द और मधुर थी। वे गुत्थियो को उलझाना नही, सुलझाना जानते थे। दो भिन्न तटो पर खडे व्यक्तियो को वे अपने प्रवचन-सेतुओं से मिलाना चाहते थे। वे कैंची नही, सूई थे जो दरार-पड़े दिलो को जोड़ती है, तोड़ती या काटती नही है। उनके प्रवचन सरल, सरस, सुलझे हुए तथा अध्ययन-प्रवण होते थे, जिनमे चैन्तनिक निर्मलता के साथ अनुभूति का अमृत भी प्रचुर होता था। छोटे-छोटे रूपक, लोककथाएँ, दोहे, शेर, श्लोक, गाथाएँ और भजन प्रतिपाद्य विषय को इतना आकर्षक और सहज बना देते थे कि श्रोता ठीक उसी तरह झूम उठता था जैसे बीन सुन कर सॉप। जिस किसी ने भी आपका प्रवचन सुना वह सदैव के लिए आपका हो गया। क्या राजा, क्या ठाकुर, क्या सेठ, क्या गरीब सब आपके प्रवचन सुनने एक बरसाती नदी की भॉति उमड आते और शान्त चित्त से उसे सुनते। आप जहाँ भी जाते वहाँ अपार जन-समुद्र उमड पड़ता।

मैने दुबारा आपके दर्शन किये सन् १९४० मे मोकलसर (राजस्थान) मे। उस समय मै महास्थविर श्री ताराचन्दजी महाराज एव उपाध्याय गुरुवर्य श्री पुष्कर मुनिजी के पास श्रमण धर्म स्वीकार कर चुका था। आप अपने योग्य शिष्य-परिकर के साथ वहाँ पधारे थे। मैने देखा जैन दिवाकरजी महाराज का शरीर जीर्ण हो चुका था, फिर भी वे दीवार के सहारे नही बैठते थे; तन उनका बूढा था, मन युवा था। तरुणों से बहुत अधिक उनके मन मे उत्साह और बल था। उनकी वाणी में सिंह-गर्जना थी। जीवन की साँझ मे सूरज की जोत जरूर मन्द पड जाती है; किन्तु जैन दिवाकरजी का आत्मतेज मन्द नही हुआ था, वह उत्तरोत्तर अधिक तेजोमय और ऊर्जस्वी हुआ था, हो रहा था।

जैन आगम में श्रमण के लिए आदेश है—**सज्झाय जोगे पयतो भवेज्जा** (स्वाध्याय योग में सदा यत्नवान बने रहो)। जीवन का एक क्षण भी निरर्थक मत जाने दो। मैंने इस आदेश की छाया मे देखा कि दिवाकरजी महाराज मध्याह्न मे क़लम लिये लिख रहे है। सहज ही पूछ बैठा—'आप विश्राम क्यों नहीं करते?' मुस्कराते हुए बोले—'साधक के लिए आराम कैसा? हम श्रमण है, श्रम हमारा कर्त्तव्य है। विहार मे स्थान की अनुकूलता के अभाव में गंभीर विषयों पर न लिख कर कविता लिखता हूँ। कविता करते समय मन की सारी थकान मिट जाती है।'

मैंने फिर पूछा—'आज तक आपने कितनी कविताएँ लिखी है?' खिले हुए मुखमण्डल के साथ बोले—'मेरी रुचि बचपन से ही कविता मे रही है। कितना लिखा इसका हिसाब नही रखा, पर हज़ारो पद्य लिखे है, और बीसियों चरित्र भी कविता में ही लिखे है।'

मैंने उनके कविता-साहित्य को पढ़ा है। वहाँ कोई शब्दजाल नही है, भावों की गम्भीरता है; पाण्डित्य-प्रदर्शन नही है, हृदय की सरसता है। उसमें सर्वत्र जन-जन के जीवन के लिए मंगलमयी भावनाएँ थिरक रही है।

वार्तालाप में मैंने उनसे पूछा—'माना, अन्य जैन संप्रदायों के साथ हमारा सैद्धान्तिक मतभेद है, किन्तु स्थानकवासी समाज में ही आज नाना संप्रदाय है जिनमें सैद्धान्तिक मतभेद नहीं है, चरित्र की तरतमता का भेद है। यह भेद अस्वाभाविक नही है, क्योंकि जहाँ किसी एक संप्रदाय मे बीस साधु है वहाँ चारित्र को लेकर वैयक्तिक साधना-क्षमता के अनुसार तरतमता का अन्तर होगा ही। जैसे हाथ की पाँचों अँगुलियाँ समान नही है, वैसे ही सभी साधु समान नही हो सकते। भगवान् महावीर के युग मे भी समानता नही थी; यदि समानता होती तो सम्राट् श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर मे भगवान् महावीर धन्ना को सर्वश्रेष्ठ क्यों बनाते? अतः इस सामान्य प्रश्न को लेकर हम इतने अधिक उलझ-पुलझ गये है कि जिसे देखकर मन अनायास ही खिन्न हो उठता है, क्या इस सम्बन्ध मे आपने कभी कोई विचार किया है?'

तनिक गंभीर हुए वे बोले—'छोटे-छोटे मुनियों के अन्तर्मन को यह प्रश्न झकझोर रहा है, यह जागृति का चिह्न है। मैं वर्षो से स्थानकवासी समाज की एकता के लिए प्रयास कर रहा हूँ किन्तु मुझे परिताप है कि मेरा संप्रदाय जो आज दो भागों मे विभाजित है, कोई आदर्श उपस्थित नही कर पाया है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि स्थानकवासी समाज एक हो, उसमे एकता स्थापित हो। यदि दीर्घकाल तक यही स्थिति रही तो वह शोचनीय बन जाएगी।'

मुझे यह लिखते हुए अपार हर्ष होता है कि दिवाकरजी महाराज ने स्थानकवासी समाज की एकता के लिए संगठन की निर्मल भावना से अपने संप्रदाय को विसर्जित

कर दिया। सर्वाधिक योग्य होते हुए भी उन्होंने आचार्य-जैसे पद को स्वीकार न कर अपने उदार और विशाल हृदय का जो परिचय दिया वह एकता-प्रयत्नों के इतिहास में स्वर्णाक्षरों मे अंकित किया जाएगा। उन्होंने स्थानकवासी परम्परा की दृष्टि से ही नही अपितु स्थानकवासी मूर्तिपूजक और दिगम्बर समाज की एकता के लिए भी

(बायें से) कोटा में आचाय सूर्यसागरजी म., जैन दिवाकर चौथमलजी म., आचार्य आनन्दसागरजी म., उपाध्याय प्यारचन्दजी म., मुनिश्री अशोक म.

भरसक प्रयास किये। कोटा मे तीनों संप्रदायो के सन्तों ने एक मच पर लम्बे समय तक प्रवचन देकर एकता की जो अविचल पहल की उसे कौन विचारक विस्मृत कर सकता है? वस्तुतः वे जैन एकता के प्रवल पक्षधर थे। जैन समाज मे एकता की जो स्वर-लहरियाँ सुनायी दे रही है, उसके मूल प्रेरक-प्रवर्तक वे ही थे।

मैने अत्यन्त नम्रता से दिवाकरजी महाराज से पूछा—'आप वर्षो से साधु-साध्वियों का नेतृत्व कर रहे है, अपने अनुभव के आधार पर यह वताने का अनुग्रह करें कि एक कुशल शास्ता के लिए मुख्यत. किन सद्‌गुणो की आवश्यकता होती है?'

उस मनीषी ने उत्तर दिया—'देवेन्द्र, कुशल शासक वह है, जिसमे धीरज हो, सहनशीलता हो, निर्णय की क्षमता हो, विनम्रता और गाभीर्य हो, हर व्यक्ति के अन्तर्मन को समझने-परखने की योग्यता हो, और साथ ही बात पचाने की शक्ति हो। अनुशास्ता वनना सरल है, किन्तु अनुशासक मे कुशलता का निखार आना कठिन है। यह काँटो का ताज है। अनुशास्ता को समय पर कठोर भी होना होता है, कोमल भी; दृढ भी, लचीला भी।'

मैने पुनः प्रश्न किया—'भगवन्, आप कोमलता और कठोरता मे से विशेष किसे पसन्द करते है?'

इस पर सहज ही वे बोले – 'अकेली कोमलता अनुशासक के लिए हानिप्रद है, कठोरता भी एकाकी यदि वह है तो भयावह है । शासक को तो कुम्हार की तरह होना चाहिये । तुमने कुम्हार देखा है न ? वह ऊपर से प्रहार करता है, किन्तु भीतर से अपने सुकोमल हाथ का दुलार देता है । चाणक्य-नीति अनुशासक को कठोर होने के लिए प्रेरित करती है, उसका कथन है कि अनुशासक को प्रतिक्षण कठोर रहना चाहिये । सूरज कठोर है, अत ग्रहण उसे विशेष नही डसते; चाँद शीतल है, राहु उसे बार-बार ग्रसता है; किन्तु धर्म कहता है कि अपने लिए कठोर बनो बज्र से अधिक; किन्तु अन्यों के लिए मक्खन-जैसे मृदु बनो । अनुशास्ता मर्यादा-पालन कराने के लिए कठोर भी होता है, और कोमल-मृदु भी; किन्तु दोनों ही स्थितियों में उसमें परमार्थ की भावना होती है, स्वार्थ की नही । हित की बुद्धि से किया गया अनुशासन ही लाभप्रद होता है ।'

मैने अन्त मे दिवाकरजी महाराज से निवेदन किया कि वे मुझे कुछ ऐसी शिक्षाएँ दें, जिनसे जीवन में निखार आ सके ।

मेरे सिर पर अपना वरदानी हाथ रखते, वाणी मे मिसरी घोलते वे बोले– 'देवेन्द्र, तुम अभी बालक हो, हम बूढ़े हो चले है । तुम्हे धर्मध्वज फहराने के लिए आगे आना है । याद रखो, विकास का मूल मन्त्र है विनय । विनय का स्थान विद्या से कही ऊँचा है । विनय साधना की आत्मा है, वह जैन शासन का मूल है। तुम स्वयं विनम्र बनो, झुकना सीखो । जो स्वयं झुकता है, झुकना जानता है, वही दूसरों को झुका सकता है । जो खुद नमता है, वही दूसरों को नमा सकता है। **दूसरी बात**–हमेशा मधुर बोलो, बिना प्रयोजन मत बोलो; वाणी पर सदा संयम रखो । **तीसरी बात**–समय का सदा सदुपयोग करो । जो क्षण बीत जाते है, वे लौटकर नही आते । समय का दुरुपयोग करनेवाला जीवन-भर पछताता है ।' तुम्हारी उम्र पढ़ने की है, खूब पढ़ो; जितना अधिक पढ़ोगे, बुद्धि का उतना ही अधिक विकास होगा । **चौथी बात**–आचारनिष्ठ बनो । आचार बिना, विचारों मे वैराग्य नही आ सकता । जिस दीपक मे जितना अधिक तेल होगा, वह उतना ही अधिक प्रकाश करेगा । आचार के तेज से ही विचारो मे विमलता आती है ।

दिवाकरजी महाराज की अमूल्य शिक्षाएँ सुनकर मै चरणों मे नत हो गया; और आज जब भी उनकी उक्त शिक्षाएँ याद आ जाती है, हृदय श्रद्धा से छलक उठता है, विनय मे झुक जाता है । □

'अपढ़ लोग या तो प्रतिज्ञा लेते नही, ले लेते है तो उसका दृढता से पालन करते है।

'आग भी जलाती है और क्रोध भी जलाता है, किन्तु दोनो से उत्पन्न होने वाली जलन मे महान् अन्तर है। आग ऊपर-ऊपर से चमड़ी आदि को जलाती है, मगर क्रोध अन्तरतर को समाप्त करता और जलाता है। क्रोध की अग्नि बड़ी जबर्दस्त होती है।

–मुनि चौथमल

वन्दन, अभिवन्दन !

वन्दन, शतशत वन्दन, अभिनन्दन !
जैन जगत् के पूज्य दिवाकर/जैन दिवाकर
तुम जन्मे/भू का उतरा भार/हुआ पाखण्ड अनावृत
भेद-भाव के टूटे बंधन/हटी ज्ञान पर छायी कालिख
अरुणोदय सम्यक्त्व उषा का/मिथ्यात्व तिमिस्रा हुई तिरोहित
संकल्प तुम्हारा/भव-मुक्ति का/बन्दीगृह भी रोक न पाया
रोक न पायीं गृह-दीवारें/रोक न पाया प्रणय-पाश भी ।
तुम बढे/गतिशील हुआ सकल्प/सिमटी सिकुडी जिनवाणी/
सह्य न हो पाया/घेरे को तोड निकाली/पहुँचायी जन-जन तक उसको
हर्षित सारे/श्रेष्ठि-निर्धन/जनसाधारण/महल-अटारी
कुटिया जर्जर
जगवल्लभ/किये प्रहार/रूढियों पर तुमने/जन-भाषा में बतलाया,
समझाया सिखलाया/महावीर का/मंगलमय उपदेश सुनाया
कितना अद्भुत ! जादू था वाणी में/जो भी आया/हो गया तुम्हारा
कर गया समर्पित/कल्मष अपना/बदले में प्रतिदान प्राप्त कर
धन्य हो गया/संयम, तप, सम्यक्त्व रत्न का,
तुम तपे/तुम्हारा तप-तेज दिवाकर/कर गया तिरोहित अंधकार
अज्ञान-निशा का/भूले-भटके गतिशील हुए/गतिशील हुआ/जन-जन
का जीवन
जीवन को तुमने बतलाया सत्य/सत्य को लक्ष्य,
लक्ष्य को दी परिभाषा/जिनवाणी हो गयी निहाल
तुम जिनवाणी के अद्भुत व्याख्याता/सर्वधर्म-समन्वय के सूत्रधार
कवि/संत/महर्षि/वक्ता/उद्घोषक अनेकान्त के,
संघ-ऐक्य के/प्रबल प्रबोधक/करनी-कथनी की/एकरूपता
जीवन का अवलम्ब तुम्हारा/
जन्म शती पर/आज तुम्हारा/जैन दिवाकर/वन्दन/शतशत
वन्दन/अभिवन्दन ।

☐ विपिन जारोली

"बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो प्रत्येक विषय पर तर्क-वितर्क करने को तैयार रहते हैं और उनकी बातों से ज्ञात होता है कि वे विविध विषयों के वेत्ता हैं, मगर आश्चर्य यह देखकर होता है कि अपने आन्तरिक जीवन के संबन्ध में वे एकदम अनभिज्ञ हैं। वे 'दिया-तले अंधेरा' की कहावत चरितार्थ करते हैं। आँख दूसरों को देखती है, अपने-आपको नहीं देखती। इसी प्रकार वे लोग भी सारी सृष्टि के रहस्यों पर तो बहस कर सकते हैं, मगर अपने को नहीं जानते।

ब्यावर, ८ सित. १९४१ —मुनिश्री चौथमलजी म.

प्रवचन-मणियाँ

'जहाँ झूठ का वास होता है, वहाँ सत्य नहीं रह सकता। जैसे रात्रि के साथ सूरज नहीं रह सकता और सूरज के साथ रात नहीं रह सकती, उसी प्रकार सत्य के साथ झूठ और झूठ के साथ सत्य का निर्वाह नहीं हो सकता। एक म्यान में दो तलवारें कैसे समा सकती हैं? इसी प्रकार जहाँ सत्य का तिरस्कार होगा, वहाँ झूठ का प्रसार होगा।

—मुनि चौथमल

प्रवचन-मणियाँ

१. धन चाहे जब मिल सकता है, किन्तु यह समय बार-बार मिलने वाला नहीं; अतएव धन के लिए जीवन का सारा समय समाप्त मत करो। धन तुच्छ वस्तु है, जीवन महान् है। धन के लिए जीवन को बर्बाद कर देना कोयलों के लिए चिन्तामणि को नष्ट कर देने के समान है।

२. धर्म, पंथ, मत या संप्रदाय जीवन को उन्नत बनाने के लिए होते हैं, उनसे आत्मा का कल्याण होना चाहिये; किन्तु कई लोग इन्हें भी पतनका कारण बना लेते हैं।

३. आत्मा निर्बल होगी तो शरीर की सबलता किसी भी काम नहीं आयेगी। तलवार कितनी ही तेज क्यों न हो, अगर हाथ में ताक़त नहीं है तो उसका उपयोग क्या है?

४. अहिंसा में सभी धर्मों का समावेश हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे हाथी के पैर में सभी के पैरों का समावेश हो जाता है।

५. जैसे मकान का आधार नींव है, उसी प्रकार मुक्ति का मूलाधार सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान के अभाव में मोक्षमार्ग की आराधना कभी नहीं हो सकती।

६. धर्म पर किसी का आधिपत्य नहीं है। धर्म के विशाल प्रांगण में किसी भी प्रकार की संकीर्णता और भिन्नता को अवकाश नहीं है। यहाँ आकर मानव-मात्र समान बन जाता है।

७. जो धर्म इस जीवन में कुछ भी लाभ न पहुँचाता हो और सिर्फ परलोक में ही लाभ पहुँचाता हो, उसे मैं मुर्दा धर्म समझता हूँ। जो धर्म वास्तव में धर्म है, वह परलोक की तरह इस लोक में भी लाभकारी अवश्य है।

८. आपको दो नेत्र प्राप्त हैं। मानो प्रकृति आपको संकेत दे रही है एक नेत्र से व्यवहार देखो और दूसरे नेत्र से निश्चय देखो। एकान्तवाद प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध है।

९. धर्म किसी खेत या बगीचे में नहीं उपजता, न बाजार में मोल बिकता है। धर्म शरीर से—जिसमें मन और वचन भी गर्भित है—उत्पन्न होता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। उसके लिए जाति-बिरादरी की कोई भावना नहीं है। ब्राह्मण

हो या चाण्डाल, क्षत्रिय हो या मेहतर हो, कोई किसी भी जाति का हो, कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है ।

१०. राष्ट्र के प्रति एक योग्य नागरिक के जो कर्तव्य है, उनका ध्यान करो और पालन करो; यही राष्ट्रधर्म है । राष्ट्रधर्म का भलीभाँति पालन करने वाले आत्मधर्म के अधिकारी बनते है । जो व्यक्ति राष्ट्रधर्म से पतित होता है, वह आत्मिक धर्म का आचरण नही कर सकता ।

११. यह अछूत कहलाने वाले लोग तुम्हारे भाई ही है इनके प्रति घृणा-द्वेष मत करो ।

१२. धर्म न किसी देश में रहता है, न किसी खास तरह के लौकिक बाह्य क्रियाकाण्ड में ही रहता है; उसका सीधा संबंध आत्मा से है । जो कषायो का जितना त्याग करता है, वह उतना ही अधिक धर्मनिष्ठ है, फिर भले ही वह किसी भी वेश में क्यो न रहता हो ?

१३. अगर आप सुख प्राप्त करना चाहते है, तो आपको आत्म-शुद्धि करना पड़ेगी । आत्मशुद्धि के लिए आत्मावलोकन आवश्यक है । आत्मावलोकन का अर्थ यह नही कि आप अपनी मौजूदा और गैरमौजूदा विशेषताओ का ढिढोरा पीटे, अपना बड़प्पन जाहिर करने का प्रयत्न करें, नही, यह आत्मावलोकन नही, आत्मवंचना है ।

१४. बोतल में मदिरा भरी है और ऊपर से डाट लगा है । उसे लेकर कोई हजार बार गंगा जी में स्नान कराये तो क्या मदिरा पवित्र हो जाएगी ? नही । इसी प्रकार जिसका अंतरंग पाप और कषायो से भरा हुआ है, वह ऊपर से कितना ही साफ-सुथरा रहे, वास्तव में रहेगा वह अपावन ।

१५. आत्म-कल्याण का भव्य भवन आज खडा नही कर सकते तो कोई चिन्ता नही, नीव तो आज डाल ही सकते हो । आज नीव लगा लोगे तो किसी दिन शनै. शनै. महल भी खड़ा हो सकेगा । जो नीव ही नही लगाना चाहता, वह महल कदापि खड़ा नही कर सकता ।

१६. ज्ञान का सार है विवेक की प्राप्ति और विवेक की सार्थकता इस बात में है कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव जागृत किया जाए ।

१७. धाय बालक को दूध पिलाती है, रमाती है फिर भी भीतर-ही-भीतर समझती है कि यह बालक मेरा नहीं पराया है । इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव धन-जन आदि की रक्षा करता है और उसका उपयोग भी करता है तथापि अन्तस् में जानता है कि यह सब पर पदार्थ है । यह आत्ममूल नहीं है ऐसा समझ कर वह उनमें गृद्ध नही बनता, अनासक्त रहता है ।

१८. किसी भी किसान से पूछो कि वह अपने खेत को बार-बार जोतकर कोमल क्यो बनाता है ? तो वह यही उत्तर देगा कि कठोर भूमि में अकुर नही उग सकते । यही बात

मनुष्य के हृदय की है। मनुष्य का हृदय जब कोमल होगा, तब उसकी अभिमानरूपी कठोरता हट जाएगी और उसमें धर्मरूपी अंकुर उग सकेगा।

१९. जूतों को बगल में जमा लेंगे, तीसरी श्रेणी के मुसाफिरखाने में जूतो को सिरहाने रखकर सोयेंगे, मगर चमार से घृणा करेंगे ? यह क्या है ?

२०. ज्ञानी का ज्ञान उसे दु:खों की अनुभूति से बचाने के लिए कवच का काम करता है, जबकि अज्ञानी का अज्ञान उसके लिए विष-बुझे बाण का काम करता है।

२१ स्वाध्याय का अर्थ कण्ठस्थ किये हुए गद्य-पद्य को तोते की तरह बोलते जाना ही नही समझना चाहिये। जो पाठ बोला जा रहा है, उसका आशय समझते जाना और उसकी गहराई में मन लगा देना आवश्यक है।

२२ भाई, तू चिकनी मिट्टी की तरह संसार से चिपटा है, अत: संसार मे फँस जाएगा। रेत के समान बनेगा तो संसार से निकल जाएगा।

२३. जैसे सूर्य और चन्द्र का, आकाश और दिशा का बंटवारा नही हो सकता, उसी प्रकार धर्म का भी बंटवारा संभव नही है। धर्म उस कल्पवृक्ष के समान है, जो समानरूप से सब के मनोरथों की पूर्ति करता है और किसी प्रकार के भेदभाव को प्रश्रय नही देता।

२४. बड़ों का कहना है कि मनुष्य को कम खाना चाहिये, गम खाना चाहिये और ऊँच-नीच वचन सह लेना चाहिये तथा शान्त होकर रहना चाहिये। गृहस्थी में जहाँ ये चार बाते होती है, वहाँ बड़े आनन्द के साथ जीवन व्यतीत होता है।

२५. जिस मार्ग पर चलने से शत्रुता मिटती है, मित्रता बढ़ती है, शान्ति का प्रसार होता है, और क्लेश, कलह एवं वाद का नाश होता है, वह मार्ग सत्य का मार्ग है।

२६. धन की मर्यादा नही करोगे तो परिणाम अच्छा नही निकलेगा। तृष्णा आग है, उसमें ज्यों-ज्यों धन का ईंधन झोंकते जाओगे, वह बढती ही जाएगी।

२७. धर्म सुपात्र में ही ठहरता है कुपात्र में नही; इसलिए धर्मयुक्त जीवन बनाने के लिए नीतिमय जीवन की जरूरत होती है।

२८. अपना भ्रम दूर कर दे और अपने असली रूप को पहचान ले। जब तक तू असलियत को नहीं पहचानेगा, सांसियो के चक्कर में पड़ा रहेगा।

२९. आत्मज्ञान हो जाने पर संसार में उत्तम-से-उत्तम समझा जाने वाला पदार्थ भी मनुष्य के चित्त को आकर्पित नही कर सकता।

३०. जो पूरी तरह वीतराग हो चुका है और जिसकी आत्मा में पूर्ण समभाव जाग उठा है, वह कैसे भी वातावरण में रहे, कैसे भी पदार्थों का उसे संयोग मिले उसकी आत्मा समभाव में ही स्थित रहती है।

३१ क्रोध एक प्रकार का विकार है और जहाँ चित्त में दुर्बलता होती है, सहनशीलता का अभाव होता है, और समभाव नही होता वही क्रोध उत्पन्न होता है।

३२. जो मनुष्य अवसर से लाभ नहीं उठाता और सुविधाओं का सदुपयोग नही करता, उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है और फिर पश्चात्ताप करने पर भी कोई लाभ नही होता ।

३३. जो वस्तुएँ इसी जीवन के अन्त मे अलग हो जाती है, जिनका आत्मा के साथ कुछ भी सबंध नही रह जाता है और अन्तिम जीवन में जिसका छूट जाना अनिवार्य है, वे ही वस्तुएँ प्राप्त करना क्या जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है ? कदापि नही। महत्त्वपूर्ण कार्य है अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाना, और आत्मा को कल्याण के उस मार्ग पर ले जाना कि फिर कभी अकल्याण से भेंट ही न करनी पडे ।

३४. बहुत से लोग चमत्कार को नमस्कार करके चमत्कारो के सामने अपने आपको समर्पित कर देते है । वे बाह्य ऋद्धि को ही आत्मा के उत्कर्ष का चिह्न समझ लेते है और जो बाह्य ऋद्धि दिखला सकता है, उसे ही भगवान् या सिद्ध-पुरुष मानलेते है, मगर यह विचार भ्रमपूर्ण है । बाह्य चमत्कार आध्यात्मिक उत्कर्ष का चिह्न नही है और जो जानबूझकर अपने भक्तों को चमत्कार दिखाने की इच्छा करता है और दिखलाता है, समझना चाहिये कि उसे सच्ची महत्ता प्राप्त नही हुई है ।

३५. परिवर्तन प्रकृति का नियम है । यह नियम जड़ और चेतन सभी पर समान रूप से लागू होता है । फूल जो खिलता है, कुम्हलाता भी है, सूर्य का उदय होता है, तो अस्त भी होता है; जो चढ़ता है, वह गिरता है ।

३६ संस्कृत भाषा में 'गुरु' शब्द का अर्थ करते हुए कहा गया है—'गु' का अर्थ अन्धकार है और 'रु' का अर्थ नाश करना है । दोनों का सम्मिलित अर्थ यह निकला कि जो अपने शिष्यों के अज्ञान का नाश करता है, वही 'गुरु' कहलाता है ।

३७ अपने जीवन के जहाज को जिस कर्णधार के भरोसे छोड रहे हो, उसकी पहले जाँच तो कर लो कि उसे स्वयं भी रास्ता मालूम है या नहीं ? विज्ञ सारथी को ही अपना जीवन-रथ सुपुर्द करो, ऐरे-गैरे को गुरु बना लोगे तो अन्धकार में ही भटकना पडेगा ।

३८. किसी की निन्दा करके उसकी गंदगी को अपनी आत्मा में मत समेटो । गुणीजनो का आदर करो । नम्रता धारण करो । अहंकार को अपने पास मत फटकने दो ।

३९ यह क्या इन्सानियत है कि स्वय तो भला काम न करो और दूसरे करे और कीर्ति पावे तो उनसे ईर्ष्या करो ? ईर्ष्या न करके अच्छे-अच्छे काम करो ।

४० जिसका जितना विकास हुआ है उसी के अनुसार उसे साधना का चुनाव करना चाहिये और उसी सोपान पर खडे होकर अपनी आत्मा का उत्थान करने का प्रयत्न करना चाहिये ।

४१ मानव-जीवन की उत्तमता की कसौटी जाति नही है, भगवद्भजन है । जो मनुष्य परमात्मा के भजन में अपना जीवन अर्पित कर देता है और धर्मपूर्वक ही अपना

जीवन-व्यवहार चलाता है, वही उत्तम है, वही ऊँचा है, चाहे वह किसी भी जाति में उत्पन्न हुआ हो। उच्च-से-उच्च जाति में जन्म लेकर भी जो हीनाचारी है, पाप के आचरण में जिसका जीवन व्यतीत होता है और जिसकी अन्तरात्मा कलुषित बनी रहती है, वह मनुष्य उच्च नही कहला सकता।

४२. शुद्ध श्रद्धावान मनुष्य ही स्व-पर का कल्याण करने में समर्थ होता है। जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं है और जो कभी इधर और कभी उधर लुढकता रहता है, वह संपूर्ण शक्ति से, पूरे मनोबल से साधना में प्रवृत्त नहीं हो सकता और पूर्ण मनोयोग के बिना कोई भी साधना सफल नही हो सकती। सफलता श्रद्धावान को ही मिलती है।

४३. मिथ्यात्व से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है। बाह्य शत्रु बाहर होते है और उनसे सावधान रहा जा सकता है, मगर मिथ्यात्व शत्रु अन्तरात्मा में घुसा रहता है, उससे सावधान रहना कठिन है। वह किसी भी समय, बल्कि हर समय हमला करता रहता है। बाह्य शत्रु अवसर देखकर जो अनिष्ट करता है, उससे भौतिक हानि ही होती है, मगर मिथ्यात्व आत्मिक सम्पत्ति को धूल में मिला देता है।

४४. विज्ञान ने इतनी उन्नति की मगर लोगों की सुबुद्धि की तनिक भी तरक्की नहीं हुई। मनुष्य अब भी उसी प्रकार खूँख्वार बना हुआ है, वह हिंसक जानवर की तरह एक-दूसरे पर गुर्राता है और शान्ति के साथ नही रहता। अगर मनुष्य एक-दूसरे के अधिकारों का आदर करे और न्यायसंगत मार्ग का अनुसरण करे तो युद्ध जैसे विनाशकारी आयोजन की आवश्यकता ही न रहे।

४५. हिंसा में अशान्ति की भयानक ज्वालाएँ छिपी है। उससे शान्ति कैसे मिलेगी ? वास्तविक शान्ति तो अहिंसा में ही निहित है। अहिंसा की शीतल छाया में ही लाभ हो सकता है।

४६. मनुष्य कितना ही शोभनीक क्यों न हो, यदि उसमें गुण नहीं है तो वह किस काम का ? रूप की शोभा गुणों के साथ है।

४७. याद रक्खो और सावधान रहो, दिन-रात, हर समय, तुम्हारे भाग्य का निर्माण हो रहा है। क्षण-भर के लिए भी अगर तुम ग़फलत में पड़ते हो तो अपने भविष्य को अन्धकारमय बनाते हो। सबसे अधिक सावधानी मन के विषय में रखनी है। यह मन अत्यन्त चपल है। समुद्र की लहरो का पार है, पर मन की लहरों का पार नही है। इसमें एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी लहर उत्पन्न होती ही रहती है। इन लहरो पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

४८. वर्तमान में जो कुछ भी प्राप्त है, उसमे सन्तोष धारण करना चाहिये। सन्तोष ही शान्ति प्रदानकर सकता है। करोड़ों और अरबो की सम्पत्ति भी सन्तोष के बिना सुखी नही बना सकती, और यदि सन्तोष है तो अल्प साधन-सामग्री में भी मनुष्य आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है।

४९. जो भूत-भविष्यत् की चिन्ता छोड़कर वर्तमान परिस्थितियों में मस्त रहता है, वही जगत् में ज्ञानी है: सच पूछो तो ऐसे लोगों को ही वास्तविक आनन्द के खजाने की चावी हाथ लगी है।

५० मनुष्य जितना-जितना आत्मा की ओर झुकता जाएगा, उतना ही उतना सुखी बनता जाएगा।

५१ मिलावट करना घोर अनैतिकता है। व्यापारिक दृष्टि से भी यह कोई सफल नीति नहीं है। जो लोग पूर्ण प्रामाणिकता के साथ व्यापार करते है और शुद्ध चीजें बेचते है, उनकी चीज कुछ महगी होगी और संभव है कि आरंभ में उसकी बिक्री कम हो, मगर जब उनकी प्रामाणिकता का सिक्का जम जाएगा और लोग असलियत को समझने लगेगे तो उनका व्यापार औरों की अपेक्षा अधिक चमकेगा, इसमे सदेह नही। अगर सभी जैन व्यापारी ऐसा निर्णय कर ले कि हम प्रामाणिकता के साथ व्यापार करेंगे और किसी प्रकार का धोखा न करते हुए अपनी नीति स्पष्ट रखेगे तो जैनधर्म की काफी प्रभावना हो, साथ ही उन्हें भी कोई घाटा न रहे।

५२. कोई चाहे कि दूसरों का बुरा करके मै सुखी बन जाऊँ, तो ऐसा होना सभव नही है। बबूल बोकर आम खाने की इच्छा करना व्यर्थ है।

५३ संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे पाकर तुम अभिमान कर सको, क्योंकि वह वास्तव मे तुम्हारी नही है और सदा तुम्हारे पास रहने वाली नही है। अभिमान करोगे तो आगे चलकर नीचा देखना पड़ेगा।

५४. इस विशाल विश्व में अनेक उत्तम पदार्थ विद्यमान है, परन्तु आत्मज्ञान से बढ़कर अन्य कुछ भी नही है। जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया, उसे कुछ प्राप्तव्य नहीं रह गया।

५५. आत्मा-आत्मा में फर्क नही है, फर्क है करनी में। जो जैसी करनी करता है, उसे वैसी ही सामग्री मिल जाती है।

५६. जो सुयोग मिला है, उसे संसार के आमोद-प्रमोद में विनष्ट मत करो, बल्कि आत्मा के स्वरूप को समझने में उसका सदुपयोग करो।

५७ किसी व्यक्ति के जीवन के सम्बन्ध में जब विचार करना हो तो उसके गुणों पर ही विचार करना उचित है। गुणों का विचार करने में गुणों के प्रति प्रीति का भाव उत्पन्न होता है और मनुष्य स्वय गुणवान बनता है।

५८. अविवेकी जन अपने दोष नही देख पाते, पराये दोष देखते है, अपनी निन्दा नही करते, पराई निन्दा करते है। वे अपने में जो गुण नही होते, उनका भी होना प्रसिद्ध करते है और वर्तमान दोषों को ढकने का प्रयत्न करते है, जबकि दूसरों में अविद्यमान दोषों का आरोप करके उनके गुणों को आच्छादित करने का प्रयास भी करते है।

५९ वास्तव में देखा जाए तो विकार देखने में नही, मन में है। मन के विकार ही कभी दृष्टि में प्रतिबिम्बित होने लगते है। मन विकार-विहीन होता है तो देखने से दृष्टा की आत्मा कलुपित नही होती।

६०. प्रामाणिकता का ताकाजा है कि मनुष्य जो बेष धारण करे, उसके साथ आने वाली जिम्मेदारी का भी पूरी तरह निर्वाह करे। ऐसा करने में ही उस बेष की शोभा है।

६१. व्यापारी का कर्तव्य है, जिसे देना है, ईमानदारी से दे और जिससे लेना है उससे ईमानदारी से ही ले-लेनदेन में बेईमानी न करे।

६२. शील आत्मा का भूषण है। उससे सभी को लाभ होता है, हानि किसी को नहीं होती।

६३. सत्य सब को प्रिय और असत्य अप्रिय है। जो लोग लोभ से, भय से या आशा से प्रेरित होकर असत्य का प्रयोग करते हैं, वे भी असत्य को अच्छा नहीं समझते। उनके अन्त.करण को टटोलो तो प्रतीत होगा कि वे असत्य से घृणा करते है, और सत्य के प्रति प्रीति और भक्ति रखते हैं।

६४. जब तक किसी राष्ट्र की प्रजा अपनी संस्कृति और अपने धर्म पर दृढ है तब तक कोई विदेशी सत्ता उस पर स्थायी रूप से शासन नही कर सकती।

६५. अगर आप अपनी जुवान पर कब्जा करेंगे तो किसी प्रकार के अनर्थ की आशंका नहीं रहेगी। इस दुनिया में जो भीषण और लोमहर्षक काण्ड होते है, उनमें से अधिकाश का कारण जीभ पर नियंत्रण का न होना है।

६६. गुण आत्मा को पवित्रता की ओर प्रेरित करते है, दोषो से आत्मा अपवित्र-कलुषित वनता है। गुण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आत्मा को स्वरूप की ओर ले जाते है, जबकि दोष उसे विकार की ओर अग्रसर करते है।

६७. आत्मशुद्धि के लिए क्षमा अत्यन्त आवश्यक गुण है। जैसे सुहागा स्वर्ण को साफ करता है, वैसे ही क्षमा आत्मा को स्वच्छ वना देती है।

६८. अमृत का आस्वादन करना हो तो क्षमा का सेवन करो। क्षमा अलौकिक अमृत है। अगर आपके जीवन में सच्ची क्षमा आ जाए तो आपके लिए यही धरती स्वर्ग वन सकती है।

६९. क्रषक धान की प्राप्ति के लिए खेती करता है तो क्या उसे खाखला (भूसा) नहीं मिलता है? मगर वह किसान तो मूर्ख ही माना जाएगा जो सिर्फ खाखले (भूसे) के लिए खेती करता है। इसलिए जहाँ तपस्या को आवश्यक बताया गया है, वही उसके उदेश्य की शुद्धि पर भी पूरा बल दिया है। उद्देश्य-शुद्धि के बिना त्रिया का पूरा फल प्राप्त नही हो सकता।

७०. भोग का रोग वड़ा व्यापक है। इसमे उड़ती चिड़िया भी फँस जाती है, अतएव इससे वचने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये और चित्त को कभी गृद्ध नहीं होने देना चाहिये।

७१. तीन वातें ऐसी है जिनमें सब्र करना ही उचित है---किसी वस्तु का ग्रहण करने में, भोजन में और धन के विषय में; मगर तीन वाते ऐसी भी है, जिनमें सन्तोप धारण करना उचित नहीं है---दान देने में, तपस्या करने में, और पठन-पाटन में।

७२. निश्चय मानो कि सुख की कुंजी सन्तोष है, सम्पत्ति नहीं; अतएव दूसरे की चुपड़ी देख कर ईर्ष्या मत करो। अपनी रूखी को बुरा मत समझो और दूसरो की नकल मत करो।

७३ बीज बोना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है, किन्तु बो देने के बाद इच्छानुसार अकुर पैदा नही किये जा सकते। अपढ किसान भी जानता है कि चने के बीज से गेहूँ का पौधा उत्पन्न नही होता, मगर तुम उससे भी गये-बीते हो। तुम सुख पाने के लिए कदा-चरण करते हो।

७४. तीर्थंकर कौन होता है? जगत् में अनन्त जीव है। उनमें जो ऊँचे नम्बर की करनी करता है, वह तीर्थंकर बन जाता है।

७५ यह समझना भूल है कि हम तुच्छ है, नाचीज है, दूसरे के हाथ की कठपुतली है, पराये इशारे पर नाचने वाले है, जो भगवान् चाहेगा वही होगा, हमारे किये क्या हो सकता है? यह दीनता और हीनता की भावना है। अपने आपको अपनी ही दृष्टि में गिराने की जघन्य विचारधारा है। जीव का भविष्य उसकी करनी पर अवलम्बित है। आपका भविष्य आपके ही हाथ में है, किसी दूसरे के हाथ में नही।

७६ जब आपके चित्त मे तृष्णा और लालच नही होंगे तब निराकुलता का अभूत-पूर्व आनन्द आपको तत्काल अनुभव में आने लगेगा।

७७ भला आदमी वह है जो दुनिया का भी भला करे और अपना भी। जो दुनिया का भला करता है और अपना नुकसान कर लेता है, वह दूसरे नम्बर का भला आदमी है, लेकिन जो दूसरे का नुकसान करके अपना भला करता है, वह नीच है।

७८. जैसे सूर्य और चन्द्र का, आकाश और दिशा का बँटवारा नही हो सकता, उसी प्रकार धर्म का बँटवारा नही हो सकता। जैसे आकाश, सूर्य आदि प्राकृतिक पदार्थ है, वे किसी के नही हैं, अतएव सभी के हैं, इसी प्रकार धर्म भी वस्तु का स्वभाव है और वह किसी जाति, प्रान्त, देश, या वर्ग का नहीं होता।

७९ धर्म का प्रागण सकीर्ण नही, बहुत विशाल है। वह उस कल्पवृक्ष के समान है जो समान रूप से सबके मनोरथों की पूर्ति करता है और किसी प्रकार के भेदभाव को प्रश्रय नही देता।

८०. नम्रता वह वशीकरण है जो दुश्मन को भी मित्र बना लेती है, पाषाण हृदय को भी पिघला देती है।

८१ वास्तव मे नम्रता और कोमलता बडे काम की चीजें है। वे जीवन की बढिया शृंगार है, आभूषण है, उनसे जीवन चमक उठता है।

८२ ज्ञान प्राप्त करने के लिए विनम्रता की आवश्यकता होती है। विनीत होकर ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

८३. किसी में बुराई है तो बुराई की ओर मत देखो; बुराई की ओर देखोगे तो वह तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर जाएगी। जैसा ग्राहक होता है, वह वैसी ही चीज की तरफ देखता है।

८४. जीवन में थोड़ा-सा भी समय बहुत मूल्य रखता है। कभी-कभी ऐसे महत्त्वपूर्ण अवसर आते है, जिन पर आपके भावी जीवन का आधार होता है। उन बहुमूल्य क्षणों में अगर आप प्रमादमय होंगे तो आपका भावी जीवन बिगड़ जाएगा और यदि सावधान होंगे, आत्माभिमुख होंगे तो आपका भविष्य मंगलमयी बन जाएगा।

८५. दवाओं के सहारे प्राप्त तन्दुरुस्ती भी कोई तन्दुरुस्ती है। असली तन्दुरुस्ती वही है कि दवा का काम ही न पड़े। दवा तो बूढ़े की लकड़ी के समान है। लकड़ी हाथ में रही तब तक तो गनीमत और जब न रही तब चलना ही कठिन। इसी प्रकार दवा का सेवन करते रहे तब तक तो तन्दुरुस्त रहे और दवा छोड़ी कि फिर बीमार के बीमार। यह भी कोई तन्दुरुस्ती है ?

८६ जो वस्तु आत्मा के कल्याण में साधक नही है, उसकी कोई कीमत नही है।

८७ इस भ्रम को छोड़ दो कि जैन कुल में जन्म लेने से आप सम्यग्दृष्टि हो गये। इस खयाल में भी मत रहो कि किसी के देने से आपको सम्यग्दर्शन हो जाएगा; नहीं, सम्यग्दर्शन आपके आत्मा की ही परिणति है, एक अवस्था है। आपकी श्रद्धा, रुचि या प्रतीति की निर्मलता पर सम्यग्दर्शन का होना निर्भर है। शुद्ध रुचि ही सम्यग्दर्शन को जन्म देती है।

८८. कैसी भी रेतीली नदी बीच में आ जाए, धोरी बैल हिम्मत नही हारता। वह रास्ता पार कर ही लेता है। वह वहन किये भार को बीच में नही छोड़ता। इसी प्रकार सुदृढ श्रद्धा वाला साधक अंगीकार की हुई साधना को पार लगा कर ही दम लेता है।

८९. साधु-संतो का काम है जनता की शुभ और पवित्र भावनाओं को बढ़ावा देना; अप्रशस्त उत्तेजनाओं को, जो समय-समय पर दिल को अभिभूत करती है, दबा देना और इस प्रकार संसार में शान्ति की स्थापना के लिए प्रयत्नशील होना।

९०. मनुष्य की विवेकशीलता इस बात में है कि भूतकाल से शिक्षा लेकर वर्तमान को सुधारे और वर्तमान का भविष्यत् के लिए सदुपयोग करे। जिसमें ‍‍‍इतनी भी बुद्धि नही, उसे मनुष्य कहना कठिन है।

९१. परमात्मा में न सुगंध है और न दुर्गन्ध है। उसमें न तीखा रस है, न कटुक है, न कसैला है, न खट्टा है और न मीठा है। वह सब प्रकार के स्पर्शो से भी रहित है। न कर्कश है, न कोमल है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न चिकना है और न रूखा है।

९२. ज्ञान का सार है विवेक की प्राप्ति और विवेक की सार्थकता इस बात में है कि प्राणिमात्र के प्रति करुणा का भाव जागृत किया जाए। किसी ने बहुत पढ़ लिया है; बड़े-बड़े पोथे कण्ठस्थ कर लिये है, अनेक शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मगर उसके इस ज्ञान का क्या प्रयोजन है यदि वह सोच-विचार कर नही बोलता ?

९३. जिन वचनों से हिसा की प्रेरणा या उत्तेजना मिले वह वचन भाषा के दुरुपयोग में ही सम्मिलित हें; बल्कि यह कहना उचित होगा कि हिसावर्धक वचन भाषा का सबसे बड़ा दुरुपयोग है।

९४ जो व्यक्ति, समाज या देश विवेक का दिव्य दीपक अपने सामने रखता है और उसके प्रकाश में ही अपने कर्त्तव्य का निश्चय करता है, उसे कभी सताप का अनुभव नही करना पड़ता, उसे असफलता का मुँह नही देखना पड़ता।

९५. विवेकवान डूबने की जगह तिर जाता है और विवेकहीन तिरने की जगह भी डूब जाता है।

९६ धर्म व्यक्ति को ही नही, समाज को, देश को और अन्तत अखिल विश्व को शान्ति प्रदान करता है। आखिर समाज हो या देश, सबका मूल तो व्यक्ति ही है और जिस प्रणालिका से व्यक्ति का उत्कर्ष होता है, उससे समूह का भी उत्कर्ष क्यों न होगा ?

९७. विवेक वह आन्तरिक प्रदीप है जो मनुष्य को सत्पथ प्रदर्शित करता और जिसकी रोशनी में चलकर मनुष्य सकुशल अपने लक्ष्य तक जा पहुँचता है। विवेक की बदौलत सैकड़ों अन्यान्य गुण स्वत आ मिलते है। विवेक मनुष्य का सबसे बड़ा सहायक और मित्र है।

९८. शान्ति प्राप्त करने की प्रधान शर्त है समभाव की जागृति। अनुकूल और प्रतिकूल संयोगों के उपस्थित होने पर हर्ष और विषाद का भाव उत्पन्न न होना और राग-द्वेष की भावना का अन्त हो जाना समभाव है।

९९. जरा विचार करो कि मृत्यु से पहले कभी भी नष्ट हो जाने वाली और मृत्यु के पश्चात् अवश्य ही छूट जानेवाली सम्पत्ति को जीवन से भी बड़ी वस्तु समझना कहाँ तक उचित है ? अगर ऐसा समझना उचित नही है तो फिर लोभाभिभूत होकर क्यों सम्पत्ति के लिए यह उत्कृष्ट जीवन बर्बाद करते हो ?

१०० यह शरीर दगाबाज, बेईमान और चोर है। यदि इसकी नौकरी में ही रह गया तो सारा जन्म बिगड़ जाएगा; अतएव इससे लड़ने की जरूरत है। दूसरे से लड़ने में कोई लाभ नही, खुद से ही लड़ो।

१०१. मन सब पर सवार रहता है, परन्तु मन पर सवार होने वाला कोई विरला ही माई का लाल होता है; मगर धन्य वही है, जो अपने मन पर सवार होता है। □

मूर्तिमन्त अनेकान्त

जो दीपक घर में ही प्रकाश करता है उसकी अपेक्षा खुले आकाश में प्रज्वलित स्व-पर-प्रकाशक दीपक का महत्त्व अधिक है।

□ पं. नाथूलाल शास्त्री

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता पंडित मुनिश्री चौथमलजी महाराज के प्रभावशाली प्रवचनों के श्रवण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। अभी उन्हें दिवंगत हुए २७ वर्ष हुए है। अपनी सुमधुर व्याख्यान-शैली द्वारा इस विशाल भारत में लगभग ५२ वर्षों तक धर्म का प्रचार-प्रसार उन्होंने किया है। उनकी विद्वत्ता, व्यक्तित्व एवं उपदेश से प्रभावित होकर अनेक राजा-महाराजाओं और जागीरदारों ने अपने राज्य में होनेवाली पशु-पक्षियों, जलचरों आदि के बलिदान, शिकार आदि हिंसा-कार्यो को स्वयं व प्रजा द्वारा बन्द कराने की प्रतिज्ञा व हुक्मनामे निकाले गये, जिनका प्रकाशन हो चुका है।

कहा जाता है कि सभी तरह के सांसारिक संबन्धो का परित्याग कर केवल आत्मकल्याण के लिए ही मुनि दीक्षा ली जाती है। पर इस उद्देश्य को मै एकान्तिक मानता हूँ। जो दीपक घर मे ही रह कर प्रकाश करता है उसकी अपेक्षा खुले आकाश में प्रज्वलित स्व-पर-प्रकाशक दीपक का अधिक महत्त्व है। साधुगण का भी स्वकल्याण के साथ लोकहित संपादन करना मणि-काचन संयोग के समान है।

महाराजश्री न केवल प्रभावक वक्ता ही थे, वरन् प्रखर चिन्तक एव कुशल लेखक भी थे। उनकी अनेकान्त आदि विषयों पर विद्वत्तापूर्ण रचनाएँ पढ़ने से उनके उच्च शास्त्रज्ञान, अनेकान्त तत्त्व के मनन एवं परिशीलन का परिचय मिलता है। आज से ३९ वर्ष पूर्व की उनकी महत्त्वपूर्ण रचनायें अन्य दर्शनों की समालोचना के साथ अनेकान्त, नयवाद और सप्तभंगीवाद का विशद विवेचन है। विश्व-शान्ति के लिए 'जीओ और जीने दो' इस सिद्धान्त के अनुकरण की आवश्यकता है, उसी प्रकार दार्शनिक जगत् की शान्ति के लिए 'मै सही और दूसरे भी सही' का अनुसरण अनेकान्त की खूबी है। हमारा कर्तव्य है कि हम दूसरे के विचारो को समझे, उसकी अपेक्षा को सोचे और तब अमुक नय से उसे संगतियुक्त स्वीकार कर ले। इस अनेकान्त को जीवन मे उतार कर एक बौद्ध विद्वान् के शब्दों में 'घुमक्कड़ भगवान् महावीर' के समान महाराजश्री ने भी घुमक्कड़ और कष्ट-सहिष्णु बनते हुए धर्मोपदेश के साथ ही पिछड़े वर्ग में सहस्रों पुरुषों एवं महिलाओं को मद्य और मांस आदि दुर्व्यसनों का त्याग कराया तथा वेश्याओं को उनके व्यवसाय का परित्याग

(शेष पृष्ठ ४२ पर)

सत्यान्वेषी सन्त : मुनि श्रीचौथमलजी

□ दुर्गाशंकर त्रिवेदी

उनका जीवन सामाजिक एकता, मैत्री, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, अहिंसात्मक आचरण और सहज वात्सल्य की विजय का अपूर्व शंखनाद था।

वे वाग्मिता, यानी सहज वक्तृत्व कला के अद्भुत धनी थे, उनकी गुरु-गम्भीर वाणी मे एक विरल क़िस्म की अपरिमित चुम्बकीय ऊर्जा व्याप्त थी, जो चित्त को सहज ही बीध लेती थी।

वे हिंसा, अशान्ति, वैर और अविश्वास की दुर्दम शक्तियों को पराजित करके 'एकला चलो रे' के मार्ग-दीप को सदीप्त कर चलने वाले युग-पुरुष थे।

पतितों, शोषितो, दीन-दुखियों, पीड़ितो और तरह-तरह के कष्टों से संत्रस्त जन-सामान्य की पीड़ा-पूरित अश्रु-विगलित आँखों के आँसू पौछने को सन्नद्ध अहर्निश सेवारत सन्त थे।

ये तथा ऐसे कितने ही प्रशस्ति-परक वाक्यों की पंक्तियो के समूह जिस किसी आदर्श जैन सन्त के लिए लिखे जा सकते है, उनमें जैन दिवाकर सन्त श्रीचौथमल जी महाराज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समाज-सेवा को समर्पित ऐसा सत्यान्वेषी सन्त इस युग में दुर्लभ ही है। उन्होंने अपने अप्रतिम व्यक्तित्व के माध्यम से अज्ञानियों, अशिक्षितों, भूले-भटके संशयग्रस्त मनुष्यो के मन-मन्दिर मे साधना और सच्चरित्रता का अखण्ड दीपक प्रज्वलित किया। विश्व-मंगल के लिए तिल-तिल समर्पित इस महामानव का व्यापक प्रभाव आज भी उसी तरह से कायम है। श्रद्धा का सैलाब जनजीवन में उसी तरह उफनता नजर आता है उनके नाम पर!

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी, रविवार संवत् १९३४ को मध्यप्रदेश के नीमच नगर में जन्म लेकर श्री चौथमलजी महाराज ने १८ वर्ष की वय मे ही बोलिया (मंदसौर, म.प्र.) में श्री हीरालालजी महाराज से दीक्षा लेकर 'वसुधा; मेरा कुटुम्ब' की घोषणा की थी। जिसे आजीवन निभाकर आपने मानवोद्धार का मार्ग जन-जीवन मे प्रशस्त किया। अपने जीवन के ५५ चातुर्मासो मे आपने अपनी सहज बोधगम्य धारा-प्रवाही [illegible] छू कर उद्वेलित करने वाली गुरु-गम्भीर वाणी द्वारा छोटे-बडे, [illegible] अभिसिंचित किया। विभिन्न धर्मावलम्बियों के प्रति आपका सहज स्नेह इसी भावना का पोषक रहा है।

श्री [illegible] मुनि ने उनकी मानव-एकता की भावना से प्रभावित होकर उनका [illegible] ठीक ही कहा है—'इस महान् मनस्वी का व्यक्तित्व [illegible] सुवास की तरह [illegible] विकसित हुआ है। जंगल से उद्यानों तक,

गांवों से नगरों तक, झोपड़ियों से महलों तक, अज्ञों से सुज्ञों तक एवं राजाओं से रंक-पर्यन्त उनके उदीयमान व्यक्तित्व की अमिट छाप थी।

आपकी वक्तृत्व-शैली श्रोताओं को अपनी ओर खीचे बिना नही रहती थी। वह व्यक्तित्व को अन्दर से झकझोर कर रख दिया करती थी। श्रोता सोचने, करने की ऊहापोह में उलझकर कुछ कर गुजरने का साहस जुटा लिया करता था।

प्रसंग वि. सं. १९७२ का है। मुनिश्री पालनपुर में चातुर्मास कर रहे थे। आपके मार्मिक प्रवचनों की चर्चा नवाब तक पहुँची तो वह भी तारीफ को कसौटी पर कसने प्रवचन सुनने आया; और अभिरुचि जागृत हो उठने से बराबर आता ही रहा। चातुर्मास की समाप्ति पर एक दिन नवाब साहब एक बेशकीमती शाल महाराजश्री के चरणों में अर्पित करके बोले—"बराये करम, मेरा यह अदना-सा तोहफा कुबूल फर्मायें, मश्कूर हूँगा।"

चौथमलजी महाराज यह देखकर नवाब साहब से स्नेहपूर्वक बोले—'नवाब साहब, हम जैन साधु है! मर्यादित उपकरण रखते है। आज यहाँ, कल वहाँ, कभी जंगल में, तो कभी झोपड़ी में, कभी महल में, तो कभी टूटे-फूटे मंदिर में, मठों में रात गुजारनी होती है; इसलिए एसी कोई भी बहुमूल्य वस्तु हम नही स्वीकारते।"

नवाब साहब उनकी निर्लोभ वृत्ति से और अधिक प्रभावित होकर बोले—'क्या मै इतना बदकिस्मत हूँ कि मुझे खिदमत करने का मुतलक़ मौका भी क़िबला नही देगे?"

प्रसन्न मुद्रा मे मुनिश्री बोले—'नही, आप जैसे नरेश बदकिस्मत नही भाग्यशाली है कि सत्संग में आपकी रुचि है। साधु, चाहे वह भी किसी धर्म का अनुयायी हो, समाज को तो कुछ-न-कुछ देता ही है न! आप मुझे कुछ देना ही चाहते है तो अपनी कुछ एक दुष्प्रवृत्तियाँ ही दे दीजिये। जीवन-पर्यन्त आप जीवों का शिकार और मद्य-मांसादि सेवन का त्याग कर दे।"

नवाब साहब ने मुनिश्री चौथमलजी महाराज के समक्ष तीनों का ही त्याग का अहद लिया। रियासत में महाराजश्री के प्रवचनों में आम जनता से रुचि लेने की अपील भी उन्होंने की। ऐसी थी उनकी वृत्ति जो सहज ही हृदय-परिवर्तन की भाव-भूमिका उत्पन्न कर दिया करती थी।

'कोई कवि बन जाए सहज सम्भाव्य है'—वाली स्थितियाँ जीवन में सामान्यतया बनती नही है। काव्य-प्रसव प्रकृति की अनुपम देन है। आपने इस सन्दर्भ में भक्ति रस के हजारों पद, उपदेशात्मक स्तवन और सामाजिक रूढ़ियों के खिलाफ़ कविताएँ, दोहे, कवित्त आदि लिखकर उन्हे जनसामान्य में पर्याप्त लोकप्रिय बना दिया था। आज भी मेवाड़, मालवा और हाड़ौती अंचलों में ऐसे लोग सैकड़ो की तादाद में मिल जाएंगे जिन्हें उनकी रचनाएँ कण्ठस्थ है। उनके सुधारमूलक गीत बहुत से समारोहों में आज भी गाये जाते है।

संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी, गुजराती, राजस्थानी और मालवी के वे अधिकृत विद्वान् थे और अपने लेखन और प्रवचनों मे इनका बराबर उपयोग किया करते थे। 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन', 'भगवान् महावीर का आदर्श जीवन', 'जम्बूकुमार', 'श्रीपाल', 'चम्पक', 'भगवान नेमिनाथ चरित्र', 'धन्ना चरित्र', 'भगवान् पार्श्वनाथ', 'जैन सुबोध गुटका' आदि अनेक गद्य-पद्य कृतियों का प्रणयन आपने किया।

इन साहित्यिक सास्कृतिक-कृतियों पर किसी शोध-छात्र को कार्य करना चाहिये। शताब्दि-वर्ष मे उनके साहित्य का अधिकाधिक एवं व्यवस्थित प्रचार-प्रसार होना चाहिये, उस पर चर्चा-गोष्ठियाँ आयोजित करना भी सामयिक होगा।

वे वाग्मिता के अन्यतम धनी थे। उनकी वाणी मे श्रोताओं को उद्वेलित कर देने वाली अद्वितीय चुम्बकीय शक्ति थी। गहरे पैठ जाने वाली उपदेशात्मक प्रवृत्ति से अभिप्रेरित होकर उन्होने अज्ञानियों, अशिक्षितो, भूले-भटको, संशयग्रस्तों के मन मे सच्चरित्रता और निष्ठा का अखण्ड दीपक प्रदीप्त किया।

पचपन चातुर्मासों मे उन्होने अपने विशाल शास्त्रीय ज्ञान का सरलतम और सहज बोधगम्य धारा प्रवाहमयी प्रकृति से प्राप्त, सर्व जनहिताय, स्वभावसिद्ध वक्ता की अनूठी अपूर्व वक्तृत्व शक्ति का सामंजस्य उपस्थित किया। उत्तर भारत के अधिकांश जनपदों का विहार करके उन्होने जनता-जनार्दन मे सुधारवादी चेतना उत्पन्न की। उदयपुर, अलवर, रतलाम, कोटा, किशनगढ़, देवास, इन्दौर, सैलाना, जावरा टौंक आदि के नवाब और राजे-महाराज उनसे प्रभावित रहे। उपदेशो द्वारा उन्होंने अनेक हृदयो मे अहिंसा की प्रवृत्ति को पनपाया। इस दृष्टि से उनके अनेक संस्मरण जन-जीवन में व्याप्त है। □

(मूर्तिमन्त अनेकान्त : पृष्ठ ३९ का शेष)

कराकर सदाचारपूर्ण जीवन की ओर प्रेरित किया। आपने सामाजिक कुरीतियों मे भी सुधार कराकर समाज को आर्थिक कष्ट से मुक्ति दिलाई है।

कोटा मे तीनों जैन संप्रदायो के साधुओ का, जिनमें महाराजश्री भी सम्मिलित थे, एक साथ बैठकर प्रवचन देने की घटना अपनी विशिष्टता रखती है। वर्तमान में जैन संगठन का यह एक आदर्श उदाहरण है। इसीका अनुकरण उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी के इन्दौर चातुर्मास के समय हमने प्रत्यक्ष देखा है।

साधुपद की गरिमा सर्व प्रकार की दीवारों — साप्रदायिक विचारों के परित्याग में ही है। साधु वही धन्य है जो कर्तरिका (कैंची) के समान समाज को छिन्न-भिन्न न कर सूचिका (सुई) के समान जोड़ने का काम करता है। जैसे मारनेवाले से बचानेवाला महान् है, उसी प्रकार तोड़नेवाले से जोड़नेवाला महान् है। महाराजश्री इसके आदर्श उदाहरण थे। वे अत्यन्त सहृदय और उदार थे। करुणा उनके रोम-रोम से टपकती थी। उन्हे देखकर और सुनकर ऐसा मालूम पड़ता था मानो सर्वधर्मसमन्वयात्मक अनेकान्त का मूर्तिमान रूप हो। □

एक अलग शैली

जैन मुनियों के जीवन की एक शैली है, एक प्रक्रिया है—अनोखी, अलग, मौलिक; शास्त्रोक्त आचार के प्रति एकनिष्ट होकर एक मर्यादा मे जीना। वार्तालाप से लेकर व्याख्यान तक शास्त्रोक्त तत्त्वों का समीक्षण-विवेचन करते जाना बिना इस बात का पता लगाये कि श्रोता या वक्ता उसे समझ रहा है या नही। एक अन्धी परम्परा जिसमे "स्वाध्याय करना" मात्र एक उपचार है। सही है कि जैन-तत्त्व-दर्शन गहन-गंभीर है, फिर भी उसकी अपनी सरलताएँ है, सीधे और निष्कण्टक मार्ग हैं; किन्तु जैन मुनि अपने बंधे-बधाये वाक्यों द्वारा विशाल जनसमूह पर यह प्रभाव डालने का प्रयत्न करते है कि यह सब उनके वश की बात नही है। धर्म की इस किलेबन्दी को तोड़ा लोंकाशाह ने। उन्होंने पहली बार जैनतत्त्व को सर्वहारा के पटल पर उपस्थित किया, उसे जनमानस का विषय बनाया। उन्होने वीतराग-विज्ञान को उपासरों की चहरदीवारी से बाहर लाकर उसे एक निर्विकार नया आकार प्रदान किया। उनके इस क्रान्तिकारी कदम से परम्परितों मे भारी उथल-पुथल हुई। भ्रान्तियों का दुर्ग ढह गया, और जैनदर्शन का एक लोकसुलभ रूप सामने आया। स्थानकवासी जैन मुनियों ने लोंकाशाह के इस पवित्र अभियान को सदैव बढ़ाया, और जैन तत्त्व-दर्शन को जनता-जनार्दन तक पहुँचाने में एक ऐतिहासिक रोल अदा किया। विगत चार सौ वर्षो में वीतराग-विज्ञान को जिन सत्पुरुषों ने भारतीय लोकजीवन तक पहुँचाया उनमे प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर श्री चौथमलजी का नाम सर्वोपरि है। उनकी अपनी एक अलग ही प्रवचन-शैली थी, जो श्रोता के चित्त को चमत्कृत करती थी और उसे एक विशिष्ट आत्मीयता मे बाँध लेती थी। जैन तत्त्व-दर्शन की जैसी सरल व्याख्या-समीक्षा उन्होंने की है, उससे जैनधर्म की परिधि बढ़ी है और आम आदमी को इस बात की सूचना मिल सकी है कि जैन-धर्म केवल कुछ मुट्ठी-भर लोगों की संपत्ति या अधिकार नही है वरन् वह एक लोककल्याणकारी साधना-परम्परा है जो धर्म, सम्प्रदाय, सत्ता, सम्पदा इत्यादि के किसी भेद पर आधारित नही है बल्कि लोक-मंगल की व्यापक-निर्मल भावना पर खड़ी हुई है। मुनिश्री चौथमलजी महाराज की प्रवचन-शैली सरल, उदाहरणों और बोध-कथाओ से भरपूर, महावरों और कहावतों का खजाना लेकर चलने वाली शैली थी। समन्वय में उनकी सघन आस्था थी, इसीलिए उनकी प्रवचन-सभाओं मे सभी वर्गों के लोग आते थे और एक व्यापक समभाव का अनुभव करते थे। उनका साहित्य पांडित्यपूर्ण नही था, बल्कि सत्य को खोज कर उसे सीधी-सच्ची भाषा में प्रस्तुत करने वाला था। वस्तुतः वे दिवाकर थे, क्योंकि उनकी धूप और रोशनी ने कभी यह भेद नही किया कि वह किस तक पहुँचे, और किस तक नही। अमीर-उमरावों और ग़रीब-गुरबों सब तक उनकी वाणी पहुँची और उसने उन्हें बिना किसी भेदभाव के उपकृत किया। क्या हम उस महापुरुष के ऋण से कभी उऋण हो पायेंगे?

□ सौभाग्य मुनि 'कुमुद'

एक निःस्पृह महापुरुष

सौभाग्यवश मुझे उस निःस्पृह महामानव के सान्निध्य के कई मौके मिले, और जब भी एसा हुआ तब मुझे हर बार कोई-न-कोई ताजगी या नवीनता मिली। पता नही उनमें कौन-सा विलक्षण आकर्षण था कि क्या जैन, क्या जैनेतर सभी उनके निकट तक पहुँचने के लिए लालायित रहते थे । सभी का मन अक्सर उनकी मर्मस्पर्शी वाणी सुनने के लिए उत्कण्ठित रहता था । मेरे जीवन के पहले सत्रह वर्ष वैष्णवपुरी यानी नाथद्वारा मे ही बीते । पूज्य गुरुदेव का शुभागमन भी वहाँ कई बार हुआ। उस वैष्णव-बहुल नगरी में जैन तत्त्व-दर्शन की चर्चा, और फिर वह भी सार्वजनिक रूप मे बड़ा जोखिम भरा काम था, लेकिन अदम्य साहस के धनी उस महामानव ने उस असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया और अद्भुत प्रवचन वहाँ दिये । उनकी प्रवचन-सभाओं मे सभी आस्थाओ के लोग आते थे, और शनैः शनैः उन्हे अपना आत्मीय मानने लगे थे ।

पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में पं. मुनिश्री शेपमलजी का आचार्य-पद-समारोह भी यही संपन्न हुआ था । यह भी उस मनस्वी संत की दिव्यता का एक ज्वलन्त प्रमाण है । वस्तुतः वे 'स्व' की पूजा-अर्चना की कामना से उदासीन संपूर्णतः निःस्पृह महापुरुष थे, उनकी कथनी-करनी एक थी, "फूट डालो, और सत्ता में रहो" (डिवाइड एण्ड रूल) की दुर्नीति मे उनका कतई विश्वास नही था । परहित उनका प्रथम और अन्तिम जीवन-लक्ष्य था । वे उस पर तिल-तिल समर्पित थे। आज भी उस महापुरुष की ओजपूर्ण शिक्षाएँ हमारे जीवन का मार्ग आलोकित किये हुए है।

प्राणि-मात्र के कल्याणार्थ हुए उनके सदुपदेश समाज के गरीब, साधनहीन, कमजोर और असहाय वर्ग के उत्थान की निरन्तर प्रेरणा देते रहे; किन्तु अब यह विचारणीय है कि हमने उनके बाद उनकी इस वैचारिक धरोहर को कितना सक्रिय रक्खा ? क्या अब तक हमने जो किया है, उसका कोई हिसाब हमने लिया है ? क्या हमने कभी इस बात पर विचार किया है कि मुनिश्री की आज के जीवन कितनी प्रासंगिकता है ? क्या उनके उपदेश आज हमारे जीवन मे कोई नयी रोशनी और आभा उत्पन्न करने मे समर्थ है ? यह मूल्यांकन उनके गुण-गान से संभव नही होगा, इसके लिए हमे त्याग करना होगा, सर्वजन हिताय समर्पित होना होगा ।

□ **फतेहलाल संघवी, जावरा**

वे अक्षर-पुरुष थे

जिन मानवों की करुणा 'स्व' से उठ कर 'पर' तक पहुँचती है, जिनका जीवन-लक्ष्य आत्म-कल्याण के साथ जन-कल्याण भी है, और अखिल मानवता के प्रति भेद-रहित होकर न्योछावर हो जाना ही जिनका ध्येय है, वे ही महामानव है। ऐसे महामानवो मे मुनिश्री चौथमलजी महाराज का नाम अविस्मरणीय है। जनता-

जनार्दन ने उन्हें एक नयी ही आलोक-सृष्टि देने के कारण "जैन दिवाकर" कहा, उनकी व्यापक और चुम्बकीय आत्मीयता के कारण उन्हें "जगत्-वल्लभ" से संबोधित किया और सहज-सुगम किन्तु तेजोमय वाणी के कारण "प्रसिद्ध वक्ता" कहकर पुकारा। वस्तुतः वे अक्षर-पुरुष थे, उन्हें वाणी और वर्ण पर विलक्षण प्रभुता प्राप्त थी। वे सरस्वती-पुत्र थे। "निर्ग्रन्थ प्रवचन" उनकी विचक्षण सारस्वत प्रतिभा का एक ज्वलन्त प्रमाण है। व्यथितों-पतितों की सेवा, समन्वय और आध्यात्मिक साधना उनके जीवन के सुविध लक्ष्य थे। वे सचमुच दिवाकर थे। वे सर्वत्र सुन्दर थे—नीमच-उदयाचल, ब्यावर-मध्यान्ह, कोटा-अस्ताचल—क्रमशः उनके जीवन की सुबह, दुपहर, शाम; सभी समन्वय, लोकमंगल और आत्मिक साधना की रोशनी से आलोकित। धर्म जिनके लिए जोड़ना था, तोड़ना नहीं, मैं उस महामनुज का पुनीत स्मरण करती हूँ।

☐ पारसरानी मेहता, इन्दौर

गागर में सागर वे

गुरुदेव के विचार बहुत उन्नत और प्रगतिशील थे। उनकी कथनी-करनी में तनिक भी अन्तर नहीं था। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण उनका कोटा-वर्षावास था। इसमें दिगम्बर, श्वेताम्बर, सभी सम्प्रदायों और परम्पराओं के आचार्यो और मुनियों का एक ही मंच पर उपस्थित होना एक विलक्षण उपलब्धि थी। सबने प्रवचन दिये और एकता का सुखद वातावरण बनाया। समाज के इस निर्मलीकरण का संपूर्ण श्रेय उन्हें ही है। उनमें असीम गुण थे। वे गागर मे सागर थे। उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर मैं भी अपना जीवन धन्य और सफल बना सकूँ, यही शुभाकांक्षा रखता हूँ।

☐ रंगमुनि

मुझे याद है

मुनिश्री चौथमलजी महाराज एकता के अग्रदूत थे। विभिन्न जैन सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने के जो प्रयत्न उन्होंने किये, उनके लिए जैन समाज सदैव उनका ऋणी रहेगा। यद्यपि वे आज हमारे बीच नहीं है, तथापि उन्होंने एकता का जो संदेश दिया हम उसका पालन करें और एक बने रहें यही उनके प्रति हमारी कृतज्ञता होगी। वे एक अलौकिक पुरुष थे। उनका जीवन महान् था, बहुत पुण्यवान थे। नीमच की एक घटना का स्मरण मुझे है। बात वि. सं. १९९९ की है। गुरुदेव अपनी शिष्य-मण्डली के साथ नीमच पधारे थे। मैं भी उनके दर्शन-लाभ का लोभ नही रोक सका। दर्शनार्थ नीमच गया। वे चौरड़िया गुरुकुल मे विराजमान थे। रात्रि में अपने अनुयायियों को अपनी अमृतवाणी का रसपान कराते रहे। प्रातःकाल विहार पर निकले। मैं भी साथ हो गया। चलते-चलते मैंने प्रश्न किया—

"नीमच तो आपकी जन्म-भूमि है फिर भी विहार मे आपके साथ तीन-चार भक्तों से अधिक नही हैं?" प्रश्न सुन कर वे दो मिनिट ध्यानस्थ हो गये। मै स्तब्ध देखता रहा। चारों ओर से जन-समूह उमड पड़ा। मुझे याद है अधिक-से-अधिक पाँच मिनिट मे वहाँ एक हजार से अधिक भक्तों की भीड़ जमा हो गयी थी। मेरे लिए निश्चित ही यह एक अद्भुत-अपूर्व घटना थी।

□ **सौभाग्यमल कोचट्टा, जावरा**

युग का एक महान् चमत्कार

जिस महान् विभूति का जन्म-शताब्दि-वर्ष सारे देश मे मनाया जा रहा है, वह केवल जैन समाज का ही नही वरन् संपूर्ण भारत का एक असाधारण संत-पुरुष था। भारत की जनता के नैतिक जीवन को ऊँचा उठाने और अहिंसा के प्रचार-प्रसार की दिशा मे श्री जैन दिवाकरजी महाराज ने जो योगदान किया है, वह अविस्मरणीय है। उन्होंने अपने अनूठे व्यक्तित्व और अपनी असाधारण वक्तृता से वडे-वडे राजा-महाराजाओं को प्रभावित किया और यथाशक्ति जीव-दया तथा अहिंसा का व्यापक प्रसार किया। सैकड़ों राजाओं और जागीरदारों ने जीव हिंसा-निषेध के पट्टे लिख कर उन्हे समर्पित किये। यह उस युग का एक महान् चमत्कार था। वस्तुत. वे मेरे परम आराध्य गुरु है। जब मै ९ वर्ष का ही था, तब उनसे मैंने गुरु-आम्नाय (सम्यक्त्व) ली थी। एक लम्बी अवधि के बाद जोधपुर-चातुर्मास में मै उनके दर्शनार्थ गया था। तव मै बीस वर्ष का तरुण था। पूरे ११ वर्षों बाद मैने यह दर्शन-लाभ किया था। गुरुदेव प्रवचन दे रहे थे। दस हजार से अधिक लोग एकटक, मंत्र-मुग्ध उन्हें सुन रहे थे। व्याख्यान के बाद मे भी उनके साथ-साथ चलने लगा। मार्ग मे उन्होने मुझ से पूछा—"बापू, थने याद हे, संवत् १९८५ मे गुरु-आम्नाय ली थी?' इस आत्मीय स्वर ने मुझे नखशिख हिला दिया। ११ वर्ष के अन्तराल के वाद भी वे मुझे नही भूले थे। सैकड़ो लोगो के बीच चलते हुए उन्होने मुझसे यह प्रश्न किया था। इस एक ही बात से मै इतना अभिभूत हुआ कि फिर प्रतिवर्ष उनकी सेवा में उपस्थित होने लगा। वि. सं. १९९६ से ह[illegible] मेरा प्रयास रहा कि श्री जैन दिवाकरजी का एक चातुर्मास रतलाम कराऊँ। अप[illegible] प्रयत्न मे मुझे सफलता मिली संवत् २००० मे। उनका यह चातुर्मास सघ की [illegible]कता की दृप्टि से चिरस्मरणीय रहा। रतलाम के वाद संवत् २००७ मे उनका [illegible] चातुर्मास कोटा मे हुआ। जैन-समाज की भावात्मक एकता के संदर्भ मे यह चातुर्मास अद्वितीय रहा। इसके वाद ही वे उदर-व्याधि से पीड़ित हुए। १४ दिन उन्हे यह पीडा रही। मै लगभग १२ दिन उनकी सेवा मे अन्तिम क्षणो तक रहा। मुझे उनकी अन्तिम वन्दना का सौभाग्य मिला था।

□ **बापूलाल बोथरा, रतलाम**

एक आस्था-स्तम्भ

।जन संस्थाओं के माध्यम से सत्साहित्य की जो सेवा हुई और होती रहेगी, क्या वे श्री जैन दिवाकरजी को आस्था-स्तम्भ मानने से मुकर सकती है ?

जिन शिष्य-शिष्याओं को मुक्ति-मार्ग के मुख्य साधन संयम की प्राप्ति में उन्होंने जो प्रेरणा दी, वे संत तथा सती आजीवन अपनी श्रद्धा अन्यत्र कैसे समर्पित करेंगी ? जिन-जिन पतितों को राज्य, समाज तथा परिवारवालों ने गले नहीं लगाया, उनको अपनी करुणा की छाया में बैठने दिया, वे श्री जैन दिवाकरजी के प्रति श्रद्धावनत हों, इसमें आश्चर्य नही है ।

इस प्रकार जिन-जिन महानुभावों को श्री जैन दिवाकरजी म. के दर्शन मिले, प्रवचन सुनने का अवसर मिला, वात्सल्य सुलभ हुआ, ज्ञान-प्राप्ति हुई और मार्गदर्शन मिला, वे सब ही हृदय की गहराई से उनका सतत स्मरण करते और श्रद्धा-सुमन चढ़ाते है, क्योंकि वे उनके लिए एक आशा-स्तम्भ ही तो रहे है ।

☐ सुभाष मुनि

उनके आदर्शों का आत्मसात् करें

श्री जैन दिवाकरजी का संपूर्ण जीवन अगणित प्रेरक, मार्मिक, आदर्श और अनुकरणीय घटनाओं से ओतप्रोत था । वे संप्रदाय-समन्वय के हिमायती थे, उनके सान्निध्य में कोटा में जो सन्त-सम्मेलन हुआ, जिसमें दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी सन्तों ने एक मंच से जनसमुदाय को सम्बोधित किया। वह परम्परा अक्षुण्ण रहे और समस्त सन्त-समुदाय मानव-कल्याण के लिए एक मंच से जिनशासन-धर्म का उद्घोष करे, यही इस पावन शती-समारोह का आदर्श सन्देश है । जन्म-शताब्दि-वर्ष में हम उनके आदर्शो को आत्मसात् करें, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी ।

☐ दिनेश मुनि

'मुझे दीक्षा दीजिये'

मेरी माताजी का स्वर्गवास हो गया था । हम तीन भाई छोटे थे । हमारी सार-संभाल और व्यापार को ध्यान में रखकर पिता श्री मोड़ीरामजी गांधी पुनर्विवाह का सोच रहे थे । संयोगवश, मेवाड़धरा को पावन करते हुए पूज्य गुरुदेव चौथमलजी का देवगढ़ (मदारिया) नगर पदार्पण हुआ । चौक बाजार में उनके व्याख्यानों की धूम थी । एक दिन पूज्य गुरुदेव ने पिताश्री को उपदेश देते हुए इच्छा प्रकट की कि आप चारों प्राणी संसारी कार्यो से निवृति ग्रहण करें और धार्मिक कार्यो मे प्रवृत्त होकर जिनशासन को प्रकाशित करे । पिताश्री ने प्रत्युत्तर मे कहा कि प्रताप अभी छोटा है । बड़ा होने पर हम आपकी इच्छानुसार करेंगे ।

पूज्य जैन दिवाकरजी तो अन्यत्र प्रस्थान कर गये। इधर प्लेग की बीमारी में पिताश्री और दो भाइयों की मृत्यु हो गई। केवल मै बच गया। कालान्तर मे गुरुदेव श्री नन्दलालजी म. मुनिमंडल के साथ देवगढ़ पधारे। उन्हे हमारे परिवार का पता चल गया। मुझे बुलाया और कहा 'प्रताप, तेरा सारा परिवार दीक्षित होनेवाला था किन्तु ऐसा नहीं हो सका। अब बाप का कर्ज तू चुका सकेगा ?' मैंने तत्काल कहा, 'हाँ, गुरुदेव, मैं अपने बाप का कर्ज चुकाने को तैयार हूँ। आप मुझे दीक्षा दीजिये।' तब संवत् १९७९ में मैंने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया। मूल मे तो जैन दिवाकरजी म. थे ही।

☐ **प्रताप मुनि**

वाणी में गहन प्रभाव

वे यथानाम तथागुण थे। चौ=चार, था=स्थित होना। चार मे स्थित होना। चार कौन ? सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य और तप इनमे स्थित होकर चार मल्ल–क्रोध, लोभ, मान और माया–को पछाड़नेवाले तथा अपनी आत्मा से उपशम तथा क्षमोपशम कर उन्होने 'चौथमल' नाम को सार्थक किया।

श्री जैन दिवाकरजी की वाणी मे गहन प्रभाव था। जो कोई भी उनके प्रवचनों का श्रवण करता, वह कितना भी अधम तथा दुर्व्यसनी क्यों न हो, उनकी पीयूषमयी वाणी से प्रभावित होकर उन्मार्ग को छोड़कर सन्मार्ग स्वीकार कर लेता था।

इस प्रकार कई दुर्व्यसनियों और कुमार्गियों ने उनके सदुपदेशों को सुनकर अपने जीवन तक, मार्ग ही बदल दिया और सदाचरण को अपना लिया।

मैं ऐसे 'वाक्-विभूषण, धर्म-धुरन्धर' को अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित करती हूँ।

☐ **महासती रामकुंवर**

साहित्य की श्रीवृद्धि

संपूर्ण जैन वाङमय का संग्रह करके श्री जैन दिवाकरजी म. ने 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' का जो संकलन किया, वह उनकी साहित्यिक दृष्टि से अनोखी सूझ-बूझ है। इतना ही नही, 'गीता-सप्ताह' या 'भागवत-सप्ताह' की भाँति वे उसका प्रति वर्ष पारायण करते थे और एक सप्ताह तक इस पर गंभीर प्रवचन करके जिनवाणी के माध्यम से भव्य प्राणियो को अध्यात्म-रस का आस्वादन करवाते थे। वास्तव में यह ग्रन्थ समग्र जैन साहित्य का निचोड़ ही है। इसके अलावा समय-समय पर उन्होंने अनेको सर्वोपयोगी प्रार्थनाएँ, कविताएँ तथा काव्यमय जीवन-चरित्र लिखकर अपनी आध्यात्मिक प्रतिभा का उपयोग करने के साथ जैन साहित्य की श्रीवृद्धि भी की।

उन्होंने अनेकों प्रदेशों में विहार कर अपने प्रवचनो के माध्यम से जैनधर्म के सिद्धान्तों को जिस सुन्दर रूप मे समाज के समक्ष प्रस्तुत किये, श्रद्धालुओं ने हृदयंगम भी किया,

वे आपकी सेवा के जीते-जागते उदाहरण हैं। ऐसे अद्भुत व्यक्तित्व के धनी पूज्य गुरुदेव को उनकी सेवाओं के प्रति नतमस्तक होकर कोटिशः वन्दन !

☐ विमल मुनि

अक्षर अध्यात्म

संवत् २००१ में गुरुदेव का चातुर्मास उज्जैन हो रहा था। उस समय का यह प्रसंग है। एक छोटा-सा अबोध बालक, जो करीब चार-पाँच वर्ष का ही होगा, उनके दर्शनार्थ आया। गुरुदेव ने कहा, 'तुम्हारा नाम क्या है ? तुम क्या पढ़ते हो ?' वह उसी समय वहाँ से उठा और अपनी किताब लेकर आ गया। उन्होंने पूछा, 'यह क्या है ?' तब उस बालक ने सहज निडर भाव से कहा कि यह 'अक्षर ज्ञान' की किताब है। 'तुम इसे पढ़ना जानते हो ?' 'हाँ' कहने पर गुरुदेव ने उसे पढ़कर सुनाने को कहा। वह बालक अपनी तोतली बोली में पढ़ने लगा। पहला ही पाठ था—**'अकड़ कर मत चल, नम कर रह।'**

यह सुनकर गुरुदेव समझाने लगे, 'है तो यह अक्षर ज्ञान, पर इसमें कितना महान् अर्थ छिपा हुआ है। उत्तराध्ययन के प्रथम अध्याय का पूर्ण चित्र इसमें चित्रित है। इसमें भगवान ने विनय को महत्त्व दिया है। मानव का कल्याण अकड़ कर चलते में नही, अपितु नम्रता के भावों से ही संभव है।' उस दिन तत्त्व-चर्चा का यहीं विषय बना रहा। गुरुदेव ने अक्षर ज्ञान को अध्यात्म का प्रतीक बतलाया। अक्षर ज्ञान को अध्यात्म का प्रतीक बतलाया। अक्षर ज्ञान में जो प्रथम अक्षर है वह 'अरिहन्त' का ही सूचक है। द्वितीय आचार्य का। मानव को इस पर बार-बार विचार करना चाहिये। ये विचार ही आत्म-कल्याण के साधन हैं।

☐ अशोक मुनि

जीवन की प्रमुख घटनाएँ

पं. मुनि श्री चौथमलजी महाराज के जीवन की कतिपय प्रमुख घटनाओं का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

☐ वि. सं. १९६३ में कानोड़ (उदयपुर) के बाजार में मुनिश्री के प्रवचन हो रहे थे। उस समय वैष्णव भाइयों का जुलूस निकल रहा था। झगड़ा होने की संभावना देखकर उन्होंने अपना प्रवचन बन्द कर झगड़ा नही होने दिया।

☐ वि. सं. १९६६ में उदयपुर के निकट नाईग्राम में मुनिश्री के प्रवचन से प्रभावित होकर चार हजार आदिवासियों (भीलों) ने माँस खाने का त्याग कर दिया।

☐ वि. सं. १९७८ मे रतलाम मे चातुर्मास के समय महावीर-मंडल की स्थापना हुई और सं. १९८२ में जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस खरीदा गया। जैनोदय पुस्तक प्रकाशन समिति, रतलाम द्वारा मुनिश्री का साहित्य प्रकाशित होने लगा।

☐ वि. सं. १९८२ में ब्यावर में सेठ श्री कुन्दनमल लालचन्द ने मुनिश्री के सदुपदेश से प्रेरित होकर रु. १,२२,८०० से कुन्दन ट्रस्ट बनाया। इस राशि को अनेक धार्मिक कार्यों में व्यय किया।

☐ जब मुनिश्री पाली (राजस्थान) में विराजमान थे, उन्होंने सर्वप्रथम संघ-एकता के लिए अपनी स्वीकृति दी। फलस्वरूप श्री वीर वर्द्धमान स्थानकवासी श्रमण-संघ की स्थापना हुई।

उनके जीवन-काल मे चार मुख्य अवसरों पर रविवार आया — जन्म, दीक्षा, अंतिम प्रवचन और दिवंगति।

☐ पं. मुनि हीरालालजी

प्यार ही प्यार — प्रीति ही प्रीति

जैन दिवाकरजी वाग्मी सन्त थे। उनके व्याख्यानो की प्रसिद्धि दूर-दूर तक थी। उनकी प्रवचन-शैली मौलिक थी, और गहन-गंभीर विषयों की उन्हें सम्यक् पकड़ थी। वे जहाँ भी गये, गाँव या शहर, झोपड़ी या महल, उन्होंने अपने प्रवचनों से गरीब-अमीर, किसान-मजदूर सबको प्रभावित किया। अहिंसा के वे शक्तिशाली पक्षधर थे। उनके हृदय मे प्राणिमात्र पर अपार करुणा थी, किसी के प्रति कोई राग-द्वेष नही था। हृदय के अंतिम कोने तक उनमे प्यार-ही-प्यार—प्रीति-ही-प्रीति थी।

—कान्ति मुनि

परोपकारी प्रखर वक्ता

जगद्वल्लभ, प्रसिद्ध वक्ता श्री चौथमलजी महाराज का समग्र जीवन इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि कोरी दीक्षा कभी भी श्रेयस्कर नही है; उसके साथ ज्ञान और अभीक्ष्ण स्वाध्याय की एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि आवश्यक है। इसीलिए उन्होंने दीक्षा लेने के बाद संस्कृत, प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओ का, और जैन-जेनेतर साहित्य का गहन-गहरा अध्ययन किया। गीता, बाइबिल, भागवत आदि अनेक जैनेतर ग्रन्थों का सन्तुलित मन्थन किया, स्वाध्याय किया, पारायण किया—उनकी बारीकियो को समझा। उन्होने परोपकार मे अपना समूचा जीवन ही लगा दिया। उन्होंने अनेक प्राणियों के कष्टो का निवारण किया, उन्मार्ग से सन्मार्ग पर डाला। कइयो के व्यसन छुडाये और कइयों से मासाहार का त्याग कराया। उनकी अमृततुल्य वाणी सबका कल्याण करनेवाली थी। वे प्रखर वक्ता/परोपकाररत संत पुरुष थे। उन्हे मेरे प्रणाम !

—साध्वी मधुबाला

कर्त्तव्य में कठोर

स्व. गुरुदेव चौथमलजी महाराज के जीवन में सरलता; मुखमण्डल पर सतत, अदृप्त-अपराजित आध्यात्मिक मुस्कराहट, शान्ति और समभाव; वाणी में जादू-सा आकर्षण, और कर्त्तव्य-पालन में आश्चर्य में डाल देनेवाली कठोरता थी, इसीलिए अनेक मुमुक्ष आत्माएँ उनके पुण्य संपर्क में आकर संसार-सागर से तिर गयीं। जो भी उनके पावन प्रवचन एक बार सुन लेता था, उसके जीवन की काया ही पलट जाती थी। मुझे उन्हें सुनने का एक बार सौभाग्य मिला, तब मैं किशोर थी। मेरी सुप्तात्मा ने अंगड़ाई ली। प्रवचन ने मुझे अभिभूत किया। माँ से मन की बात कही। वे पहले ही भीतर-ही-भीतर इस ओर अपना कदम उठा चुकी थीं। दोनों सहमत हुयी और निर्ग्रन्थ मार्ग पर चल पडी। यह सब उन्हीं का प्रताप था। वे अपूर्व गुणों के अपूर्व भाण्डार थे। उन्हें नमन !

—साध्वी मदनकुंवर

उनकी पावन स्मृति

उनकी पुनीत स्मृतियाँ आज भी लोकहृदय पर विद्यमान हैं। वे तप और संयम की साकार प्रतिमा थे। उन्होंने क्या-क्या करिश्मे नही दिखाये। कइयों को डूबते से बचाया। वे अध्यात्म पुरुष थे। उनमें अतुलित बल था, वे परोपकारी संत और कर्मठ योगी थे। उन्हें मेरी अकिंचन वन्दना !

—साध्वी विजयकुंवर

प्रेम के देवपुरुष

गुरुदेव प्रेम के देवता थे। जैन समाज मे व्याप्त फिरकापरस्ती के वे विरुद्ध थे, अतः उनका सारा प्रयास एकता स्थापित करने की ओर ही था। उन्हें जब भी, जहाँ भी अन्य सम्प्रदायों के मुनि-मनीषियों के साथ सहचिन्तन और व्याख्यान करने/दिने के अवसर मिले, वे प्रसन्नता के साथ वहाँ गये और ऐसे कार्यक्रमों में सम्मिलित हुए। कोटा में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संप्रदाय के श्री आनन्दसागरजी, दिगम्बर संप्रदाय के आचार्य श्री सूर्यसागरजी के साथ संपूर्ण चातुर्मास में प्रत्येक रविवार को उन्होंने प्रवचन दिये। उन्होंने प्रेम का कोरा उपदेश ही नही दिया वरन् उसके अनुरूप बीसियों कार्य भी किये। रविवार उनके जीवन का एक भाग्यशाली वार था। उनका जन्म रवि को हुआ, दिवंगति रवि को हुई, दीक्षा रवि को हुई और अन्तिम प्रवचन भी रवि को ही हुआ। वे जैन दिवाकर थे। वे परम पुण्यवान संत पुरुष थे, उन्हें शतशः वन्दन !

—भगवती मुनि 'निर्मल'

विराट् योगी

उनके महज्जीवन में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का आदर्श समन्वय था। वे सही अर्थो में श्रमण संस्कृति के दैदीप्यमान सूर्य थे; यथानाम तथागुण। 'निर्ग्रन्थ प्रवचन'

उनकी एक चिरस्मरणीय देन है। यह उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा की द्योतक कृति है। इसे हम जैनों की गीता, बाइबल, रामायण, कुरान आदि कह सकते हैं। यह जैनतत्व-नवनीत है, जैनदर्शन का सर्वोत्कृष्ट सारांश। वास्तव में वे विराट् योगी थे। उन्होंने असंख्य भूले-भटकों को एक उज्ज्वल मार्ग दिखाया और उन्हें अपनी वरदानी वत्सलता से अभिषिक्त किया। उनके संपर्क से कइयों के जीवन की धारा ही बदल गयी। ऐसे संत महापुरुष के चरणारविन्द मे मेरे शत-शत प्रणाम !

—श्रीमती भुवनेश्वरी जी. भण्डारी, इन्दौर

क्रान्तदर्शी जैन दिवाकर

आज से लगभग सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व मालवा के अचल मे प्रतापी संत श्री चौथमलजी महाराज हुए। हजारों-हजार लोग उनकी वाणी से उपकृत-अनुगृहीत हुए। उनकी प्रवचन-सभाएँ समवसरण-जैसी ही होती थी, वहाँ कोई भेदभाव या पक्षपात नही था। गरीब-अमीर, जैन-जैनेतर, ऊँच-नीच की कोई भेद-भिन्नता नही थी। उनकी आवाज बुलन्द थी। ध्वनिविस्तारक के बगैर आसानी से वे पाँच-सात हजार लोगो को उद्बोधित करते थे। सभाएँ अद्भुत होती थी। चारों ओर मौन और शान्ति की चादर-सी बिछ जाती थी। सब मन्त्रमुग्ध उन्हे सुनते थे। विहार मे तो उनके साथ एक मेला ही चलता था। मार्ग मे सैकड़ो ग्रामीण उनके पारस-सपर्क मे आते थे और उनकी प्रेरणा से मास-मदिरा का त्याग कर देते थे। उदयपुर के महाराणा, जो कभी किसी के सम्मुख नही झुके, बड़ी श्रद्धापूर्वक उनके चरणों मे नतमस्तक हुए। राव हो या रंक, प्रत्येक के लिए उनके हृदय में अपार वात्सल्य और स्नेह था। राजस्थान के भीलों पर भी उनके व्यक्तित्व का गहन-गंभीर प्रभाव हुआ। आज भी वहाँ के आदिवासी मुनि श्री चौथमलजी का स्मरण करके अन्य जैन साधुओं को पूरा सम्मान देते है। जैन दिवाकरजी क्रान्तदर्शी महापुरुष थे। उन्होने समाज से अनेक कुप्रथाओं का अन्त किया और वृद्धों, उपेक्षितों तथा निराश्रितों को आश्रय दिया। चित्तौड का वृद्धाश्रम उनकी इस करुणार्द्रता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। माँ सरस्वती की उन पर ऐसी कृपा थी कि वे अजस्र रूप मे गद्य-पद्य, गीत-भजन लिखा करते थे। उनके द्वारा प्रदत्त-प्रणीत साहित्य आज हमारी अमर निधि है। आज भी उनकी शिष्य-परम्परा के दो संत ऐसे है जो उनके उत्तराधिकार को अक्षुण्ण बनाये हुए है। पंडितरत्न कविवर्य केवलमुनिजी महाराज तथा श्री इन्दरमलजी महाराज के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

—फकीरचन्द मेहता, इन्दौर

एक महान् संत

आज से लगभग आधी शताब्दी पूर्व देवास के भंडारी-परिवार के आग्रह पर जैन दिवाकरजी श्री चौथमलजी महाराज ने देवास मे अपना चातुर्मास संपन्न किया था। भण्डारी-

परिवार उन दिनों वस्त्र-व्यवसायी था। होल्कर, धार, कोल्हापुर, सिंधिया तथा देवास के राजघरानों में उन्ही के यहाँ से कपड़ा मंगाया जाता था। देवास छोटी पांती के महाराजा मल्हारराव बड़ी उदार वृत्ति के व्यक्ति थे। मेरे पिता श्री चम्पालालजी भण्डारी ने उनसे एक बार पूज्य मुनिश्री के दर्शन का आग्रह किया तदनुसार वे देवास के स्थानक में उनका प्रवचन सुनने पधारे। ३-४ दिनों तक नियमित प्रवचन सुनने के बाद वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मुनिश्री से स्वयं प्रार्थना की कि "स्थानक छोटा पड़ता है, आप राजबाड़े में प्रवचन देकर मुझे तथा यहाँ की जनता को अनुगृहीत करे"। उन दिनों देवास की आबादी कोई १५-२० हज़ार की होगी, जिसमें से १०-१२ हजार लोग उनकी प्रवचन-सभाओं में आते थे, आसपास के गांववाले भी वहाॅ आते थे, पूज्य दिवाकरजी की वाणी बड़ी ओजस्विनी थी। वे बगैर लाउडस्पीकर के बोलते थे। उन्होंने उस जमाने मे हरिजन, आदिवासी जैसे निम्नवर्गो को भी गले लगाया; और धर्मान्धिता, छुआछूत और अन्धी जातीयता को करारी चुनौती दी। वे महान् क्रान्तिकारी संत थे–मिथ्या आडम्बरों से कोसों दूर, सरल, सहज, सम्यक्, स्वाभाविक। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों और अव्यवस्थाओं पर भी तीक्ष्ण प्रहार किया। बुराइयों, कुरीतियों को कभी नहीं बख्शा। मोची, भंगी, मुस्लिम सभी भाइयों को उन्होंने उपदेश दिये और उन्हें एक विशुद्ध शाकाहारी जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी। वस्तुत· वे मानवतावादी सिद्धान्तों के प्रचारक थे; उनकी वाणी में अदम्य बल था, वे स्पष्टवादी थे, उनकी कथनी-करनी मे आश्चर्यजनक एकता थी। उन्हे मेरे, प्रणाम !

–गुलाबचन्द भण्डारी, इन्दौर

वसुधा मेरा कुटुम्ब

"सारी धरती मेरा परिवार है" की भावना को कह-कह कर भी धर्म के नाम पर जब मानव-मानव के बीच दूरियाँ बन रही थी, तब जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का उदय हुआ। उन्होंने अपने असाधारण चारित्रबल से टूट रहे समाज को एक नयी दिशा-दृष्टि प्रदान की। कोटा-चातुर्मास मे विभिन्न धर्मो के श्रोता जिस उत्सुकता, और श्रद्धा और उत्साह से उनके प्रवचनो को सुनते थे, उसे देख हम उन्हें सहज ही विश्व-संत कह सकते है। आज भी उनके श्रद्धालु भक्त हाड़ौती-अंचल में एक भारी संख्या में है। उनके प्रवचनों में जो प्रकाश था उसने अनेक भूले-भटकों को राह दिखायी और उन्हें एक साफ-सुथरे जीवन में सुस्थिर किया। वि. सं. २००७ में उनका अन्तिम चातुर्मास कोटा मे ही संपन्न हुआ। तब मुझे उनकी सेवा-शुश्रूषा का सौभाग्य मिला। वे क्षण मेरे जीवन की बहुमूल्य पूंजी है। उस समय भारत-विभाजन के शिकार हम लोग स्यालकोट से आये ही थे, ऐसे संकट के समय गुरुदेव के कृपामृत से हमें अपूर्व शान्ति मिली। वस्तुत: उनका जीवन एक उज्ज्वल मार्गदीप था, जो आह्वान करता था कि हम उनकी "वसुधैव कुटुम्बकम्" भावना के अनुरूप समाज-रचना के लिए स्वयं को अर्पित करे और विना रुके अप्रमत्त भाव से कार्य करते चले जाएँ।

–हरबन्सलाल जैन, कोटा

विशाल वटवृक्ष

स्व. पूज्यपाद श्री जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज संसार को प्रकाश देनेवाले युगपुरुष थे। उनके जीवन की एक महान् विशेषता थी संगठन-प्रेम। आज जब हम इस महान् विभूति का जन्म-शताब्दि-समारोह मनाने जा रहे है तब हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने हृदय को पावन-पवित्र बनाये और संप्रदायवाद को जड़मूल से नष्ट करने का भरसक प्रयत्न करें। मेरे मत मे उनके कार्यो को पूरा करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। उनका व्यक्तित्व सामाजिक क्रान्ति का एक विशाल वटवृक्ष था, जिसकी शीतल छाँव आज भी हमें उपलब्ध है। क्या हम उनकी नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति को अटूट रख पायेंगे?

—सौ. मंजुलाबेन अनिलकुमार बोटादरा, इन्दौर

'पानी में मीन पियासी, मोहे सुनि-सुनि आवै हांसी'

श्रमण-सूर्य श्री चौथमलजी महाराज के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते समय एक प्रश्न बार-बार मन को मथता है—जैनधर्म, इस युग मे, समस्त मानव-जाति के भौतिक विकास के लिए हो रही भाग दौड़ मे किस हद तक प्रासंगिक है, और भौतिक प्रगति की इस भागमभाग मे उसका क्या जीवन-दर्शन है?

भौतिक स्थितियों मे परिवर्तन और बड़े सुधारों पर किसी को भी क्या आपत्ति हो सकती है? सारे विश्व की जनसंख्या एक अन्तहीन ढंग से बढ़ी है; किन्तु उसी के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान और तकनीकों का भी विकास-विस्तार हुआ है। सो, आज हर देश मे पहला बड़ा सवाल करोड़ों-करोड़ लोगों के लिए सुखमय जीवन-यापन की सुविधाएँ मुहैया करना है। सब से पहला सामाजिक कर्त्तव्य यही दिखायी देता है कि सब को एक स्वस्थ और सुखी जीवन संभव कराया जाए; रोटी, छत, चिकित्सा और शिक्षा के सारे अवसर उपलब्ध कराये जाएँ, तथा इन समस्त सामाजिक सुरक्षाओं और सुविधाओं का स्तर कमोवेश वही हो जो आज सुविकसित देशों का मानक है। इस दृष्टि से यह सोचना अप्रासंगिक नही है कि भौतिक जरूरतो को पाने के इस प्रयत्न मे जैनधर्म की क्या भूमिका होगी; और जैनधर्म इन आवश्यकताओं की चिन्ता के समय कितना समीचीन और समायोजक सिद्ध होगा?

इसके बाद जो दूसरा सवाल गर्दन उठाता है, वह है भौतिक समृद्धि की ओर क़दम बढ़ा रहे इन लाखो-लाख लोगों का जीवन-दर्शन क्या हो? क्या इनकी दृष्टि मे जैनधर्म की कोई उपयोगिता या प्रासगिकता या सार्थकता हो सकती है?

सतही ढंग से बिना किसी गहराई मे उतरे कहा जा सकता है कि जैनधर्म एक विशिष्ट युग की उपज है, अब वह समय बीत चुका है; संदर्भ पुराने हो चुके है अतः यह ठीक है कि वह अतीत में कभी उपयोगी और महान् रहा होगा, आज भला वह कैसे किसी काम का हो सकता है?

किन्तु सचाई बिलकुल अलग है। यह बात वास्तव में चमत्कार-जैसी ही लग सकती है कि "भौतिक भागमभाग और होड़बाजी के इस युग में जैनधर्म के बुनियादी सिद्धान्त सर्वथा प्रासंगिक है और आज के संशयग्रस्त मनुष्य को एक स्पष्ट जीवन-दर्शन दे सकते है।"

इस संदर्भ मे यदि हम पूज्य जैन दिवाकरजी के उपदेशों पर ध्यान दें तो सहज ही कोई रचनात्मक दिशाबोध हो सकता है। 'तीर्थंकर' के 'मुनिश्री चौथमल जन्म-शताब्दि-अंक' से संबन्धित फोल्डर में उनके तीन रूप सामने रखे गये है – वसुधा मेरा कुटुम्ब, मानवता मेरी साधना और अहिसा मेरा मिशन।

केवल आज के युग में यह संभव और व्यवहार्य है कि सारे संसार को एक परिवार माना जाए। विज्ञान ने आज हमें इतना समर्थ बना दिया है कि हम एक-दूसरे के निकट हो सके और अपने विचारों का स्वतन्त्र आदान-प्रदान कर सकें। आज, वस्तुतः, हम इतने विवश है कि "वसुधा को एक कुटुम्ब" माने बिना हमारे पास कोई मार्ग ही नही है। अफ्रीका के सघन-बीहड़ वनों से लेकर उत्तरी ध्रुव के निवासियो तक और कोरिया-जापान से दक्षिण-अमेरिकी राज्यों तक आज सारी दुनिया का आदमी एक है। संभव है, जैनधर्म अपने प्रवर्तन-क्षणों मे सीमित रहा हो, किन्तु उसके सिद्धान्तों की व्याप्ति अनन्त थी, इसीलिए वह तब समीचीन थी, आज मौजू है, पूरी तरह प्रासंगिक और सार्थक है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ मे आज लगभग १५० मुल्कों के प्रतिनिधि है, जो इस साधना के प्रतीक है कि धरती की मनुजता एक है, वह अलग-अलग भू-खण्डों में बँटी हुई नहीं है। विज्ञान के सारे आविष्कार, मनुष्य को स्वास्थ्य या आरोग्य प्रदान करनेवाली ओषधियाँ, उसके जीवन-स्तर को ऊँचा उठानेवाले साधन, आज बिना किसी पूर्वग्रह या कठिनाई के सर्वजन सुलभ है। इस तरह संसार का सामान्य नागरिक संपूर्ण मानवता की साधना में लगा हुआ है; माना, राजनीति से उसकी सद्भावना अभिशप्त है, किन्तु सदियों से चले आ रहे उसके प्रयत्न अभी ठंडे नही हुए है। संत पुरुषों ने, विश्व मे जहाँ कही भी साधना की है, उसकी कोई-न-कोई फलश्रुति देर-अबेर जरूर सामने आयेगी।

अहिसा का संदर्भ तो और भी प्रखर है। पहले सिर्फ विवेक और ज्ञान ही अहिंसा के समर्थक थे, किन्तु आज अब यह बिलकुल स्पष्ट हो गया है कि अहिसा के बिना जगत् के सामने कोई रास्ता नही है। प्रदूषण और युद्ध, तनाव और संत्रास, बीमारियाँ और गृहकलह इस कदर बढ़ रहे है कि अहिसक जीवन-शैली को अपनाये बिना आज कोई विकल्प ही नही रहा है। आज हिसा जीवन मे सर्वत्र जिस तरह सुराख किये बैठी है, उसका सीधा अर्थ है – सर्वनाश। यही वह विवशता है वस्तुत., जिसके कारण संपूर्ण जगत् को अहिसा की ओर मुड़ना पड़ रहा है।

यही नहीं, जैनधर्म के एक और सिद्धान्त अपरिग्रह को ही हम लें। भौतिक साधनों की अमर्यादा और असंयम के कारण आज 'विकास को विवेक' के साथ जोड़ना बहुत

जरूरी हो गया है। हमारा यह निरुद्देश्य विकास कही निखिल मानवता को किसी गहरी खाई मे न उतार दे, यह सावधानी हमे कदम-द-कदम बरतनी होगी और अपरिग्रह को क्रमश: जनजीवन में सघन करना होगा।

मैने ऊपर आधुनिक विकास का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसमें आशा की एक स्पष्ट किरण जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तों के रूप मे दिखलायी देती है। आज, वस्तुत: मनुष्य विकास की उस पराकाष्ठा पर आ उपस्थित हुआ है जहाँ उसे धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों से साक्षात्कार हुआ है, किन्तु क्या कारण है कि जो इन धर्मो को सदियो से पालते चले आ रहे है, उन्हें इनकी उपयोगिता की अनुभूति नही हो पा रही है।

यह सब देखते कबीर की वह पद-पंक्ति याद आ जाती है – 'पानी बिच मीन पियासी, मोहे सुनि-सुनि आवे हाँसी'। जैनों के पास सिद्धान्त है, आचरण नही है; शास्त्र है, किन्तु उसका स्पष्ट बोध नही है। एक तरह से वे एक तीखी आत्मप्रवंचना में जी रहे है; क्या वे 'पानी बिच मीन पियासी' की उक्ति को चरितार्थ नही कर रहे है ?

उदाहरण के लिए हम पर्युषण की क्षमापना को ही ले; इस अवसर पर क्षमा हम केवल सगे-संबन्धियों और परिचितों से ही नही माँगते वरन् सारे चराचर जगत् से माँगते है। इस सिद्धान्त की उदात्तता को पर्यावरण-विज्ञानियो के इस अभिलेख से मिलाइये कि यदि मनुष्य को इस धरती पर शान्ति-सुख से अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो उसे समस्त प्रकृति, उसके परिवेश, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, नदी-नाले, पेड़-पौधे इत्यादि को भययुक्त करना होगा। उनके साथ मैत्री और अहिंसापूर्वक जीना होगा; किन्तु विडम्बना यह है कि जैनों की क्षमापना केवल एक औपचारिकता अब है, उसका जीवन से सीधा सरोकार नही रहा है। क्या हम अपने सिद्धान्तों को जीवन से जोड़ने की दूर-दर्शिता दिखा सकेंगे ?

मैंने जिन तथ्यो की ओर ऊपर संकेत किया है, वे और अधिक गहराई से सोचे जाने की अपेक्षा रखते है; अत: मै चाहता हूँ कि इस शताब्दि-वर्ष मे व्यर्थ के अपव्ययों से बच-कर साधु और श्रावक-वृन्द जैनधर्म के सिद्धान्तों को आचरण मे लाने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाने का प्रयत्न करे।

☐ **जवाहरलाल मुणेत, अमरावती**

'यह एक महापुरुष होगा'

एक बार मन्दसौर के शास्त्रवेत्ता श्रावक श्री गौतमजी बाग्या ने वैराग्यावस्था में श्री जैन दिवाकरजी को देखकर टिप्पणी की थी–"ये क्या संयम पालेगे ?" इस पर पूज्य श्री हीरालालजी महाराज ने कहा–"यह बालक भविष्य मे एक महापुरुष होगा। जैन-जैनेतर लाखों मानवों और प्राणियों का कल्याण करेगा और सारे देश मे ज्ञान, संयम और चारित्र की अनुपम गंगा प्रवाहित करेगा।" अन्ततः माता और पत्नी से लिखित अनुमति प्राप्त

होने पर बोलिया ग्राम में एक आम्रवृक्ष के नीचे उनकी दीक्षा संपन्न हुई; तदुपरान्त मातुश्री ने भी दीक्षा अंगीकार कर ली। कालान्तर से श्री वाग्याजी ने जब मुनिश्री चौथमलजी का प्रवचन सुना तो गद्गद हो गये और अपने कथन पर क्षमा-याचना करने लगे। इसी तरह उनके पास घोसुंडावासी मौलाना मुहम्मद मुस्तफा रहा करते थे, जो क्रमशः जैनधर्म के अच्छे ज्ञाता हो गये थे और अनेक जिज्ञासुओं की शंकाओं का स्वयं ही समाधान कर दिया करते थे। मुझे विश्वास है कि उस महान् विभूति को इतिहास कभी भी विस्मृत नही कर सकेगा जिसने ६० वर्षो तक गाँव-गाँव और नगर-नगर मे अहिंसा का प्रचार-प्रसार किया और मानवो को अन्धविश्वासों तथा कदाचार-वृत्तियो से मुक्त किया।

□ सौभाग्यमल सिंघवी, नाथद्वारा

एक लोकगीतकार

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के समय जैनधर्म से संबन्धित जितनी कविताएँ बनायी गयी, उतनी किसी अन्य संत-महात्मा के जीवन-काल मे नही। वे श्रोताओं की रुचि को भली प्रकार जानते थे और तदनुसार कविता या भजन बनाते-सुनाते थे। वे जब भी गोचरी (आहार लेने) के निमित्त जाते और किसी फिल्मी गीत का रिकार्ड सुन लेते तो स्थानक लौटकर उसी तर्ज पर कोई जैन भजन बना लेते और दूसरे दिन व्याख्यान में उसे सुनाते। जनता मन्त्रमुग्ध हो जाती। उन्हे यह माँ सरस्वती का वरदान था। मैं यह दृढ़ निश्चय से कह सकता हूँ कि दूरस्थ स्थान पर जहाँ-कही भी जैन भाइयों के ५-१० घर होंगे वहाँ किसी-न-किसी को उनके द्वारा रचित एक-न-एक भजन अवश्य कण्ठस्थ होगा। भजन में वे अपने गुरुवर्य का स्मरण अवश्य करते थे, इसीलिए अन्तिम पंक्ति में यह अवश्य होता था 'गुरुप्रसाद चौथमल कहे'। वे सच्चे लोकगीतकार थे। उन्होने आम जनता के नैतिक स्तर को गीत-पद-भजनों के माध्यम से ही ऊँचा उठाया।

□ बद्रीलाल जैन, खाचरौद

कुछ घटनाएँ, कुछ यादें

गुरुदेव का वि. सं. १९९९ का चातुर्मास मन्दसौर में था। इसी वर्ष गांधीजी के सान्निध्य मे 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का आरम्भ हुआ। मुझे तथा मेरे साथियों को पुलिस गिरफ्तार करके ले गयी। हमारे संघ-प्रमुख श्री मिश्रीलाल बाफना ने गुरुदेव से इस संबन्ध में निवेदन किया। उन्होंने सहज ही कहा—'चिन्ता मत करो, सब आठ-दस दिन मे छूटकर घर आ जाएँगे'। यही हुआ। हम लोग नवे दिन विना किसी शर्त के छोड़ दिये गये। इसी चातुर्मास मे एक और अविस्मरणीय घटना हुई। एक सहधर्मी भाई का इकलौता पुत्र, जिसकी उम्र क़रीब वीस साल रही होगी, डबलनिमोनिये मे फंस गया। उसे गुरुदेव के पास मांगलिक सुनवाने ले गये। मैं भी साथ गया। सब दुखी थे, सब की आँखे डबडबाई हुई थी; किन्तु गुरुदेव ने शान्तिपूर्वक मांगलिक सुनाया और कहा सब ठीक हो जाएगा।

सबेरे वह स्वयं उठकर व्याख्यान मे आ जाएगा। सारा वातावरण ही बदल गया। मैने उचित दवा लाकर दी और कम्बल ओढाकर सुला दिया। वह सो गया, और सबेरे व्याख्यान मे आ गया। इसी चातुर्मास मे एक और प्रसंग इसी तरह का सामने आया। जिस स्थानक मे गुरुदेव बिराजमान थे, उसके पीछे की गली मे एक बाई भयकर प्रसव-पीड़ा से कराह रही थी। डाक्टर, वैद्य, दाई, नर्स सब ने उपचार किया किन्तु कोई लाभ नही हुआ, दर्द ज्यो-का-त्यों बना रहा। ऐसे खिन्न वातावरण मे वहाँ खड़े एक भाई ने कहा कि एक कटोरी जल ले जाओ और गुरुदेव का अगूठा छुआ लाओ और बाई को पिला दो। यही हुआ और दर्द बिजली की गति से भाग गया। प्रसविनी उठ बैठी। दूसरे दिन उसने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। ऐसी अनेक घटनाएँ है जो मुनिश्री चौथमलजी के व्यक्तित्व को उजागर करती है। वस्तुत. ये चमत्कार नही है, ये है उनकी आध्यात्मिक साधना से निर्मित निर्मल वातावरण के प्रभाव। उनकी साधना इतनी महान्, उज्ज्वल और लोकोपकारी थी, कि चारो ओर का वातावरण, जहाँ भी वे जाते, रहते या प्रवचन करते थे, निर्मल, रुजहारी और आह्लादपूर्ण हो उठता था। वे महान् थे।

☐ **चाँदमल मारू, मन्दसौर**

उनके मार्ग पर चलें

वास्तव मे मुनिश्री चौथमलजी महाराज के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी–उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना। जबतक हम संगठन, एकता, परस्पर मत्री, आत्मानुशासन, वैराग्य, कठोर कर्त्तव्य-पालन आदि की ओर अग्रसर नही होंगे, उनके इस जन्म-शताब्दि-समारोह को सार्थक नही कर पायेगे।

☐ **बागमल चौहान, महागढ़**

जीवन ही बदल गया

उत्तरप्रदेश के एक गाँव मे श्री जैन दिवाकरजी का प्रवचन हो रहा था। श्रोता मन्त्र-मुग्ध थे। प्रवचन का विषय था–'चोरी करना महापाप है'। वक्ता-श्रोता दोनों आत्म-विभोर थे। बीच मे एक भाई खड़ा हुआ और बड़ी नम्रता से बोला–'गुरुदेव मैं आज से जीवन-भर चोरी करने का त्याग करना चाहता हूँ, कृपाकर मुझे त्याग करवा दें'। लोग आश्चर्यचकित उस ओर देख रहे थे क्योंकि जो व्यक्ति व्रत लेने के लिए प्रेरित हुआ था वह उत्तरप्रदेश का एक कुख्यात डाकू था। उसने कई हत्याएँ की थी। इस तरह जिसका जीवन घृणित कार्यो में लगा रहा, गुरुदेव के उपदेशो से उसका सारा जीवन ही बदल गया। उनके प्रभाव से कई गाँवों में आपसी मन-मुटाव मिट गये और कई व्यक्तियों ने मद्यपान, मांसाहार, गांजा-भांग इत्यादि व्यसन जीवन भर के लिए छोड़ दिये।

☐ **नथमल सागरमल लुंकड़, जलगाँव**

वाणी का जादूगर

पूज्य श्री जैन दिवाकरजी को वाणी का जादूगर कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है; जिनकी वाणी सुनकर कुख्यात डाकू का हृदय-परिवर्तन हो गया। विज्ञापन और पर्चेबाजी के बिना ही हजारों की भीड़ जमा होने का अर्थ होता है, प्रवचन की पटुता। संप्रदायातीत वाणी को सुनकर जैनेतर भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। उनके व्याख्यान से ही गूढ़तम शंकाओं का समाधान सहज भाव से मिल जाता था। उनकी व्याख्यान-शैली से आगामिक गूढ़ विषय भी सरल प्रतीत होने लगते थे। उनकी ओजस्वी वाणी दिवाकर-सदृश प्रखर जो थी!

□ **चन्दन मुनि**

त्रिवेणी का अपूर्व संगम

जब दिगम्बर जैनाचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज का चातुर्मास कोटा में हो रहा था, तब जैन दिवाकर श्री चौथमलजी का चातुर्मास भी वही हो रहा था। आचार्य श्री आनन्दसागरजी भी वही बिराजमान थे। इस तरह वहाँ पावन त्रिवेणी का अपूर्व संगम था। श्री जैन दिवाकरजी ने एक ही मंच पर तीन धाराओं को एकत्रित कर अद्भुत कार्य किया था। जब तीनों आचार्य एक ही मंच पर बैठकर महोपदेश करते थे, तब समता-समन्वय का अनूठा दृश्य रहता था।

मै भी नवाई के करीब २५ प्रतिष्ठित महानुभावों को लेकर कोटा पहुँचा था। मेरी उनसे चर्चा भी हुई, उस समय उन्होंने कहा, 'शास्त्रीजी, यह कार्य बहुत देरी से हुआ है। ऐसे शुभ कार्य तो बहुत पहले हो जाने चाहिये थे'।

संक्षेप मे, श्री जैन दिवाकरजी प्रभावक संत, समता के धनी, समन्वयात्मक भावना के प्रतीक थे। मानवों मे मानवता पैदा करने की उनकी प्रबल भावना थी। उनकी वक्तृत्व-कला सीधी, साफ, सरल और प्रभावक थी।

□ **पं. राजकुमार शास्त्री, नवाई**

'आग से आग शान्त नही होती, खून से खून साफ नही होता, क्रोध से क्रोध शान्त नही होता। आग को शान्त करने के लिए, खून को धोने के लिए पानी की आवश्यकता है। क्रोध को उपशान्त करने के लिए क्षमा चाहिये।

'जैसे सोने वाले को धीरे-धीरे क्रम से ज्ञान होता है, उसी प्रकार जागने वाले को भी इसी क्रम से ज्ञान होता है। सोने और जागनेवाले में अन्तर यही है कि जागने वाले को झटपट ज्ञान हो जाता है और सोने वाले को धीरे-धीरे।

—मुनि चौथमल

जीवन हुआ सोना

उपदेश का प्रवाह रुका मानो ज्ञान-गंगा को विश्राम मिला। श्रोतागण एक साथ उठ खड़े हुए। मांगलिक श्रवण के पश्चात् वे महाराजश्री को नमन-वंदन कर और उनके चरणों मे सिर झुका अपने-अपने घरों की ओर जाने लगे। शनैः शनैः स्थान खाली हो गया। महाराजश्री की दृष्टि सहसा सामने उठ गयी। वहाँ एक व्यक्ति बैठा था — मलिन वेश-भूषा, उलझे बाल, सूखे अधर, जर्जर काया, दरिद्रता की साक्षात् मूर्ति। उनके हृदय मे करुणा का स्रोत उमड़ा। स्नेह-सिक्त स्वर में बोले—

"कौन हो भाई! इतनी दूर क्यों बैठे हो?"

"मोची हूँ महाराज! नाम है अमरा।"

"दिन मे कितना कमा लेते हो?"

"पाँच रुपये।"

संवत् १९७१ (सन् १९१४) मे पाँच रुपया प्रतिदिन की आय कम नहीं होती थी, वरन् इसे अच्छी खासी आमदनी माना जाता था। महाराजश्री इसकी दीन दशा देखकर समझ गये कि अवश्य ही इसे कोई व्यसन लगा है, अन्यथा ऐसी अच्छी आय मे इसकी हालत इतनी खस्ता न होती। वे मनुष्यों की विचित्र प्रवृत्तियो और आत्मघाती लोक-परलोक को बिगाड़नेवाले क्रिया-कलापो पर विचार करने लगे, तभी उनके कानों में उस व्यक्ति का दीनतापूर्ण स्वर पड़ा—

"महाराज! कोई ऐसी राह बताइये जिससे मेरा और मेरे परिवार का जीवन सुखी बने, बच्चों का भविष्य सुधरे।"

गंभीर स्वर मे महाराजश्री बोले—

"राह तो है, अमरचन्द! पर तुम चल भी सकोगे?"

"अवश्य चलूँगा।"

"जो पूछूँगा उसका सच-सच जवाब दोगे?"

"आपके सम्मुख झूठ बोलने की हिम्मत ही नही होती।"

अब महाराजश्री ने पूछा—

"तुम शराब पीते हो?"

"हाँ महाराज!" धीमे स्वर में अमरचन्द ने बताया।

"माँस खाते हो?"

"हाँ महाराज।"

"जीवहिंसा करते हो ?"

इस प्रश्न का भी अमरचन्द ने सिर हिलाकर स्वीकृति-सूचक उत्तर दिया।

महाराजश्री बोले—"आज से तुम्हे माँस, मदिरा और जीव-हिंसा का त्याग करना पड़ेगा। बोलो मंजूर है ?"

"अवश्य त्याग करूँगा।"

इतने शीघ्र ही सहज ढंग से स्वीकार करते देख महाराजश्री को सहसा विश्वास नही हुआ। उन्होंने पुनः कहा—"इस प्रतिज्ञा को ले तो रहे हो पालन भी कर सकोगे ?"

अमरचन्द ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"महाराजश्री ! मै आज प्रतिज्ञा लेने ही आया था। घर से सोच कर निकला था कि आज गुरुदेव से नियम लेकर ही रहूँगा। तीन दिन से लगातार आपका उपदेश सुनता आ रहा हूँ। आपने जो माँस-मदिरा और जीवहिंसा की बुराइयाँ बतायीं तो ऐसे हृदय मे भी इनसे दूर रहने की इच्छा जाग्रत हो गयी। मैं विश्वास दिलाता हूँ गुरुदेव कि अपनी प्रतिज्ञा का प्राण देकर भी पालन करूँगा।"

उसकी दृढता से गुरुदेव आश्वस्त हुए और अविचल बने रहने की प्रेरणा देते हुए उसे प्रतिज्ञा करवा दी।

गुरुदेव को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके अमरचन्द चला गया।

□

जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज इस समय गंगापुर (राजस्थान) में विराजमान थे। उनके प्रवचन नित्य आम बाजार में होते; किन्तु कुछ लोग जैन होते हुए भी उनके दिव्य प्रवचनों का लाभ नहीं उठा पाते थे। कारण था—संकीर्ण दृष्टि और संप्रदायगत भेदभाव। कुछ लोगों की चित्तवृत्ति ऐसी संकीर्ण होती है कि वे अपने संप्रदाय के साधुओं के प्रति तो श्रद्धा रखते है, किन्तु अन्य संप्रदायवालों के प्रति उपेक्षा। यही दशा उस समय गंगापुर के कई जैन परिवारों की थी।

जब भी जैन दिवाकरजी गंगापुर में पधारते उनके प्रवचनों की पूरे गाँव में धूम मच जाती थी। सभी उनके दर्शनों से स्वयं को कृतकृत्य मानते; किन्तु संप्रदाय-वाद के कारण जैन धर्मावलम्बी होते हुए भी अनेक बन्धु उनसे दूर ही रहते थे।

एक दिन अमरचन्द अपने भाई कस्तूरचन्द और तेजमल के साथ आम बाजार से निकला। प्रवचन हो रहा था। उपस्थित विशाल जन-समुदाय को देख वह भी उत्सुकतावश वहाँ चला आया। महाराजश्री माँस-मदिरा और जीवहिंसा के दोष बता रहे थे। तीनों भाई वहाँ कुछ क्षण को ही आये थे, लेकिन प्रवचन इतना

प्रभावशाली था कि वही खड़े रह गये। व्याख्यान समाप्त हुआ तब वहाँ से चले। अमरचन्द के कानों में दिन भर गुरुदेव के शब्द गूँजते रहे। वह दूसरे दिन भी व्याख्यान सुनने जा पहुँचा। उसके हृदय में मांस-मदिरा-त्याग की इच्छा जागृत हुई। उसे इन वस्तुओं में दोष ही दोष नजर आने लगे। तीसरे दिन के व्याख्यान मे तो उसकी त्याग-भावना तीव्रतर हो गयी। उसने गुरुदेव के समक्ष माँस-मदिरा और जीवहिंसा के त्याग की आजन्म प्रतिज्ञा ले ली।

प्रतिज्ञा लेकर अमरचन्द घर पहुँचा। उसके मुख पर आत्मसंतोष झलक रहा था। भाइयों ने पूछा तो उसने प्रतिज्ञा लेने की बात बतायी। भाइयो के हृदय मे भी सद्बुद्धि जागी। दूसरे दिन कस्तूरचन्द और तेजमल ने भी माँस-मदिरा और जीव-हिंसा-त्याग की प्रतिज्ञाएँ ग्रहण कर ली।

गुरुदेव आस-पास के गाँवों मे विहार हेतु गये तो उनके पीछे-पीछे तीनों भाई भी चले। वहाँ वे अन्य लोगों को माँस-मदिरा-त्याग की प्रेरणा देने मे सहायक बने।

गुरुदेव ने उनकी भावना देखकर नवकार मन्त्र सिखाया। वे महामन्त्र की माला फेरने लगे। अब वे नियमित रूप से जाप करते और अपनी प्रतिज्ञाओ का दृढता-पूर्वक पालन करते।

□

प्रतिज्ञा की सच्ची कसौटी परीक्षा में होती है। जो प्रतिज्ञा लेता है उसे अग्नि-परीक्षा मे में भी गुजरना पडता है। कुछ ही दिनों मे अमरचन्दभाई की परीक्षा का अवसर भी उपस्थित हो गया।

गाँव मे विवाह का प्रसंग उपस्थित हुआ। बिरादरी मे — जाति मे भोज था। अमरचन्द को भी निमन्त्रित किया गया। अमरचन्द जानते थे कि जाति-भोज में माँस-मदिरा का दौर भी चलेगा। विकट परिस्थिति थी। जाति-भोज में सम्मिलित न हुए तो जाति से बहिष्कृत कर दिये जाएँगे और सम्मिलित हुए तो प्रतिज्ञा भंग हो जाएगी। बडी देर तक ऊहापोह करते रहे; अन्त में निश्चय किया — 'प्रतिज्ञा भंग नहीं करूँगा, चाहे बिरादरी से निकाल दिया जाऊँ। जाति क्या प्राण भी छूटे तो छूटे, पर प्रतिज्ञा नही टूटेगी।' उसने भोज मे सम्मिलित न होने का निश्चय कर लिया।

अमरचन्दभाई भोज मे उपस्थित न हुए तो लोगो ने ताने कसे — 'अरे भाई! अब तो वह जैन हो गया है, हमारी बिरादरी का न रहा।' दूसरे लोगो ने कह दिया—'जब हमारी बिरादरी में वह सम्मिलित नहीं होगा तो हम ही उसके यहाँ क्यों जाएँगे?' लोगों ने एक स्वर से कहा—'जाति से बाहर निकाल देना चाहिये।' और अमरचन्दभाई जाति से बहिष्कृत कर दिये गये।

इस जाति-दण्ड को अमरचन्दभाई ने सहर्ष स्वीकार कर लिया, किन्तु प्रतिज्ञा नही तोडी। वे अपनी प्रतिज्ञा पर अडिग बने रहे।

त्याग का फल मिलता ही है। अमरचन्दभाई को भी सुफल मिलने लगा। मदिरा का व्यसन छूटने से धन की बचत हुई और शरीर का बल बढ़ा, मुख पर कान्ति लौट आयी। कुछ ही महीनों मे उन्होंने अपने कर्ज का भारी बोझ उतार दिया। बचत लगातार हो ही रही थी। अब पास मे धन जुड़ने लगा। घर का खान-पान भी बदला और वेशभूषा भी बदल गयी। मलिन वस्त्रो का स्थान स्वच्छ वस्त्रों ने ले लिया। सुसंस्कार जाग्रत हो गये। अमरचन्दभाई के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया। दो वर्ष बाद ही नया मकान भी बन गया। द्वार पर उन्होंने लिखवाया—'आइये भाईसाहब, जयजिनेन्द्र!'

एक बार अमरचन्दभाई चातुर्मास में गुरु-दर्शन को गया तो वह इतना बदला हुआ था कि उसे पहचानना भी कठिन था। उसकी दशा इतनी बदल चुकी थी कि उसे कर्ज देने मे आनाकानी करनेवाले अब उससे उधार माँगने लगे थे। सामायिक का पाठ सीखा और वह सामायिक करने लगा।

समृद्धि का सर्वत्र आदर होता है। उसके जाति भाइयो ने उसकी ऐसी बदली स्थिति देखी तो समझा कि यह अवश्य ही गुरुदेव का प्रताप है। वे भी गुरुदेव के पास आये और कहने लगे—"हमे भी कोई प्रसाद दीजिये।"

गुरुदेव ने उनकी भावना समझी और कहा—"हमारा प्रसाद तो नवकार मंत्र है। माँस-मदिरा-जुआ-जीवहिसा आदि का त्याग है। दूसरों को सुख-साता दोगे तो खुद भी सुखी रहोगे। दया पालो, नवकार मंत्र जपो—दोनों लोकों मे सुख पाओगे।"

उन लोगों ने भी गुरुदेव का प्रसाद समझकर माँस-मदिरा और जीवहिंसा त्याग के नियम लिये। उनका भी जीवन बदल गया। बच्चों पर भी सुसंस्कार पड़ने लगे। उन्हें भी जीवदया में रस आने लगा।

अब वे लोग आस-पास के गाँवो मे गये और अपनी जाति मे जीवदया का प्रचार करने लगे। जातिवालो ने उन्हे आदर-सहित पुन जाति मे सम्मिलित कर लिया।

प्रात, साय, दोपहर वे नवकार मत्र का जाप करते, भजन बोलते तथा अन्य देवी-देवताओं को अन्धी मान्यता भी वे न करते।

□

राजस्थान में गर्मी की ऋतु बड़ी भयंकर होती है। वैसे ही वहाँ जल की कमी है, गर्मी मे तो कुए और तालाब भी सूख जाते है। पानी के अभाव मे मनुष्यों को तो कष्ट होता ही है; किन्तु मछलियो का तो जीवन ही जल है। जल के अभाव में वे तड़प-तरफ कर प्राण दे देती है।

ऐसी ही एक ग्रीष्म थी। एक जलाशय का जल सूखने लगा था। मछलियाँ तड़पने लगीं। जीवदया के व्रती अमरचन्द का हृदय काँप उठा। करुणार्द्र होकर उसने पुत्र से कहा—'बेटा इन्दर! घर से दो सौ रुपए लेकर मेरे साथ चलो।'

पुत्र ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। प्रातःकाल ही किराये से बैलगाड़ी ली और उसमे लोहे का ड्रम रखा। जलाशय के किनारे पहुँचे। बाल्टियों से मछलियाँ ड्रम में भरी और वहाँ से दूर एक जल से भरे तालाब में उन्हे छोड़ दिया। जल मे गिरते ही जैसे मछलियो का जीवन ही लौट आया। वे स्वच्छन्द विचरण करने लगी। अमरचन्दभाई के मुख पर सतोष के भाव झलकने लगे। दिनभर यही क्रम चलता रहा। अमरचन्द और उसका पुत्र भूखे-प्यासे मछलियों की प्राणरक्षा करते रहे —— दूर जलाशय मे उन्हे छोड़ते रहे। दूसरे दिन भी यही क्रम चलता रहा। सभी मछलियो की जीवन-रक्षा हो गयी। उनके इस कार्य की सराहना करते हुए लोग कहने लगे–'कितना अन्तर हो गया है, अमरा मे ? कहाँ तो यह आलस मे पड़ा रहता था, नशे मे धुत्त और कहाँ अब दया की मूर्ति ही बन गया है।

लोगों की सराहना सुनकर अमरचन्दभाई गद्‌गद हो गये। धर्म मे उनकी प्रीति और बढी। जीवन धर्ममय हो गया।

□

एक बार कुछ सत गंगापुर आये। ज्यो ही अमरचन्दभाई को मालूम हुआ वे दौडे आये और भक्तिपूर्वक उन्हे एक उचित स्थान पर ठहराया। गोचरी का समय हुआ। सत गोचरी हेतु चले तो उनके पीछे-पीछे अमरचन्द भी चल दिये। कई घर जाने पर भी संतो को भोजन नही मिला। कही अधूरा भोजन था, तो कही घर का दरवाजा ही बंद था। आहार की सुलभता न देख अमरचन्द का हृदय रो उठा। वे सोचने लगे–'ये वही संत है, जिन्होने भगवान् महावीर की वाणी सुनाकर हजारो, अधम–पापियो को धर्म की राह दिखायी है। उनके जीवन मे सुख ही सुख भर दिये है। काल का कैसा दुष्प्रभाव कि आज इन्हे निराहार ही रहना पड़ रहा है।' उनकी आँखों से आँसू बहने लगे, रुलाई फूट पड़ी। साधु ने रोते देख पूछा–"क्यों रो रहे हो, भाई ?"

"अपने दुर्भाग्य पर रो रहा हूँ। जाति के कारण मैं आपको भोजन नही दे सकता। मेरे घर भोजन भी है, मेरे चौविहार भी है! और जो आपको भोजन दे सकते हैं उनके यहाँ से आपको मिला नही।"

साधु ने सांत्वना दी–"भाई! तुम्हारी भावना पवित्र है। यद्यपि हम लोग जाति-पाँति और छुआछूत नही मानते, किन्तु लोक-व्यवहार के कारण साधु-मर्यादा रखनी पडती है। फिर भी तुमने दान न देकर अपनी उत्कृष्ट भावना से दान से अधिक पुण्य-लाभ लिया है। तुम्हारे ये आँसू गंगाजल से कही अधिक पवित्र हैं।"

अमरचन्दभाई को साधु के वचनो से सांत्वना मिली।

□

अमरचन्दभाई जीवन-भर धर्म का पालन करते रहे। जैनधर्म पर उनकी श्रद्धा अटूट और अडिग थी। सं. २००२ मे उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत ले लिया और बड़ी निष्ठा से उसका पालन किया।

आयु के अंतिम समय में जब उनकी आत्मा इस नश्वर शरीर को छोड़ने लगी, तो वे समीप बैठे लोगों को बताने लगे —"देखो! मुझे जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन हो रहे हैं। वे मुझे मांगलिक दे रहे है। वे धर्म का दृढतापूर्वक पालन करने की प्रेरणा दे रहे है।·· तुम लोग भी धर्म से विचलित मत हो जाना; निष्ठापूर्वक पालन करना।"

यह कहते-कहते अमरचन्द के प्राण-पखेरू उड़ गये।

—केवल मुनि

गोशाला के द्वारा प्रभु की परीक्षा

"प्रभु लाट देश से विहार कर आर्य देश की ओर पधारे। पहले वे सिद्धार्थ-पुर के निकट होकर निकले। तब वहाँ से कूर्म गाँव की ओर वे बढे। मार्ग में गोशाला तिल के एक पौधे को देख कर खड़ा हो गया। और प्रभु की परीक्षा के उद्देश्य से वह उनसे पूछने लगा, "भगवन्, यह पौधा फलेगा, या नही?" और, इस पर जो ये सात फूल खिले हुए है, उनमें के जीव मर जाने पर, वे फिर कहाँ जाकर जन्म ग्रहण करेंगे?" इसके उत्तर में प्रभु ने कहा, "गोशाला यह तिल का पौधा फलेगा। और इसके ऊपर लग हुए, फूलों के जीव यहाँ से मर कर, और इसी पेड़ के ऊपर तिलों की फली में जाकर, दानों में, जन्म प्राप्त करेंगे।" गोशाला के के सन्देह और भ्रम-भरे चित्त को प्रभु के इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ। विश्वास होता भी तो कैसे और क्यों? वह तो भगवान् के हृदय की परीक्षा लेने पर उतारू हो रहा था। उसने भगवान् के उस कथन को झूंठा करने के लिए, भगवान को जरा अकेले-अकेले आगे बढ़ जाने दिया। पीछे से उसने उसी पौध को जड़मूल से उखाड़कर, किसी एक निर्धारित स्थान पर फेंक दिया। और तब, कदम बढ़ाते-बढ़ाते वह प्रभु से आ मिला। प्रभु और गोशाला, अब कूर्म गाँव के निकट पहुँचे ही होंगे, कि उधर उस पौधे के पास से एक गाय दौड़ती हुई निकली। उसका पैर (खुर) उस पौध पर पड़ गया। भाग्य से वहाँ भी जमीन भी कुछ गीली थी। इन सब साधनों के मिल जाने पर आढ़े-टेढ़े किसी भी रूप से वह पौधा फिर जम गया। खुर के जोर से जमीन में बैठने के कारण, वहाँ एक गड्ढा भी उस पौधे के लिए अच्छा हो गया था। आसपास का पानी सिमिट कर वहाँ कुछ आ गया। कुछ ही मुरझाया हुआ पौधा जल को, जमीन को और वायु तथा उपयुक्त गर्मी को पाकर, फिर पनप गया। समय पाकर उसके उन्ही फूलों के जीव, तिलों की फली में तिल हुए।" (मुनिश्री चौथमल-रचित 'भगवान महावीर का आदर्श जीवन', पृष्ठ २७९ · १९३३)

'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' 'लावणी-संग्रह' इत्यादि के कुछ चुने हुए अंश

(यहाँ हम 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' 'लावणी-सग्रह' तथा 'भगवान् नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र' से कुछ चुने हुए अंश उद्धृत कर रहे है, जिनसे मुनिश्री चौथमलजी महाराज की साहित्य-मनीषा का सहज ही अनुमान हो जाएगा। मुनिश्री जहाँ एक ओर एक प्रखर आगम वेत्ता थे, वही दूसरी ओर लोकमन के पारखी कवि भी थे। 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' उनके गहन अध्ययन की एक उत्तम परिणति है, एव लावणी तथा चरित-काव्याश उनकी लोकसाहित्य-प्रतिभा का एक ठोस उदाहरण है। हमें विश्वास है हमारे सहृदय पाठको को इनसे मुनिवर्य की प्रतिभा की थाह मिलेगी और वे उनके सपूर्ण वाङमय के पारायण के लिए प्रेरित-उत्साहित होंगे। 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' एक ऐसा ग्रन्थ-रत्न है जो जैनतत्त्व-दर्शन का एक सपूर्ण चित्र हमारे सामने रखता है। इसमें १८ अध्याय है, जिनमें क्रमशः षट् द्रव्य, धर्म-स्वरूप, आत्मशुद्धि के उपाय, ज्ञान, सम्यक्त्व, धर्म, ब्रह्मचर्य, साधु-धर्म, प्रमाद-परिहार, भाषा-स्वरूप, लेश्या-स्वरूप, कषाय-स्वरूप, वैराग्य-सम्बोधन, मनोनिग्रह, आवश्यक कृत्य, नर्क-स्वर्ग और मोक्ष का निरूपण है। —संपादक)

निर्ग्रन्थ-प्रवचन

१

नो इंदियग्गेज्झ अमुत्तभावा, अमुत्तभावा वि अ होइ निच्चो।
अज्झत्थहेउं नियमस्स बंधो, संसारहेउ च व्यंति बंधं ॥

आत्मा इन्द्रियों के द्वारा नही जाना जा सकता है, क्योंकि वह अमूर्त है।
अमूर्त्त होने से वह नित्य भी है।
मिथ्यात्व, अविरति, कषाय आदि कारणो से आत्मा बन्धन मे फँसा है
और वह बन्धन ही संसार का कारण है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण या सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥

आत्मा ही सुख-दु.ख का जनक है और आत्मा ही उसका विनाशक है।
सदाचारी सन्मार्ग मे लगा हुआ आत्मा अपना मित्र है
और कुमार्ग पर लगा हुआ दुराचारी आत्मा ही अपना शत्रु है।

२

नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा ।
वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ।।
नामकम्मं च गोयं च, अंतरायं तहेव य ।
एवमेयाइं कम्माइं, अट्ठेव उ समासओ ।।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र
और अन्तराय संक्षेप मे ये ही आठ कर्म है ।

३

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनिअतइ ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ ।।

जो-जो रात्रि चली जाती है, वह-वह लौटकर नही आती ।
अधर्म करनेवाले की रात्रियाँ निष्फल जाती है ।

४

धिई मई य संवेगे, पणिहि सुविहि संवरे ।
अत्तदोसोवसंहारे, सव्वाकामविरत्तया ।।

अदीन वृत्ति से रहना, संसार से विरक्त होकर रहना, कायादि के अशुभ योगो को रोकना,
सदाचार का सेवन करना, पापों के कारणों को रोकना,
अपनी आत्मा के दोषों का संहार करना,
और सर्व कामनाओं से विरत रहना ।

५

अह सव्वदव्वपरिणामभावविण्णत्तिकारणमणंतं ।
सासयमप्पडिवाई एगविहं केवलं नाणं ।।

केवलज्ञान समस्त द्रव्यों को, पर्यायों को और गुणों को जानने का कारण है,
अनन्त है, शाश्वत है, अप्रतिपाती है,
और एक ही प्रकार का है ।

६

नत्थि चरित्तं सम्मत्त विहूणं, दंसणे उभइअव्वं ।
सम्मत्तंचरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ।।

सम्यग्दर्शन के अभाव में सम्यक् चारित्र नही होता ।
सम्यग्दर्शन के होने पर चारित्र भजनीय है ।
सम्यक्त्व और चारित्र एक साथ होते है
अथवा
सम्यग्दर्शन पहले होता है ।

७

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झं ण केणइ ।।
मैं सब जीवों को क्षमाता हूँ — क्षमायाचना करता हूँ,
सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करे ।
सर्वभूतों के साथ मेरी मैत्री है,
मेरा किसी के साथ बैर नही है ।

८

भोगामिसदोसविसन्ने, हियनिस्सेयस बुद्धिवोच्चत्थे ।
बाले या मन्दिये मूढे, बज्झइ मच्छिया व खेलम्मि ।।
भोग रूपी मास मे, जो आत्मा को दूषित करने के कारण दोष रूप है,
आसक्त रहनेवाला
तथा हितमय मोक्ष के प्राप्त करने की बुद्धि से विपरीत प्रवृत्ति करनेवाला,
धर्मक्रिया मे आलसी, मोह मे फंसा हुआ,
अज्ञानी जीव,
कर्मो से ऐसे बध जाते है जैसे मक्खी कफ में फंस जाती है ।

९

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ।।
संसार के समस्त जीव जीने की इच्छा रखते है,
मरने की इच्छा कोई नही करता;
अतएव निर्ग्रन्थ साधु घोर जीववध का त्याग करते है ।

१०

दुमपत्तए पंडुरए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए ।
एवं मणुआण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ।।
गौतम ! जैसे रात्रि-दिन के समूह व्यतीत हो जाने पर पका हुआ पेड़ का पत्ता झड़ जाता है,
इसी प्रकार मनुष्यो का जीवन है,
अत: एक क्षण मात्र का भी प्रमाद मत कर ! !

११

तहेव काणं काणेत्ति, पंडगं पंडगेत्ति वा ।
वाहियं वा वि रोगित्ति, तेणं चोरेत्ति नो वए ।।

इसी प्रकार काने को काना न कहे, नपुंसक को नपुंसक न कहे,
व्याधिवाले को रोगी न कहे और
चोर को चोर न कहे ।

अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अंतरा ।
पिट्ठिमंसं न खाएज्जा, मायामोसं विवज्जए ।।

वार्तालापरत मनुष्यों के बीच बिना पूछे नहीं बोलना चाहिये,
चुगली नही खानी चाहिये और
माया-मृषा का त्याग करना चाहिये ।

१२

किण्हा नीता य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य ।
सुक्कलेसा य छट्ठा य, नामाइं तु जहक्कमं ।।

लेश्याओ के यथाक्रम नाम इस प्रकार है – कृष्ण, नील, कापोती, तेजो, पद्म और शुक्ल ।

१३

कोहो अ माणो अ अणिग्गहीया, माया य लोभो अ पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ।।

निग्रह न किया हुआ क्रोध और मान तथा
बढ़ती हुई माया और बढ़ता हुआ लोभ,
ये सब पुनर्जन्म के मूलों को हराभरा करते है, उन्हे सीचते है ।

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह ।
पडिपुणं नालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे ।।

शालि, यव और पशुओं के साथ सोने से पूरी भरी हुई पृथ्वी एक मनुष्य की भी
तृष्णा शान्त नही कर सकती,
ऐसा जानकर तपश्चरण करना चाहिये ।

१४

डहरा बुड्ढा य पासह, गब्भत्था वि चयंति माणवा ।
सेणं जह वट्टयं हरे, एवमाउखयम्मि तुट्टई ।।

बालक, वृद्ध और यहाँ तक कि गर्भस्थ मनुष्य भी अपने जीवन को त्याग देते है,
इस सत्य को देखो;
जैसे बाज पक्षी तीतर को मार डालता है,
उसी प्रकार आयु का क्षय होने पर–
मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है ।

१५

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ता णं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥

एक को जीत लेने पर पांच जीत लिये जाते हैं,
पांच को जीत लेने पर दस पर विजय प्राप्त होती है और
दस पर विजय प्राप्त करनेवाला समस्त शत्रुओं पर जय पा लेता है ।

१६

अक्कोसेज्जा परे भिक्खु, न तेसिं पडिसंजले ।
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू न संजले ॥

दूसरा कोई पुरुष भिक्षु पर आक्रोश करे तो उस आक्रोश करनेवाले पर भिक्षु क्रोध न करे ।
क्रोध करने पर वह स्वयं बाल-अज्ञानी के समान हो जाता है,
अतएव भिक्षु क्रोध न करे ।

१७

अच्छिनिमीलियमेत्तं, नत्थि सुहं दुक्खमेव अणुबद्धं ।
नरए नेरइयाणं, अहोनिसं पच्चमाणाणं ॥

रात-दिन पचते हुए नारकी जीवों को नरक में एक पल-भर के लिए भी सुख नहीं मिलता, उन्हें निरन्तर दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है ।

१८

जहा दड्ढाण वीयाणं, ण जायंति पुणंकुरा ।
कम्मवीएसु, दड्ढेसु न जायंति भवंकुरा ॥

जैसे जले हुए बीजो से फिर अंकुर उत्पन्न नहीं होते,
उसी प्रकार कर्मरूपी बीजो के जल जाने पर भवरूपी अंकुर उत्पन्न नहीं होते ।

□□

'जिस आत्मा में ज्ञान की जितनी अधिक स्फुरणा होती है, प्रतिभा होती है या चमक होती है, समझ लीजिये वह आत्मा उतना ही अधिक निर्मल है ।

'जैसे स्याही की गोली दूध से धोयी जाए तो गोली तो शुद्ध होती नहीं, दूध ही मलिन हो जाता है; इसी प्रकार पानी से धोने पर शरीर शुद्ध नहीं होता, बल्कि पानी ही शरीर के संसर्ग से अपवित्र हो जाता है ।

—मुनि चौथमल

लावणी : सास-बहू-संवाद

(तर्ज : ख्याल)

बचन ये सत्य हमारा मान, जैन धर्म झूठा मत कर तान ।।टेर।।
जैन धर्म है नास्तिक जग में, बोले केइ इन्सान ।

दया दान ईश्वर नही माने ये नास्तिक पहचान ।।१।।
जगत् में जैन धर्म परधान, सासुजी मत कर खेंचातान ।।टेर।।

जैन धर्म की निन्दा सासु, मुझ से सुनी न जावे ।
ईश्वर भक्ति दया दान सत जैन धर्म समझावे ।।२।।

मैं समझी थी बाली भोली, तूं निकली होशियार ।
करे सामना उत्तर देवे, शर्म न रक्खें लगार ।।३।।

सुनी सुनी बातो पर सासु, दिया आपने कान ।
जैन धर्म तो पूरा आस्तिक माने है भगवान ।।४।।

बांध मुखपत्ति करे सामायिक, राखे पुंजनी पास ।
बात बहु अच्छी नहीं लागे, आवे मुझने हास ।।५।।

जीव दया हित बांधु मुखपत्ति, राखु पुंजनी पास ।
जो नही करे सामायिक सासु, वो भोगे यम त्रास ।।६।।

जैन धर्म के साधु तेरे, मुझे पसंद नही आवे ।
मुख पर वांधे सदा मुखपत्ति, माग माग कर खावे ।।७।।

जैन धर्म के मुनि जक्त मे, होते है गुणवान ।
कनक कामिनी के त्यागी है, नशा पत्ता पच्चखान ।।८।।

डीगा नहीं सक्ता है देवता, जो दृढ़ धर्म के माई ।
चौथमल कहे सुभद्रा ने, सासू को समझाई ।।९।।

(लावणी-संग्रह ८, १९६३ ई.)

।। श्री कृष्ण जन्म ।।

ढाल · श्री कृष्ण मुरारी, प्रकटे अवतारी यादव वंश मे ।।टेक।।

गिरी सामने गज का देखो, उतर जाय अभिमान ।
चन्द्र चाँदनी वहाँ तक रहती, जब लग उके न भान हो ।।९६३।।

मेडक फिरे फदकता जब तक, सर्प नजर नही आवे ।
शेर न देखे वहाँ तक मृगला, उछल फान्द लगावे हो ।।९६४।।

जो ऊगे सो अस्त होय, और फूले सो कुम्हलाय ।
हर्ष शोक का जोड़ा जग मे, देखत वय पलटाय हो ।।९६५।।

पतिव्रता बालक और मुनिवर, जो कुछ शब्द उचारे ।
वाक्य इन्होके निष्फल ना हो, जाने है जन सारे हो ।।९६६।।

सज्जनो का दुख हरण करन को, हरी आप प्रकटावे ।
अधिक रवि की गरमी हो तब, मेघ वारी वर्षावे हो ।।९६७।।

हरि देवकी के उर आये, स्वपना सात दिखावे ।
सिह, सूर्य, गज, ध्वज, विमान, सर, अनल शिखा दरसावे हो ।।९६८।।

चवा स्वर्ग से गंगदत्त का, जीव गर्भ मे आया ।
स्वप्नो का हाल रानी ने सारा, पति को आन सुनाया ।।९६९।।

कहे देवकी वसुदेव से, तुमने सुत मरवाया ।
जोर चला नही जरा इसी मे, जीव बहुत दुख पाया हो ।।९७०।।

बिना पुत्र सारा घर सूना, जैसे नमक बिन भात ।
पशु पक्षी बच्चों को पाकर, वे भी मन हर्षात हो ।।९७१।।

इस बालक को आप बचा लो, रहेगा नाम तुमारो ।
स्वप्ने के अनुसार नाथजी, क्या नही हृदय विचारो हो ।।९७२।।

नन्द अहीर की नार यशोदा, एक दिन मिलने आई ।
अपनी बीतक बात देवकी उसको सभी सुनाई ।।९७३।।

('भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र'
चरित-काव्य के कुछ अंश, पृ. ६०; १९७० ई.)

□

"आपका कितना बड़ा सौभाग्य है कि आपको ऐसे देश में जन्म मिला है, जिसका इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल है और देश के अतीतकालीन महापुरुषों के एक-से-एक उत्तम जीवन आज भी विश्व के सामने महान् आदर्श के रूप में उपस्थित हैं। इन महापुरुषों की पवित्र जीवनियों से आप बहुत कुछ सीख सकते हैं। समय-समय पर आपको उनकी जीवनियाँ सुनने को मिलती हैं। इतने और ऐसे-ऐसे पवित्रात्मा किसी अन्य देश में नहीं हुए; फिर भी आप उनसे लाभ न उठावें और उनके चरण-चिह्नों पर चलने का थोड़ा-सा भी प्रयत्न न करें तो कितने खेद की बात है ?

ब्यावर, ७ सित. १९४१ —मुनिश्री चौथमलजी म.

श्रद्धाञ्जलि
काव्याञ्जलि

जीना जिसने सीखा
मरना वही सीख सकता है

चौमुखी क्यूं ! प्रतिभा थी बहुमुखी, रसवंती के स्वामी ।
काव्य-निर्मिति, शास्त्र-सगति वाचस्पति थे नामी ।।
कविता आपकी हम गाये तो, गद्‌गद श्रोता होते ।
अहा ! काव्य यह श्राव्य अतिशय मुक्त कण्ठ से कहते ।।

थके नहीं, नही डरे किसी से, हारे कभी न आप ।
बढ़ते कदम थमानेवाले बांध गये महापाप ।।
जीवित जागृत महापुरुषों को लोग नही पहचाने ।
खूब सुनाये ताने पहले बाद लगे गुण गाने ।।

महावीर की महावीरता सिखलायी सब को धर प्रेम ।
हिंसादि महापाप छुड़ाये खूब कराये व्रत और नेम ।।
हजारों भक्तों ने माना श्रेष्ठ-ज्येष्ठ गुरुवर थे आप ।
गुरु की काया नही आज पर मन मे श्रद्धा वही अमाप ।।

लगन लगाना धर्म-मार्ग की काम नही किंचित भी सीधा ।
किन्तु शिष्यगण आप चरण मे भागे छोड़ सुख और सुविधा ।।
पर परिणति परलोक बिगाड़े समकित मोक्ष दिलाये ।
नगर-नगर और गांव-गांव जा यही तत्त्व समझाये ।।

जीना जिसने सीखा मरना वही सीख सकता है ।
तन की, मन की दे कुर्बानी, याद अमर रखता है ।।
जाने पर भी माने दुनिया, कैसी कीमिया कर दी ।
भक्तों की रग-रग में धर्मास्था गहरी भर दी ।।

□ साध्वी प्रीतिसुधा

तीर्थंकर : नव. दिस. १९७७

समन्वयवादी सन्त

दिवाकरजी महाराज समन्वयवादी महान् सन्त थे। उनकी वाणी में ओज, विचारों में गाम्भीर्य व मानव-मात्र की कल्याण की भावना निहित थी। धर्म, जाति एवं समाज-संगठन में आपका अपूर्व योगदान रहा है। निर्भीक वक्ता के साथ आप सफल कवि भी थे। उनके श्रेष्ठ कार्यों का दिग्दर्शन कराने में यह विशेषांक सफल बने, यही मेरी शुभकामना है।

—आचार्य आनन्दऋषि, अहमदनगर

अनुसरण में सार्थकता

सन्त एवं महापुरुषों की जन्म-शताब्दी-समारोह की सफलता उनके बताये गये मार्ग पर चलना और तदनुरूप आचरण करना ही होता है।

—उपाध्याय विद्यानन्द मुनि, बड़ौत

करुणा की साक्षात् मूर्ति

जैन दिवाकर, जगद्वल्लभ श्री चौथमलजी महाराज वस्तुतः जैनसंघरूपी विशाल आकाश के क्षितिज पर उदय होने-वाले सहस्रकिरण दिवाकर ही थे। उनका ज्योतिर्मय व्यक्तित्व जैन-अजैन सभी पक्षों में श्रद्धा का ऐसा केन्द्र रहा है कि जन मन सहसा विस्मय-विमुग्ध हो जाता है।

उनकी जनकल्याणानुप्राणित बोधवाणी राजप्रासादों से लेकर साधारण झोपड़ियों तक में दिनानुदिन अनुगुंजित रहती थी। प्रवचन क्या होते थे, अन्तर्लोक से सहज समुद्भूत धर्मोपदेश के महकते फूलों की वर्षा ही हो जाया करती थी। परिचित हो या अपरिचित, गाँव हो या नगर, जहाँ कहीं भी पहुँच गए, उनके श्रीचरणों में श्रद्धा और प्रेम की उत्ताल रंगों से गजंती एक विशाल सागर उमड़ पड़ता था। न वहाँ किसी भी तरह का अमीर, गरीब आदि का कोई भेद होता था और न जाति, कुल, समाज या मत, पंथ आदि का कोई अन्तर्द्वन्द्व ही। उनकी प्रवचन-सभा सचमुच मे ही इन्द्रधनुष की तरह बहुरंगी मोहक छटा लिये होती थी।

श्री जैन दिवाकरजी करुणा की तो साक्षात् जीवित मूर्ति ही थे। इतने पर-दुःखकातर कि कुछ पूछो नही। अभावग्रस्त असहाय वृद्धों की पीड़ा उनसे देखी नहीं गयी, तो उनकी कोमल करुणावृत्ति ने चित्तौड़-जैसे इतिहास-केन्द्र पर वृद्धाश्रम खोल दिया। अनेक स्थानों पर पुराकाल से चली आती बलि-प्रथा बन्द कराकर अमारी घोषणाएँ घोषित हुई। हजारों परिवार मद्य, मास, द्यूत तथा अन्य दुर्व्यसनों से मुक्त हुए, धर्म के दिव्य संस्कारों से अनुरंजित हुए। शिक्षण के क्षेत्र में बालक, बालिका तथा प्रौढों के लिए धार्मिक एवं नैतिक जागरण के हेतु शिक्षा-निकेतन खोले गए। मातृजाति के कल्याण हेतु कितनी ही प्रभावशाली योजनाएँ कार्यरूप में परिणत हुई। बस, एक ही बात। जिधर भी जब भी निकल जाते थे, सब ओर दया, दान, सेवा और सहयोग के रूप में करुणा की तो गंगा वह जाती थी।

श्री जैन दिवाकरजी शासनप्रभावक महतो महीयान् मुनिवर थे। अनेक आचार्यों से जो न हो सकी, वह शासनप्रभावना दिवाकरजी के द्वारा हुई है। जितना विराट् एवं ऊँचा उनका तन था, उससे भी कही अधिक विराट् एवं ऊँचा उनका मन था; आज की समग्र संकीर्णताओं तथा क्षुद्रताओं से परे, संघ-संगठन के शत-प्रतिशत रखे हुए सूत्रधार। संप्रदाय विशेष में रहकर भी सांप्रदायिक घेराबंदी से मुक्त। अपने युग का यह इतिहास पुरुष कालजयी है। युग-

युग तक भावी प्रजा अपने आराध्य की अविस्मरणीय जीवन-स्मृति में सहज श्रद्धा के सुमन अर्पण करती रहेगी और यथाप्रसंग अपने मन, वाणी तथा कर्म को ज्योतिर्मय बनाती रहेगी।

जन्म-शताब्दी के मंगल प्रसंग पर उनके प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व एवं कृतित्व को शत-शत वन्दन, अभिनन्दन!

—उपाध्याय अमरमुनि, वीरायतन, राजगृह (बिहार)

जिनशासन के रत्न

श्री जैन दिवाकरजी म. सा. की महानता को उनके बाद अब तक कोई नही छू सका।

जिनशासन को ऐसा रत्न फिर नही मिला। **—अम्बालालजी म., सेमल**

भव्यतम व्यक्तित्व

स्वर्गीय परम श्रद्धेय श्री जैन दिवाकरजी म सा. तात्कालिक जैन समाज मे भव्यतम व्यक्तित्व के धनी थे। पिछले ५०० वर्षो मे किसी भी अन्य जैन मुनि के मुकाबिले उन्होने सर्वाधिक भारतीय जनजीवन को प्रभावित किया। आज भी लाखों जैन-अजैनों के हृदय-पट पर उनका अद्भुत प्रभाव बना हुआ है।

पिछले सौ वर्षो के भारत के श्रेष्ठतम व्यक्तियो के इतिहास मे पूज्य जैन दिवाकरजी म. सा. का महान् जीवन स्वर्णिम अक्षरों से अंकित होगा।

शताब्दी-वर्ष के पवित्र अवसर पर मै हार्दिक श्रद्धा समर्पित करता हूं।

—सौभाग्यमुनि 'कुमुद', सेमल

आत्मजागृति के उन्नायक

अध्यात्म-जगत् के प्रकाश-पुज जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म. सा. ने जन-जन को ज्ञान-प्रकाश से आलोकित करने का प्रयत्न, वह भी लम्बे समय तक पाद-विहार करते हुए अनेक प्रदेश, नगरों और गाँवो को पावन करते हुए किया। सद्-विचार, भक्ति, वैराग्य भाव मे लीन होने की अ.त्मजागृति पैदा की। ऐसी महान् आत्मा के प्रति मैं श्रद्धा व्यक्त करता हूँ। शताब्दी-वर्ष धार्मिक, सद्कार्यो की रचनाओं के साथ सम्पन्न हो, ऐसी शुभकामना करता हूँ।

—रतन मुनि, मलकापुर

प्रेरक और सफल बनें

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज-जैसे महापुरुषो के पवित्र जीवन से प्रेरणा लेकर मानव अपने जन्म को कल्याणकारी व सफल बनाये, यही शुभकामना जन्म-शताब्दी के पावन अवसर पर है।

—बाबा बालमुकुन्द, इन्दौर

जैन एकता के अग्रदूत

भगवान् महावीर ने कहा है: 'सन्ति मग्गंच बुहए'। साधक तू भले कही पर विचरण कर, तेरा कर्त्तव्य है शान्ति मार्ग का ही उपदेश देने का। ताकि आधि-व्याधि-उपाधि से संत्रस्त प्राणी—भूत—जीव सत्त्वों को कुछ राहत मिल सके।

प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर चौथमलजी म. सा. का बहुमुखी व्यक्तित्व भगवान् महावीर के उक्त उपदेश से आप्लावित था। वस्तुत: जिस गाँव-नगर और प्रान्त मे आपने समस्त मानव-समाज को अहिंसा के ध्वज के तले एकत्रित कर परम अमृतोपम शान्ति का ही सन्देश दिया था। फलत: जैन समाज ही नही, अपितु तत्कालीन इतर समाज ने भी आपके मण्डनात्मक उपदेशों को खुले दिल-दिमाग से स्वीकार किया और सभी ने गुरु-तुल्य मान कर आपका हार्दिक अभिनन्दन भी किया।

अन्तिम कोटा-चातुर्मास में शान्ति और संगठन का प्रत्यक्ष दृश्य कार्यान्वित रूप में सामने आया। उन दिनों कोटा नगर में जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म. मूर्तिपूजक आचार्य श्री आनन्दसागरजी म. तथा दिगम्बराचार्य श्री सूर्यसागरजी म. चातुर्मास बिता रहे थे। तीनों महामुनि एक व्यासपीठ पर बैठकर धर्मोपदेश प्रदान करे। तदनुसार त्रिवेणी-संगम का श्लाघनीय दृश्य उपस्थित करने का सारा श्रेय जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म. को था। जिनकी विराट् भावना ने और ओजस्वी वाणी की ललकार ने जैन इतिहास में प्रगति युग का निर्माण कर आनेवाले समाज को यह सिखा दिया कि भविष्य में शान्ति और संगठन में ही सामाजिक जीवन का अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है।

इन शब्दों के साथ मैं दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ।

—सुरेश मुनि, मन्दसौर

हार्दिक शुभकामनाएँ

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आप श्री जैन दिवाकर जन्म-शताब्दी-समारोह आगामी दिनांक २३ नवम्बर, १९७७ से मनाने जा रहे हैं। इस उपलक्ष्य में मासिक पत्रिका 'तीर्थंकर' का एक विशेषांक निकालने का निश्चय किया गया है। मैं आपके इस आयोजन तथा विशेषांक की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हूँ।

—ब. दा. जत्ती, नई दिल्ली
(उप राष्ट्रपति, भारत)

महान् साधक और संत को श्रद्धांजलि

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि २३ नवम्बर से देशभर में जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी महाराज की जन्म-शताब्दी मनायी जा रही है। इस अवसर पर मासिक-पत्र 'तीर्थंकर' का एक विशेषांक डा. नेमीचन्द के संपादन में प्रकाशित किया जा रहा है। इस विशेषांक में मुनिश्री चौथमलजी के जीवन और कृतित्व पर विशद सामग्री का समावेश किया जाएगा।

मै उस महान् साधक और जैन संत को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और आशा करता हूँ कि आपका यह विशेषांक जैन समाज और विशेषकर आज के युवा समाज को सद्कार्यो में प्रवृत्त होने की प्रेरणा देगा।

मेरी शुभकामनाएँ।

—भैरोंसिंह शेखावत, जयपुर
(मुख्यमंत्री, राजस्थान)

समन्वय के प्रेरक

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि समन्वय के प्रेरक जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की जन्म-शताब्दी २३ नवम्बर, ७७ से प्रारंभ हो रही है और १३ महीनों का कार्यक्रम बना रहे हैं। 'तीर्थंकर' का विशेषांक भी प्रकाशित हो रहा है।

महापुरुषों तथा त्यागी साधकों का गुणानुवाद भारतीय संस्कृति की परम्परा रही है। उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का स्मरण करते हुए उनके बताये मार्ग पर चलने का सद्संकल्प करना शताब्दी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हो सकती है।

मैं इस शुभ एवं प्रेरक आयोजन की सर्वांगीण सफलता की शुभकामना करता हूँ। **—श्रेयांसप्रसाद जैन, बम्बई**

हार्दिक प्रसन्नता

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में 'तीर्थंकर' पुनः एक भव्य मननीय-संकलनीय विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, यह अवगत कर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

'तीर्थंकर' का प्रत्येक अंक ही पठनीय विशेषांक सदृश होता है। निश्चय ही

प्रवुद्ध पाठक को मननशील सामग्री प्रदान कर 'तीर्थंकर' समाज का भारी उपकार कर रहा है। आगामी विशेपाक भी लोकरंजक-मनहर हो, ऐसी भावना है।

—भागचन्द सोनी, अजमेर

श्रमणधारा के तेजस्वी साधक

परम श्रद्धेय मुनि श्री चौथमलजी महाराज की गणना इस युग के उन महान् संतो मे है, जिन्होने पीडित मानवता के क्रंदन को सुना, समझा और उसके निदान में अपना जीवन अर्पित कर दिया। वे श्रमण-धारा के तेजस्वी साधक थे। उनके उपचार के साधन भी अहिंसा-मूलक थे। उनका हृदय विशाल तथा कार्यक्षेत्र विस्तृत था। वे झोपड़ी से लेकर महलो तक पहुँचते थे। उनकी दृष्टि मे राजा-रंक, धर्म-जाति का भेद नही था। सवको समताभाव से वीर-वाणी का अमृत पान कराकर हजारो लोगों को भेदभाव बिना सन्मार्ग पर लगाने का मानवीय कार्य जिस निर्भयता और दृढ़ता से मुनिश्री ने किया, वह अलौकिक है। दुःखियो, पीड़ितो, पतितो और शोषितों के वे सहज सखा थे। उनके कष्टो से द्रवित होते थे। ज्ञानदान द्वारा उनके दु.खों को मिटाने का पुरुपार्थ करते थे। इसलिए तुलसीदासजी ने कहा

> 'सत हृदय नवनीत समाना
> कहाँ कविन पर कहीयन जाना।
> निज परिताप द्रवे नवनीता
> पर हित द्रवही सो संत पुनीता ।।'

पर उपकार ही उनकी पूजा थी। जिसे वे सहज धर्म के रूप मे जीवन भर करते रहे। 'तुलसी' ने कहा है :

> 'पर उपकार वचन, मन, काया
> सत सहज स्वभाव खगराया।
> संत विपट सहिता गिर धरणी
> पर हित हेत इननकी करनी ।।'

मुनिश्री के जीवन में संत का यह दिव्य चरित्र पग-पग पर भरा-पूरा नजर आता है। मुनि श्री जैन तत्त्वज्ञान के परम उपासक और साधक थे। प्रबल प्रवक्ता थे। उनकी ओजस्वी वाणी मे मानव-मन की विकृतियो को नष्ट करने की अद्‌भुत कला थी। अहिंसा, मैत्री, एकता और प्रेम का सन्देश घर-घर फैला कर उन्होने मानव-समाज और देश की अनुपम सेवा की। मनुष्यों में शुद्ध जीवन जीने की निष्ठा का स्नेह, वात्सल्य से अखंड दीपक जलाया। ऐसे निस्पृह तपस्वी साधु अध्यात्म-जगत् में बिरले होते है। मुनिश्री की प्रथम जन्म-शताब्दी भारत भर मे मनाई जा रही है। इस रूप मे हम उस महान् संत को अपनी पूजा अर्पित कर रहे है। यह हमारा परम सौभाग्य है। शताब्दी के पावन-पुनीत अवसर पर मै उस धर्म-ज्योति को अपनी आंतरिक श्रद्धा अर्पित करता हूं। उन्हे शत-शत नमन करता हूँ।

—मिश्रीलाल गंगवाल, इन्दौर

मानव-सेवा के पथ पर समर्पित व्यक्तित्व

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज अपने युग के महान् सत थे। जैन इतिहास मे आपका धर्म-प्रचारक के रूप मे अद्वितीय स्थान रहा है। चेहरे की प्रसन्न मुद्रा देखकर श्रोता का मंत्रमुग्ध हो जाना आपके चरित्र की मुख्य विशेषता रही है। यही कारण था कि तात्कालीन राणा, महाराणा, राजा, महाराजा एवं समाज के अन्य वर्ग के लोगो पर आपके हितकारी वचनो का चमत्कारिक प्रभाव पड़ा। आपके सदुपदेश से बहुत से राजाओ और जागीरदारो ने अपने-अपने राज्यो मे हिंसा-निषेध की स्थायी आज्ञाए प्रसारित की। मुनिश्री का सपूर्ण जीवन प्राणिमात्र की रक्षा के पवित्र उद्देश्य के प्रति समर्पित था।

जगत्-वल्लभ मुनिश्री चौथमलजी का दृष्टिकोण सदैव व्यापक रहा है।

उन्होंने राजा और रंक मे भेदभाव न रखते हुए सभी श्रेणियों की जनता मे भगवान् महावीर के सिद्धांतों का समान रूप से प्रचार किया। मुनिश्री ने समाज मे घृणास्पद समझे जानेवाले मोची, चमार, कलाल, खटीक और वेश्याओं तक को अपना संदेश सुना कर उनके जीवन को ऊँचा उठाने की दिशा में भगीरथ प्रयास किया। कितने ही हिसक कृत्य करनेवाले व्यक्तियों ने आपके उपदेशो से प्रभावित होकर आजीवन हिसा का त्याग किया एवं कई लोगों ने शराब, मांस, गांजा, भांग तथा तम्बाकू नही सेवन करने की प्रतिज्ञाएँ की। इस प्रकार मुनिश्री ने अपने आपको धर्मोपदेश एवं जीवदया के महान् कार्य में लगा दिया।

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का शताब्दी-वर्ष हमारे जीवन का मंगलमय प्रसंग है। हमें चाहिये कि हम उनके आदेशों के अनुरूप मानव-जाति के कल्याणकारी दिशा मे रचनात्मक कदम उठा कर उस महापुरुष के प्रति अपने श्रद्धा सुमन समर्पित करे। इसी भावना को मूर्त्त रूप देने के उद्देश्य से मुनिश्री के शताब्दी-वर्ष की स्मृति मे जैन दिवाकर विद्या-निकेतन की स्थापना का शुभ संकल्प किया गया है। हमे हर्ष है कि श्री स्थानकवासी जैन सेवा-संघ ने इस पवित्र कार्य हेतु अपनी न्यू पलासिया भूमि प्रदान कर सस्था के संचालन का भार-वहन भी स्वयं पर लिया है। आशा है समाज के उदार आर्थिक सहयोग से जैन दिवाकर विद्या-निकेतन शिक्षा-केन्द्र शीघ्र ही मूर्त्त रूप ग्रहण करेगा। यही मगल कामना है।

—सुगनमल भंडारी, इन्दौर

तेजस्वी पुण्यात्मा

परमपूज्य जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज ने सौ वर्ष पूर्व भारत भूमि में जन्म लेकर भगवान् महावीर के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने का जो कार्य किया, वह सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

उन्होंने धर्म प्रचार हेतु जिस क्षेत्र को चुना, उसे आज की भाषा में पिछड़ा हुआ क्षेत्र कहते है। भगवान् महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व अपनी दिव्य ज्योति द्वारा उस समय व्याप्त कथित उच्चवर्णीय वर्गों द्वारा समाज में धर्म के नाम पर फैलाये जा रहे वितण्डावाद एवं हिंसा का मुकाबला निम्न से निम्न अर्थात् अंतिम आदमी की झोपड़ी तक जाकर करने को प्रोत्साहित किया। राज्यवंश में जन्म लेकर जिस महामानव ने भेद-विज्ञान प्राप्त कर आत्म-शक्ति को जागृत किया, स्वयं वीतरागी हुए व विश्व को विनाश से बचाया।

एक सौ वर्ष पूर्व जन्मे मुनिश्री चौथमलजी ने आदिवासियों के बीच जाकर उनसे मॉस व शराब छुड़वाई तथा उन्हें मनुष्य बनने की प्रेरणा दी। मुनिश्री के समक्ष राजा एवं रंक का कोई भेद नही था। वे निस्पृह भाव से समान रूप से समताभाव धारण किये हुए राजाओं और रकों को भगवान् का उपदेश देते थे। सरल, मनोहारी, ओजस्वी वाणी जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को छूती थी, उनके उपदेश की शैली हृदय-स्पर्शी थी। स्वयं त्याग कर दूसरो को प्रेरित कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य व्रत को झोपड़ों तक पहुँचानेवाले उस महान् तेजस्वी पुण्यात्मा का शताब्दी-महोत्सव मना कर हम स्वयं अपने कर्त्तव्य-पथ पर चलने को अग्रेषित हो रहे है।

पूज्य मुनिश्री के चरणो मे मेरा शत-शत वन्दन !

—बाबूलाल पाटोदी, इन्दौर

अहिंसा-धर्म के महान् प्रचारक

प्रसिद्ध वक्ता जैन दिवाकर स्व मुनि चौथमलजी महाराज श्वे स्थानकवासी

शाखा से सम्बद्ध, वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्ध में एक महान् प्रभावक जैन सन्त हो गये है। सन् १८७७ ई. में नीमच (म. प्र.) मे जन्मे और १८९५ ई. में, मात्र १७-१८ वर्ष की किशोर वय में साधु-दीक्षा ग्रहण करनेवाले इन महात्मा का ५५ वर्षीय सुदीर्घ मुनि-जीवन अहिंसा एवं नैतिकता का जन-जन मे प्रसार करने तथा जिनशासन की प्रभावना में व्यतीत हुआ। उत्तर भारत, विशेषकर राजस्थान एवं मध्यप्रदेश के प्राय. प्रत्येक नगर व ग्राम में पदातिक विहार करके उन्होने निरन्तर लोकोपकार किया। उनकी दृष्टि उदार थी और वक्तृत्व शैली ओजपूर्ण, सरल-सुबोध एवं प्रभावक होती थी, छोटे-बड़े, जैन-अजैन, सभी के हृदय को स्पर्श करती थी। यही कारण है कि उस सामन्ती युग मे राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि के अनेक राजा, ठिकानेदार, जागीरदार, मुसलमान नवाब, कई अंग्रेज उच्च अधिकारी तथा जैनेतर विशिष्ट व्यक्ति भी उनके व्यक्तित्व एवं उपदेशों से प्रभावित हुए। छोटी जातियों—यथा मोची (जिनघर) जैसे लोगों में से अनेकों को मद्य-मांस-त्याग की महाराज ने प्रतिज्ञा कराई।

मुनि श्री चौथमलजी के दीक्षाकाल के ५१ वर्ष पूरे होने पर अबसे ३० वर्ष पूर्व रतलाम की श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशक समिति ने 'श्री दिवाकर अभिनन्दन-ग्रन्थ' प्रकाशित किया था, जिसमे महाराज साहब से सम्बन्धित सामग्री भी बहुत कुछ थी। हमारा भी एक लेख 'राज्य का जैन आदर्श' उस ग्रन्थ मे प्रकाशित हुआ था। उसके तीन वर्ष पश्चात् ही, सन १९५० ई. मे मुनिश्री का ७३ वर्ष की आयु में निधन हो गया। उनके साधिक अर्धशताब्दीव्यापी महत्त्वपूर्ण कार्यकलापों को देखते हुए वह ग्रन्थ अपर्याप्त था। उनकी विविध साहित्यिक रचनाओं का भी समीक्षात्मक विस्तृत परिचय अपेक्षित था।

अब मुनिश्री की जन्म-शताब्दी के अवसर पर एक वर्षव्यापी कार्यक्रम बना है और प्रतिष्ठित मासिक 'तीर्थंकर' का विशेषांक प्रकाशित हो रहा है, यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मै उक्त विशेषांक की तथा पूरे आयोजन की सफलता की हार्दिक कामना करता हूँ।

जिनधर्म की सार्वभौमिकता को जन-जन के हृदय पर अंकित करने के सद्-प्रयासी मुनिश्री चौथमलजी महाराज की पुण्य स्मृति मे इस शुभावसर पर मै अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

उच्चकोटि के व्याख्यानदाता

श्री चौथमलजी महाराज की जन्म-शताब्दी जो २३ नवम्बर १९७७ को पूरे भारतवर्ष में मनायी जा रही है; उसका यह कार्यक्रम तेरह मास का होगा। उस जमाने मे दिवाकरजी भारत के जैन समाज में विख्यात साधुओं में एक थे। आगरा की समाज ने विनती करके आगरा मे चातुर्मास के वास्ते आमंत्रित किया और आप वहाँ पधारे, आपका बड़ा स्वागत किया गया था। दिवाकरजी का बडा नाम था और वे बड़े अच्छे दर्जे के व्याख्यानदाता थे। आपका जीवन एकता, मैत्री, शान्ति, अहिंसा और वात्सल्य का अपूर्व शखनाद था। आपके आगरा में कई सार्वजनिक व्याख्यान हुए। उनका आगरा की जनता पर मुख्यतया सन्त वैष्णव संप्रदाय के लोगों पर जो जैनधर्म के बारे में भ्रांति थी, वह दूर हो गयी और बड़ा प्रभाव पड़ा।

उस समय लाउड स्पीकर नही था। आपके प्रतिदिन के व्याख्यानों मे सैकड़ो आदमी जाते थे और सार्वजनिक व्याख्यानों मे हजारो श्रोता होते थे, आपकी आवाज इतनी बुलन्द थी कि हर व्यक्ति तक आसानी से पहुँच जाती थी। उस जमाने

में आगरा में दिवाकरजी के व्याख्यानों की बड़ी सोहरत थी। आपके प्रभाव से अनेक लोग जैनधर्म के अनुयायी बने।

मुझे भी उस समय श्री दिवाकरजी की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। ऐसे महान् आत्मा की जन्म-शताब्दी मनाना बड़े सौभाग्य की बात है, मैं इसका स्वागत करता हूँ। यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि भारत के पाँच नगरों में यह समारोह मनाया जा रहा है वे है—इन्दौर, रतलाम, मंदसौर, ब्यावर और कोटा। यह जानकर भी प्रसन्नता हुई कि इस अवसर पर 'तीर्थंकर' मासिक पत्र का विशेषांक निकाला जा रहा है, जिसका सम्पादन डा. नेमीचन्दजी कर रहे है। मैं हृदय से इस पत्रिका की एवं समारोह की सफलता चाहता हूँ।

—अचलसिंह, आगरा

चौमुखी व्यक्तित्व के धनी

भगवान् महावीर २५०० वीं शताब्दी में जैन एकता, समन्वय एवं सम्प्रदायों में परस्पर सद्भावना का सुन्दर वातावरण निर्माण हुआ। साम्प्रदायिक विद्वेष अब अतीत काल की बात हो गयी है। इसका श्रेय उन संतों व सामाजिक कार्यकर्ताओं को है, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी एकता का नाद गुंजाये रखा। ऐसे ही विरल संतों मे जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। उस समय एक सम्प्रदाय के साधु दूसरे सम्प्रदाय के साधुओं के साथ मेल-मिलाप रखें, ऐसा वातावरण नही था। उस समय जैन दिवाकरजी ने दिगम्बर आचार्य श्री सूर्यसागरजी तथा श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आचार्य श्री आनन्दसागरजी के साथ कई सम्मिलित कार्यक्रम किये। उस समय यह वड़े ही दुस्साहस का कार्य था। इस प्रकार मुनिश्री के हाथों एकता का वीजारोपण हो गया, जो काल-प्रभाव के साथ आज एक सघन वटवृक्ष की तरह शान्ति व शीतलता की अनुभूति दे रहा है।

मुनिश्री चौमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। सरस्वती उनकी वाणी से प्रस्फुटित होती थी। मानवीय अहिंसा में उनकी गाढ़ आस्था थी। अठारह वर्ष की उम्र मे उन्होंने मुनि-जीवन स्वीकार किया। ५५ वर्षो तक कठिन साधनामय जीवन बिताया। साधना-काल में जो उपलब्धियाँ प्राप्त होती रही, उन्हे वे निरंतर मानव-कल्याण के लिए उपयोग करते रहे। उन्हें अपने जीवन-काल में ही प्रसिद्धि व प्रतिष्ठा प्राप्त हो गयी थी। उनका प्रभाव साधारणजन, श्रेष्ठिवर्ग तथा राज-परिवारों पर भी था। मेवाड़ के महाराणा, देवास नरेश तथा पालनपुर के नवाब आदि आपके परम भक्त थे।

आपकी रचनाएँ उच्च कोटि के साहित्यकारों के समकक्ष ठहरती है। मालवभूमि में मुनिश्री के रूप में विश्व को अद्भुत देन दी है। उनकी वाणी आज भी दिवाकर की तरह मानव-जीवन को प्रभावित करती है। इस शताब्दि-वर्ष पर ऐसी महान् आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। **—पारस जैन**

लोकप्रिय क्रान्तिकारी मुनि

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि जैन दिवाकर पूज्य मुनिश्री चौथमलजी महाराज सा. का जन्म शताब्दी-समारोह मनाया जा रहा है तथा इस पावन प्रसंग पर इन्दौर से प्रकाशित 'तीर्थंकर' मासिक का विशेषाक प्रकाशित किया जा रहा है। 'तीर्थंकर' के मनीषी संपादक डॉ. नेमीचन्द जैन का यह प्रयत्न स्तुत्य है।

स्वर्गीय पूज्य मुनिश्री चौथमलजी म. स्थानकवासी हमाज के एक अत्यन्त लोकप्रिय मुनि रहे है। यह सच है कि उनकी

दीक्षा स्थानकवासी सम्प्रदाय में हुई, किन्तु उनका कार्य-क्षेत्र केवल स्थानकवासी समाज तक ही सीमित नही था। वे एक उदार विचार के सरल हृदय साधु थे तथा पूरे जैन समाज की एकरूपता में विश्वास करते थे, यही कारण है कि जिस युग में जैनधर्मान्तिर्गत एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय को मिथ्यात्वी निरूपित करता था। एक सम्प्रदाय के मुनिराज का दूसरी सम्प्रदाय के साधु-साध्वियो से कोई सम्पर्क नही था, अपितु एक-दूसरे को हल्की, निम्न दृष्टि से देखते थे। अपनी-अपनी साम्प्रदायिक मान्यता के समर्थन मे शास्त्रार्थ आयोजित होते तथा शास्त्रार्थ या तत्व-निर्णय के नाम पर वितण्डावाद होता था। यदा-कदा हाथापाई की नौबत आ जाती। ऐसी विपरीत परिस्थिति मे जिस महात्मा ने जैनधर्मान्तिर्गत एक सम्प्रदाय के साधु-मुनिराज के दूसरी सम्प्रदाय के साधु-मुनिराज के निकट लाने का प्रयास किया, वे महात्मा मुनिश्री चौथमलजी ही थे। लगभग २६-२७ वर्ष पूर्व कोटा (राजस्थान) मे भिन्न सम्प्रदाय के साधु-मुनिराज के साथ एक पाट पर बैठ कर व्याख्यान दिया। इस ऐतिहासिक अवसर पर जो भावुक थे तथा अखिल जैन एकता में विश्वास रखते थे उनकी आँखे गीली हो गई। यह हर्षातिरेक था। यह निकटता का सूत्र इस लम्बे अंतराल मे अधिक आगे बढ गया तथा एक-दूसरे के अधिक निकट आ गये। इस कारण संभवतः इस ऐतिहासिक शुभ प्रयास का महत्त्व कम आँके, किन्तु जिस विपरीत परिस्थिति के युग मे यह प्रयत्न हुआ यह बड़ा साहसिक कदम था। इस प्रकार स्व. मुनिश्री को समन्वय का प्रेरक कहा जा सकता है।

स्व. मुनिश्री ने जन-साधारण मे व्यसन-त्याग का प्रचार इतना अधिक किया था कि जिसके कारण मेवाड़, मालवा आदि प्रदेशो मे कई अजैन बन्धु (जो सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से कमजोर थे) से इनका परिचय हो गया। ऐसे अजैन बन्धु स्वर्गीय मुनिश्री की स्मृति उनके हृदय में संजोये हुए है। इस प्रकार उनका यश-कार्य अभी तक उन सीधे-साधे, भोले लोगो को प्रेरणा देता रहता है और उनके द्वारा स्वीकृत व्रत-पालन मे बल प्रदान करता है। स्वर्गीय मुनिश्री के उपदेशो से केवल जन-साधारण ही प्रभावित नही था, अपितु राजा, मंत्री, धनी, निर्धन सभी वर्ग के लोग भी प्रभावित थे तथा सभी वर्ग के मध्य मुनिश्री लोकप्रिय थे। उनकी दृष्टि में समाज के उच्च कुल से संबन्धित तथा निर्धन निम्न कुल से संबन्धित सभी प्रकार के जन समान थे तथा वह सबको समान रूप से उपदेशामृत का पान कराते तथा सात्त्विक जीवन के लिए प्रेरणा देते रहते थे। जैन ग्रन्थ मे भी कहा गया है कि

जहा पुण्णसए कत्थई, तहा तुच्छस्स कत्थई ।।
जहा तुच्छस्स कत्थई, तहा पुण्णस्य कत्थई ।।

तात्पर्य यह है कि स्व. मुनिश्री के अमृत-तुल्य वचनो से सभी प्रकार के वर्ग ने लाभ उठा कर सात्त्विक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा ली। मुनिश्री का तत्कालीन कई राजा-महाराजा पर इतना प्रभाव था कि उन्होने अपनी-अपनी रियासतो में पशु-वध को विशेष दिनो मे न करने के लिए आदेश देकर सनदे दी। ऐसे स्वर्गीय मुनिश्री के प्रति मे अपनी हार्दिक नम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—सौभाग्यमल जैन, शाजापुर

पतितोद्धारक

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के सान्निध्य मे आने का मुझे जब भी सुयोग मिला, उनकी स्नेहसिक्त अनुग्रहपूर्ण दृष्टि रही और यह भी एक संयोग ही नही, जीवन की सुखद स्मृति रहेगी कि मुनिराजश्री के निधन से पूर्व कोटा मे जब दर्शन हुए, तो वे बहुत आह्लादपूर्ण थे। जैन मुनियो मे ऐसे प्रखर प्रवक्ता, पतितोद्धारक और व्यक्तित्व

के धनी मुनिराजश्री का होना सारी जैन परम्परा के लिए गौरव की बात है। उनकी चुम्बकीय वाणी भी कइयों के हृदय में गूंजती है और अंधेरे क्षणों मे प्रकाश देती रहती है।

मैं इस महान् दिवंगत मुनिराजश्री के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—भूरेलाल बया, उदयपुर

शुभकामनाएँ और प्रणाम

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी की जन्म-शताब्दी-महोत्सव की सफलता के लिए श्रीमान् महाराणा साहब (उदयपुर) अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते है तथा उपस्थित आचार्य, साधु एवं साध्वियो की सेवा मे अपना प्रणाम निवेदन करते है।

—द्वारका प्रसाद पाटोदिया, उदयपुर

पतितों-दुखियारों के परमसखा

यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि समन्वय के महान् प्रेरक जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज की जन्म-शताब्दी मना रहे है।

महाराजश्री का जीवन एकता, मैत्री, शांति और वत्सलता की विजय का अपूर्व शंखनाद था। वे पतितों-दुखियारो के परमसखा थे। उनका जीवन पढ़ कर हमें मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। मैं हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

—प्रतापसिंह बेद, बम्बई

वात्सल्य के प्रतीक

दिल्ली में मुनिश्री चौथमलजी महाराज के चातुर्मास हुए। उस समय उनके कई बार प्रवचन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उनकी वाणी द्वारा भगवान् महावीर के मुख्य-मुख्य आदर्श की व्याख्या सुनने को मिली। उनके व्याख्यान ओजस्वी और हृदयस्पर्शी होते थे। उनके प्रवचन खंडन-कुतर्क आदि से अछूते रहते थे। उन्होंने सदैव सामाजिक एकता और वात्सल्य को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। वे लोकैषणा से कोसों दूर थे। उन्होने पद-प्रतिष्ठा आदि को महत्त्व नही दिया।

जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का जीवन हमारे लिए प्रेरणा-स्रोत है। मै अपनी श्रद्धा-सुमन उनके चरणों में समर्पित करता हूँ।

—भगतराम जैन, दिल्ली

ज्वाजल्यमान नक्षत्र

पूज्य जैन दिवाकरजी अपनी पीढ़ी के एक ज्वाजल्यमान नक्षत्र थे। उनका जीवन स्वयं के लिए नही, मानवता के लिए उन्होंने जिया। जिन्होने उन्हे देखा और उनका सान्निध्य प्राप्त किया, वे तो उनसे प्रेरणा प्राप्त करते ही हैं, परन्तु भावी पीढ़ियाँ भी उस प्रेरणामृत का पान करके लाभान्वित हों, इस दृष्टि से विशेषाक का प्रकाशन सफल और यशस्वी हो।

—सुन्दरलाल पटवा, मन्दसौर

एकता-संवेदना-करुणा की त्रिवेणी

जैन दिवाकर पूज्य मुनिश्री चौथमलजी के दर्शनों का सौभाग्य तो मुझे नही मिला, किन्तु उनके कार्यो की सुवास एवं साहित्य-सौरभ से आकर्षित अवश्य रहा हूँ। जैन एकता, मानवीय संवेदना और प्राणिमात्र के प्रति करुणा की त्रिवेणी उनके जीवन में थी।

ऐसे मनीषी की जन्म-शताब्दी का आयोजन कर नि.संदेह प्रशंसनीय कार्य किया जा रहा है। 'तीर्थंकर' का विशेषांक उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व से पूरित होगा, जिसके माध्यम से लाखो लोग प्रेरणा प्राप्त करेगे।

मै विशेषाक की सफलता और पूरे वर्ष के शताब्दी-कार्यक्रमो की सर्वांगीण

सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभ-कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

—चन्दनमल 'चाँद', बम्बई

मैत्री भावना के महान् साधक

स्व. जैन दिवाकर श्रद्धेय चौथमलजी म. सा. का प्रभाव आज सकल जैन समाज में परिव्याप्त है। इसका कारण यह है, उनके दिलोदिमाग में सभी धर्मो और जन-जतियों के प्रति समादर और समन्वय का भाव था।

मैत्रीभावना के महान् साधक के चरण-कमल जिधर भी आगे बढते थे, उधर जन-जन मे धर्म के प्रति नयी श्रद्धा, नयी स्फूर्ति और नयी चेतना का संचार होता था। उनके प्रभावोत्पादक मंगलमय प्रवचनों में जैन क्या जैनेतर भी हजारों की संख्या में लाभ लेते थे।

मैं श्रद्धेय जैन दिवाकरजी के चरण-कमलों मे अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

आपको मरहूम कहता कौन,
आप जिन्दों के जिन्दा हो।
आपकी नेकियाँ बाकी,
आपकी खूबियाँ बाकी।

—फतहसिंह जैन, जोधपुर

लोकोपयोगी मार्गदर्शन

भारतीय संस्कृति में संतों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उन्होने झोपड़ियों से महलो तक पहुँच कर लोगों की धार्मिक एवं नैतिक जागृति की है। उन्ही संतो की श्रृंखला मे जैन दिवाकर, प्रसिद्ध वक्ता पूज्य श्री चौथमलजी महाराज भी है।

उनके दर्शन का मुझे लाभ नही मिला, किन्तु उनके कार्य और साहित्य आदि को पढने तथा सुनने से उनका व्यक्तित्व बहुत ही ऊँचा मालूम हुआ। जो परिवर्तन शासन तया कानून से मनुष्य के अन्तरंग मे नही हो सका, वह उन महान् संत के लोकोपयोगी मार्गदर्शन से हुआ।

वे एक महान् ओजस्वी वक्ता भी थे। उन्होंने महाराष्ट्र की भूमि को पावन करके लोकोद्धारक उपदेश दिये, जिसके हम सब ऋणी है।

उन महान् पुण्यात्मा की जन्म-शताब्दी मनाने का निर्णय उचित और स्वागत योग्य है। उनके कार्य से लोगों की चारित्र्य शुद्धि हो और नैतिकता बढती रहे, यही मेरी शुभकामना है।

—चन्द्रभान रूपचन्द डाकले,
श्रीरामपुर (अहमदनगर)

श्रमण-संस्कृति के सजग प्रहरी

जैन दिवाकर गुरुदेव चौथमलजी महाराज आगम शास्त्रो के ज्ञाता थे। आपने आध्यात्म का सही बोध कराकर कुरीतियों, अन्धविश्वासो एवं सामाजिक विरोध को दूर करने का सतत प्रयत्न किया। गुरुदेव के ब्यावर में पाँच चातुर्मास हुए, जिनका जैन समाज पर काफी प्रभाव पड़ा। उन्होंने अनेकांत दर्शन का प्रतिपादन करके सर्वज्ञ के प्रति सच्ची श्रद्धा के भाव जागृत किये। आप सतत ही आगम के अभ्यासी रहे और गूढतम रहस्यों को बतलाते रहे। अहिंसा, स्याद्वाद, अनेकात, अपरिग्रह और सत्य की खोज मे ही उनका सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हुआ।

वे श्रमण-संस्कृति के रक्षक थे। ब्यावर गुरुदेव का प्रिय क्षेत्र माना जाता है। जब-जब ब्यावर मे चातुर्मास हुआ, तब-तब यहाँ के श्रावकों ने अनन्य भक्ति एवं श्रद्धाभाव से गुरुदेव के वचनों को सुना और उन्हे जीवन मे उतारने की कोशिश की। आपकी सुमधुर वाणी एवं व्याख्यानो से प्रभावित होकर उस समय दानवीर सेठ कुन्दनमलजी कोठारी ने रु. १,२५,००० का दान निकाला, जिसका उपयोग विद्यादान, औषधिदान तथा सेवारूप मे होता रहा है।

कुन्दन-भवन उसी दान का प्रतीक है। इसके अलावा कालूरामजी कोठारी, स्वरूप-चन्दजी तालेड़ा, देवराजजी सुराणा, चुन्नीलालजी सोनी तथा चाँदमलजी टोडरवाल गुरुदेव के अनन्य उपासकों मे थे।

गुरुदेव की स्मृति मे जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, जैन दिवाकर पुस्तकालय तथा जैन दिवाकर फाउंडेशन-जैसी संस्थाएं समाज में ज्ञान-प्रसार एवं प्रचार तथा समाज-सेवा का कार्य कर रही है। ये गुरुदेव की स्मृति को सदा याद दिलाती रहती है।

गुरुदेव का समस्त जीवन कर्मठ तपस्वी के रूप में तो था ही, साथ ही वे जैन जगत् के सजग प्रहरी भी थे। आज गुरुदेव की शताब्दी पर यह दृढ़ संकल्प करते हुए श्रद्धांजलि सर्मपित करते है कि जिस मार्ग का अनुसरण गुरुदेव ने किया, उस मार्ग पर चलते हुए श्रमण-संस्कृति की रक्षा करते रहेगे। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धामयी श्रद्धांजलि है।

—अभयराज नाहर, ब्यावर

'सर्वजनहिताय' की भावना से ओतप्रोत

मानव-समाज के आध्यात्मिक सम्राट् जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन एवं सेवा करने का लाभ बाल्यावस्था से ही मिलता रहा। उनका अन्तिम चातुर्मास कोटा मे हुआ, वहाँ भी कुछ समय सेवा में रहने का सौभाग्य मिला।

जब उनके जीवन का चिन्तन करता हूँ, तो ऐसा लगता है कि वे जैन समाज के ही नही थे, वे भगवान् महावीर के सिद्धान्तो के अनुरूप मानव-समाज के कल्याण की भावना से ओतप्रोत रहे। उनके प्रवचन सुनने के लिए सभी कौम के लोग आते थे। श्रोताओं के जीवन में उनके प्रवचनों का क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ता था।

महाराजश्री ने कोटा-चातुर्मास मे जैन एकता का बीजारोपण किया। उन्होंने दिगम्बर, स्थानकवासी, मूर्तिपूजक मुनिराजों को एक मंच पर बैठाकर प्रवचन करवाए। कोटा की जनता पर आज भी उसका प्रभाव है। उनकी उदारता, महानता और साधना अद्वितीय थी।

उनकी जन्म-शताब्दि-वर्ष की अवधि में व्यापक दृष्टिकोण अपना कर रचनात्मक कार्यो द्वारा ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते है। उनकी अमरवाणी आज भी सार्थक है। उनका जीवन स्वत: प्रामाणित है कि उन जैसे महापुरुष किसी जाति-संप्रदाय विशेष के नही होते, वे तो प्राणिमात्र के कल्याणार्थ अवतरित होते है। फूल सूख जाता है, लेकिन सुगंध फैला जाता है।

—मानवमुनि, इन्दौर

एक आलोक पुँज

श्रद्धेय जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी म. सा. विश्व के वन्दनीय सन्त-रत्न थे। उनके जीवन ने जन-जन को आह्लादित तथा प्रकाश-पथ की ओर प्रेरित किया। वे राजाओं के राजप्रासादों से लेकर भीलों की कुटियों तक अहिंसा का प्रचार करनेवाले प्रभावशाली गुरुदेव थे। दस्युओं और वैश्याओ ने उनके प्रवचनों से प्रेरित होकर अपने जीवन को सच्चे पथ की ओर अग्रसित किया।

चित्तौड़गढ़ जनपद के डूगला के समीप बिलोदा गॉव में रात्रि-विश्राम हेतु गुरुदेव उदा पटेल के मकान पर ठहरे हुए थे, उदा पटेल के यहाँ डाका डालने की दस्युवर्ग की सुनियोजित योजना थी। दस्युवर्ग को जब यह विदित हुआ कि चौथमलजी म. सा. यहाँ पर विराजते है, तो उन्होने निश्चय किया कि यहाँ डाका नही डालेगे। यह है गुरुदेव के व्याख्यानों का हरएक वर्ग पर प्रभाव।

जन्म-शताब्दी के पुनीत अवसर पर एक नही अनेकों संस्मरण आज भी याद करते हुए नेत्र सजल हो उठते हैं। भारतीय सस्कृति के महान् सत जैन दिवाकरजी ने एकता और बन्धुत्व का जो अमर सन्देश जन-जन को दिया, जो कभी भुलाया नही जा सकता है। जन-जन को आह्लादित करनेवाले मुक्तिदाता श्रद्धेय जैन दिवाकरजी की जन्म-शताब्दी के शुभ-पुनीत अवसर पर महान् संत को श्रद्धा के सुमन अर्पित करते है।

जैन दिवाकरजी म. सा. की प्रेरणाओं से संघ, समाज और राष्ट्र सदा पल्लवित तथा विकसित होता रहे। पारस्परिक सौहार्द्र और सहिष्णुता के पथ का अमर सदेश देनेवाले युगवन्दनीय संत को शत-शत-वन्दन!

—निर्मलकुमार लोढ़ा, निम्बाहेड़ा

आदर्श के अखंड स्रोत

परम श्रद्धेय जैन दिवाकर चौथमलजी म. सा. का स्वभाव और प्रवृत्ति इतनी सरल थीं कि वे क्रोधी, लोभी तथा दुर्व्यवहारी व्यक्ति को व्याख्यानों द्वारा इतना शांत एवं दयालु बना देते कि वह व्यक्ति गंभीर रूप से आश्चर्यचकित रह जाता था।

जो सामान्य व्यक्तियों के स्तर से ऊपर उठकर महानता का कार्य करे; छल, छिद्र, स्वार्थ, क्रोध, लोभ, अहंकार, मोह और सातो दुर्व्यजनो का त्याग कर देता है, उसे ही हम सन्त कहते है। हमारे श्रद्धेय गुरुदेव साधुत्व के नियमो का सही रूप से पालन कर सारे जग को अपना घर समझ कर एक महान् विभूति वन गए। वे हमारे आराध्य और आदर्श के अखंड स्रोत हैं।

—अशोककुमार नवलखा, निम्बाहेड़ा

समर्पित जीवन के ज्वलन्त उदाहरण

भारतवर्ष की महान् विभूतियो मे जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा। वे तो संपूर्ण राष्ट्र के हो गए थे। तभी वे कहते रहे, 'वसुधा मेरा कुटुम्व', 'मानवता मेरी साधना' और 'अहिंसा मेरा मिशन'। इन्ही सिद्धातों को हृदयंगम करके उन्होंने अपना जीवन संपूर्ण मानव-समाज के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया था। वे शान्ति और अहिंसा के अग्रदूत थे।

उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि तो उनके आदर्शो को चरितार्थ करने में है।

—एस. हस्तीमल जैन, सिकन्दराबाद

आदर्श कर्मयोगी

जैन दिवाकर गुरुदेव श्री चौथमलजी म. ने संघ की एकता के लिए सब कुछ न्यौछावर कर छह संप्रदायो का एकीकरण कर पूज्य श्री आनन्द ऋषि म. को प्रधानाचार्य नियुक्त किया।

उन्होने महाराष्ट्र, गुजरात, मेवाड, मारवाड़, मालवा, दिल्ली, पंजाब, उत्तरप्रदेश, जम्मू तक भ्रमण किया। रजवाड़ों से धार्मिक पर्वो पर हिंसा-निषेध के सरकारी फरमान जारी कराये और उनकी नकलें भी प्राप्त की। उनका दिल्ली पर भी उपकार था। उनका सं. १९९५ मे चान्दनी चौक में चातुर्मास हुआ था। वे दिल्ली का वरावर ध्यान रखते थे।

जन्म-शताब्दी पर पूज्य गुरुदेव के चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

—कपूरचन्द सुराणा, दिल्ली

वे थे ऐसे

(मन्दाक्रान्ता)

भाषा काव्य सुकृति कविता,
कर्म व्याख्यान सिद्धिः।
विद्यापेक्षी पर हित सदा,
योगमाया प्रसिद्ध ॥
भक्तों के है प्रियवर महा,
ज्ञानध्यानादिदाता।
नियानन्दी सुकृत सुखभरे,
प्राणदाता विधाता ॥
भाषावक्ता विविध सरस-
ग्रन्थ निर्माण संत।
शान्तो दान्तो प्रकृति विशद
ध्यान लाभे सुपंथ ॥
आते जाते नृपगण
भूपति देखमाने।
वे थे ऐसे अतुल गरिमा
ज्ञान ज्ञाता सयाने ॥

—मुनि रूपचन्द्र 'रजत'

जन्मशताब्दि वर्षेऽस्मिन्

शताब्दं पूर्वे जातः संतः चौथमलः कविः।
हीरालालो गुरुर्यस्य तस्य शिष्यः धीमतिः।
गुरुप्रसादाच्च नभौ नूनं ख्यातनामो
जनकविः।
अर्जिता उपाधयस्तेन प्रसिद्धवक्ता
जैनदिवाकरः ॥
जन्मशताब्दि वर्षोऽयं प्राप्तं भाग्योदयेन तु।
वहुविधा आयोजनाः कृताः
भक्तैः नगरे नगरेऽपि च ॥
रंकाश्च नरेशाश्च जैनेतरा जनता तथा।
धर्म प्रवचनैर्येन आर्कषिता बहुसंख्यकाः ॥
आशातीता भवत्तपस्या
जन्मशताब्दि वर्षेऽस्मिन्।
चतुर्विधसंघेन चिरस्मरणीयं
कृतं दिवाकर स्मृतिः ॥
श्रमणत्वं पालितं येन
शुद्धभावेन जीवने।
कृतार्थं येन कृतं जन्म
तस्मै नमः जैन दिवाकराय ॥

—नन्दलाल मारू

दिवाकरोऽयम्

दिव्याकरो द्युतियुतोऽपि
दिवाकरोऽयम्।
भव्याकरो विजित ज्ञान,
निशाकरोऽयम् ॥
शिक्षा करो हिमविचार
सुधाकरो यम्।
विद्याधरो नरवरोऽपि
दिवाकरोऽयम् ॥

सिद्धायुधो सुसफलो
मुदितो महात्मा।
चैतन्य शक्तिरपरो,
महितोशुभात्मा ॥
व्याख्यानरीति कुशलो,
नृपराज सेतुः।
पारं करोति सकलान्
निजधर्मकेतुः ॥

गम्भीर भाव भवनो
भुवने न कोऽपि।
विद्या विवाद मतिमान्
मतिमान् न कोऽपि ॥
वाणी विचित्र मधुरः,
सुभगो मुनीशः।
दिव्याननो विनय भावमुदा मुनीशाः।

व्याख्यान ज्ञान जगता—
मधिकार स्वामी।
व्याख्यान कोश परितोष
सुधारनामी ॥
दिव्याकरो रुचिकरोऽत्र
चतुर्थमल्ल।
सत्यार्थ ध्यान चरितार्थ
विकासमल्ल ॥

—श्रीधर शास्त्री

वन्दना

(भुजंगप्रयात)

अनेके नरेशास्तथामात्यवर्गाः
पुरश्रेष्ठिवर्याश्च विद्वद्वराश्च।
सवर्णा अवर्णास्तथा मुस्लिमा
वा भवन् भक्तिनम्रा जनानां समूहा :
गतो यत्र तत्रापि धर्मप्रचारोऽ-
भवत्सर्ववर्गेषु वर्णेष्वबाधः।
सभायां जना मन्त्रमुग्धाः प्रजाता
मुनेः शीर्षकम्पेन सार्धं समस्ताः।।
धर्मप्रचारेण च भूयसाऽसाववाप
कीर्ति विपुला विशुद्धाम्।
मान्योऽभवज्जैनदिवाकरेति
वक्ता प्रसिद्धश्च जनप्रियश्च।।

—नानालाल जवरचन्द रूनवाल

उन जैसा कुछ तो करें

शिक्षा देते हम
राम, कृष्ण, गौतम, गाधी,
और महावीर के
सद्‌गुणो की
सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र की,
सत्य, अहिंसा और त्याग की,
मानव के उत्थान की,
देश पर वलिदान की;
फिर, शिक्षक वन
असत्य का पावन हम क्यो करें
झूठ, चोरी और दुराचार
हमें शोभा देते नही
हमारे आदर्श है वे,
उन जैसा कुछ तो करें।

—घेवरचन्द जैन

वह पिये संगठन के प्याले

श्रद्धा की ज्योति हृदय तले।
वे भक्त सदा मन-धन से फले।।
शत्रु मित्र बन, चरण धरे।।

रोग शोक भय भूत भगे,
जीवन में समता-शौर्य जगे।।
नन्दन-वन मे विश्राम करे।।

गुरुवर की शिक्षा जो पाले।
वह पिये संगठन के प्याले।।
अशुभ कर्म सब शीघ्र झरे।।

—मुनि भास्कर

आत्मज्ञान के अनुपम साधक

कलाकार जीवन के सच्चे,
कान्ति-शान्ति के पुज परम।।
ज्ञान-ध्यान की विविध विधा से,
पावन जीवन, उच्च, नरम।।

प्रवहमान गंगा का निर्मल,
नीर सभी का उपकारी।
प्रवचन की निर्मल धारा से,
तरे अनेकों संसारी।।

आत्मज्ञान के अनुपम साधक,
चमके जैसे नभ में चन्द।
भारतीय जन-जन के मन में,
वसे सुमन मे यथा सुगंध।।

राजा, राणा, रंक सभी जन,
चरणो में पाते आनन्द।
वाणी-भूषण, कुशल प्रवक्ता,
सुनकर लेते गुण मकरन्द।।

तेरे पावन उपदेशों पर,
जो भी कदम वढायेंगे।
कर्मपाश झट काट जगत् से,
शीघ्र वही तर जाएंगे।।

—जितेन्द्र मुनि

अगर ठहर जाता थानक पर

रामपुरा का श्रमणोपासक
बोला जैन दिवाकर से।
सूत्र मांगलिक मुझे सुनायें
जाना है बाहर घर से।।

मंगलपाठ श्रवण कर गुरु से
श्रावक कुछ ही कदम चला।
गुरु ने उसे बुलाया वापिस
सोचा उसके लिए भला।।

माला एक फेर कर जाओ
वरत रहे क्षण अशुभ अभी।
थोड़ा-सा रुक जाना ही तो
हो जाता शुभ कभी-कभी।।

समझा नही, दिया उत्तर यूँ
मै हूँ अभी उतावल में।
क्या अन्तर पड़ सकता है जी
अशुभ क्षणों के उस फल मे ?

घर पर उसका इन्तजार कर
रही पुलिस उससे बोली।
चलो सेठ जी थाने जल्दी
तज दो यह मूरत भोली।।

कहा सेठ ने मेरे द्वारा
कही नही अपराध हुआ।
फिर भी मेरे लिए निरर्थक
कैसे खड़ा फिसाद हुआ ?

थाने में ले गये वहाँ पर
नही इन्सपेक्टर हाजिर।
बोले उनके आने पर ही
होगा भेद सकल जाहिर।।

चूँ चप्पड़ चल पाती किसकी
बैठे सेठ स्वयं चुपचाप।
सोचा नही अभी का लेकिन
आया उदय पूर्वकृत पाप।।

चार बजे जब, बाहर से तब
थानेदार पधारे है।
पूछा, सेठ ! यहाँ पर कैसे
आप हमारे प्यारे है।।

मुझे आपने बुलवाया यह
पुलिस पकड़ कर लायी है।
क्या मेरे हाथों की कोई
पकड़ी गई बुराई है ?

थानेदार लगा यूँ कहने
हाय हमारी भूल हुई।
लाना किसे, किसे ले आये
विधि-वेला प्रतिकूल हुई।।

माफ करो हम सबको
सुख से आप पधारो अपने घर।
महर नजर जैसी रखते हो
रखते रहना हम सब पर।।

आये सेठ शान्ति से निजघर
गये दिवाकरजी के पास।
कहा आपने, किन्तु न मैंने
किया कथन पर कुछ विश्वास।।

गुरुवाणी पर श्रद्धा करता
तो क्यों दुख उठाता मै।
अगर ठहर जाता थानक पर
तो क्यो थाने जाता मै।।

'मुनि गणेश' जो गुरु कहते
उसमे छिपा रहता कल्याण।
जैन दिवाकरजी का जीवन
कितना पावन और महान्।।

— गणेश मुनि शास्त्री

ज्ञान का प्रकाश मिला

सूरज निकला
प्रकाश हो गया
कुए पर गये तो
घड़ा भर लाये।
वृक्ष के पास जाकर
फल ले आये।
चाँद ने रात में
शीतलता भर दी,
पर
एक ही दिवाकरजी के
पास गये तो
ज्ञान का प्रकाश मिला,
उपदेशों के अमृत से
घड़ा भर लिया।
अच्छी करनी का
अच्छा फल मिला।
और, और
प्रवचन, लावणी
भजन और चरित्रों
के माध्यम से
जीवन के उत्थान
और कल्याण के लिए
साहित्य की धवल चाँदनी
सर्वत्र विखराकर
मानव को मानव
बनने की राह बताई
जैन दिवाकर जी ने।

—मोतीलाल सुराना

महामनस्वी

छप्पय

मृदु वाणी मतिमंत महा ज्ञानी मनमोहक,
मद मत्सरता मार ममत्त मिथ्या मोहकमोडक ।।
मागलीक मुख शब्द महाव्रती महामनस्वी,
मर्यादा अनुसार प्रचारक परम यशस्वी ।।
मुनि गुणी मुक्ता मणी, जन जीन के थे हीये हारवर,
गंगा सुत केसर तनय चौथ मुनि चारू-चतुर ।।

कुडलिया

भरी जवानी में करी, हरी विषय की झाल।
मरि तिय फिर ना वरी, धरी शील की ढाल।
धरी शील की ढाल, काम कड कीना नामी
नही रति-भर चाह, पद्दिये केइ पामी ।
अध्यात्मिकता पायके करी साधना हर घड़ी,
उत्तम लोक में चौथ ने सुन्दर यश झोरी भरी ।।

☐ **श्रमणसूर्य श्री मिश्रीलाल महाराज**

जैन दिवाकर पंच-पंचाशिका (पचपनिका)

(संस्कृत – वंशस्थ; हिन्दी-हरिगीतिका; रचयिता – मुनि घासीलाल महाराज)

प्रणम्य देवादिनुतं जिनशं तीर्थकरं साञ्जलि घासिलालः।
वंशस्थ वृत्ते वितनोति लोके छ्वनाविलां चौथमलस्य कीर्तिम् ।।
मुनि घासिलाल जिनेन्द्र की करवन्दना विधि सर्वथा।
विख्यात करता लोक में मुनि चौथमलजी यशकथा।।१।।

महात्मनां पुण्य जुषाम् षीणां शृण्वन् यशः शुद्धमतिं लभन्ते।
प्रसिद्धि रेषा जगतां हिताय प्रयत्नशीलं कुरुते मुनिमाम् ।।
है ख्यात जग में ऋषिजनों की यश सुने मति शुद्धि हो।
संयत बनाती है मुझे यह लोकहित की बुद्धि हो।।२।।

ऋतु वसन्तं समवाप्य वाटिका विधुं यथा शारदपौर्णमासिका।
व्यराजत प्राप्य तथा जगत्तलं दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ।।
ज्यों पा वसन्त को वाटिका शरदिन्दु को राका निशा।
त्यों चौथमल मुनिराज से सर्वजन राजित यशा।।३।।

मही प्रसिद्धा खलु मालवाभिधा नृपैरभूद विक्रम भोजकादिभिः।
तथैव जाता धरणी नु धन्या दिवाकरश्चौथमलेन साधुना।।
विख्यात मालव भूमि थी उन भोज विक्रमराज से।
भूलोक धन्या वह हुई श्री चौथमल मुनिराज से।।४।।

मुनिं भविष्णुं जननी तनूदभवं प्रसूय पूतं कुरुते कुलं स्वकम्।
स्वकीय मात्रे स यश स्तदा दिशद् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः।।
मुनि भवि सुत को जन्म दे जो कुल पवित्र करे वही।
यह यश दिया निजमातुको श्री चौथमल मुनिराज ही।।५।।

पुरातनं पुण्यफलं शरीरिणाम् सुखस्य हेतुर्य विनां सदाभुवः।
अभूष्यल्लोकमिमं स्वजन्मना दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः।।
था पूर्व संचित पुण्यफल संतत सुखों का हेतु था।
भूषित किया निज जन्म से जो चौथमल मुनिराज था।।६।।

महीविभूषा भुवनेषु मन्यते सभूषणा भारतवर्ष तस्तु सा।
अभूद् यदंशे स तु सर्व भूषणो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः।।
है लोक मे भूषण यही भारत विभूषित भूमि है।
जह चौथमल मुनिराज भव वह सर्वभूषण भूमि है।।७।।

पिताऽभव द्धन्य तमोजन प्रियः गंगायुत राम नामकः।
निरीक्ष्य लोकेषु सुकीर्ति मौरसं दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ।।
था पिता गगाराम नामक धन्य सुत को देखकर।
सव लोक में विख्यात औरस चौथमल ज्यों ऊष्णकर ।।८।।

अयं महात्मा सततं जिनप्रियो जिनेन्द्रवार्ता श्रवणोत्सुकः सदा।
देहात्मचिंतार्पित धीरजायत दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
था सतत जनप्रिय ये मुनि अर्हत कथा सुनता सदा।
देहात्मचितारत मनस्वी चौथमल मुनिराज था ।।९।।

विनश्वरं पुष्कल कर्मसम्भव देहं प्रपुष्णन् मुदमेतिमानवः।
इति प्रचिंताज्वलनेन दीपितो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
दिन रात नश्वर देह के पोषण. निरत जन हृष्ट है।
चिन्ता शिखा दीपित मुनीश्वर चौथमल अति श्रेष्ठ है ।।१०।।

समुद्र मार्गाक्षिनवेन्दु वत्सरे (1934) त्रयोदशी कार्तिक शुक्ल पक्षजे।
खेर्दिने केसरवाई तोऽभवद् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
उन्नीस सौ चौतिस त्रयोदशि शुक्ल कार्तिक पक्ष मे।
थे हुए केसरवाई के रवि दिन दिवाकर कक्ष में ।।११।।

सनेत्रबाण ग्रहचन्द्रहायने (1952) शुभे सिते फाल्गुन पंचमी तिथौ।
व्रताय दीक्षां प्रयतो गृहीतवान् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
वावन अधिक उन्नीस सौ फागुन तिथी सित पञ्चमी।
ली थी मुनीश्वर चौथमल व्रत हेतु दीक्षा संयमी ।।१२।।

न दुर्लभा नन्दन कानने गतिः न चाप्य शक्यो जगतः सुखोद्भवः।
विवेद सम्यक्त्व मतिं सुदुर्लभां दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
दुर्लभ नही नन्दन गमन नहि लोकसुख की प्राप्ति ही।
सम्यक्त्व पाना है कथिन श्री चौथमलजी मति यही ।।१३।।

ययात्मपित्तादिवशाद् विलोक्यते सितः पदार्थोऽपि हरिद्रारागवान्।
अलिस्तथैवेति विवेद सर्वथा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
ज्यो पित्त दुपित नेत्र से सित वस्तु पीला दीखता।
त्यो भ्रमजनो को मर्वथा यह चौथमल था दीपता ।।१४।।

अयं महात्मा सकलेऽपि भारते स्वतेजसा धर्षित दुर्गुणाशयः।
पद प्रणायेन मुदं समीयिवान दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
निज तेज धर्पित दुष्टजन को कर अखिल इस भुवन मे।
दिनकर मुनीश्वर चौथमल सुख मानता पदगमन मे ।।१५।।

गुणानुरागं स्वजने समानतां समस्तशास्त्रेषु विवेचनाधियम्।
अवाप्तुमुत्को भवतिस्म सर्वदा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
समता जनों में राग गुण में शास्त्र में अनुशीलना।
को प्राप्त करने की सदा थी चौथमल की एषणा॥१६॥

दिनेन चाल्येन गुरोरुपासणादवाप्तविद्यागतशे मुषीधनः।
सविस्मयं लोकममुं चकार स दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
थोड़े दिनों में गुरु कृपा से प्राप्त विद्या थी धनी।
विस्मित जगत को कर दिया श्री चौथमल दिनकर मुनी॥१७॥

नयान्विता तस्य मुनः मतिः सदा दधार दिव्यां प्रतिभांसभाङ्गणे।
अतो जगद्वल्लभता मुपागतो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
थी सभा में प्रतिमा विलक्षण सर्वनय व्याख्यान मे।
अतएव जगवल्लभ बने श्री चौथमल सर्वलोक मे॥१८॥

गुरुर्गरिष्ठो विवुधाधिपाश्रयाद् बुधोवरिष्ठो वसुधाधिपाश्रयाद्।
अनाश्रयेणैव बभूव पूजितो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
सुरराज आश्रय से वृहस्पति वुधवरिष्ठ नरेन्द्र से।
आश्रय बिना पूजित हुए श्री चौथमल देवेन्द्र से॥१९॥

गुणं गृहीत्वेक्षु रसस्य जीवनं प्रसून गन्धञ्च समेत्यराजते।
परन्तु दोषोज्झित सद्गुणैरयं दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
पा पुष्प गन्ध विराजते जल इक्षु के माधुर्य से।
पर चौथमल मुनिराज तो निर्दोष सद्गुण पुञ्ज से॥२०॥

स संशय स्थान् विषयान् विवेचयञ्जिनेन्द्र सिद्धान्त विदां समाजे।
चकार सम्भाषण मोहितान्जनान् दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
संदिग्ध पद व्याख्यान कर शास्त्रज्ञ जैन समाज मे।
भाषण विमोहन की कला थी चौथमल मुनिराज में॥२१॥

अपंडितास्सन्त्व थवा सुपण्डिताः विवेकिनस्सन्त्व विवेकिनोऽथवा।
स्वभावतस्तं सततं समेऽननमन् दिवाकरचौथमलो मुनीश्वरम्॥
पण्डित अपण्डित या विवेकी सर्वजन सामान्य हो।
थे भाव से करते नमन श्री चौथमल को नम्र हो॥२२॥

नमस्कृतोऽपि प्रणतः क्षमापना मयाचत प्राणभृतः सभावनः।
विरोध बुद्धि व्यरुणत स्वतो मिथो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
जन प्रणत थे पर वे सदा जन से करे याचन क्षमा।
था विरोध नही परस्पर चौथमल मे थी क्षमा॥२३॥

यथास्वरूपं प्रविहाय कीटका: विचिन्तनाद भ्रामररूपमद्‌भुतम्।
समाश्रयन्ते यतिस्तथा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
ज्यो कीट अपना रूप तज चिन्ता निरत अलि रूप को।
पाता यतन करते मुनि त्यो चौथमल निज रूप को॥२४॥

तमः स्वरूपं सुजनैर्विगर्हितं विरागभूमिं कुगति प्रवर्तकम्।
स्वकर्मरूपं फलयन् कदर्थय द्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
तमरूप अति सज्जन विनिन्दित कुगतिप्रद वैराग्यभू।
करते कदर्थन कर्म को श्री चौथमल मुनिवर प्रभू॥२५॥

प्रकृष्ट तीर्थंकर दृष्ट सत्पथा श्रयाज्जन स्सर्वसुखं समेधते।
इनीह सिद्धान्त मवाललम्बत दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
श्रेष्ठ तीर्थंकर विलोकित पथगमन सवसुख मिले।
कहते सदा यह चौथमल सिद्धान्त का अवलम्व ले॥२६॥

उदारभावों यतकायवाङमना निरीहतां स्वांवपुषा प्रकाशयन्।
जगद्विरागेण सदा विराजते दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
औदार्य यत मन वचन काया तन प्रकाश निरीहता।
था जग विरति से सर्वदा श्री चौथमल मुनि सोहता॥२७॥

जगत्प्रसिद्धा विविधाशयाजनाः समागताः श्रावक श्राविकादयः।
मनोरथान पल्लवितान प्रकुवते दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
थे श्राविकाश्रावक अनेको विविध फल के आस मे।
करते मनोरथ सफल आ जन चौथमल के पास में॥२८॥

मनोरथं कल्पतरुयथार्थिनां दुदोह भक्तयागत शुद्धचेतसाम्।
कुहेतुवादा श्रयिणामकीर्तिदो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
कल्प तरु मम भक्ति युत आगत जनों की कामना।
पूरण किये श्री चौथमल पर थी जिन्हे सद्‌भावना॥२९॥

वचांसि तस्यां स्वगुरोः सभासदः विशिष्ट वक्तृत्वकलागुरोर्वचः।
निशम्य नेमस्तम नन्य मानसा दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम्॥
वैशिष्ट्य युत उनके वचन सुन के सभासद प्रेम से।
करते नमन थे कलागुरु मुनि चौथमल को नेम से॥३०॥

कुमार्गगान् भिन्नमति न्न्यवेदय दिजनेन्द्र सिद्धान्त व चोभिरीहिते।
जिनेन्द्र वार्ता श्रयिणो व्यधापय दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः॥
स्मृति हीन कुत्सित पथ प्रवृत्त जिनेन्द्र दर्शित मार्ग मे।
सिद्धान्त वचनों से मुनीश्वर आनते सन्मार्ग मे॥३१॥

विहारकालेकमनीय माननं व्यलोकयन भव्यजना हतावयम् ।
इत्येवमूचुः पथिदूर भागते दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ।।
भव्य जन थे देखते कमनीय मुख मुनिराज के।
थे लोग पछताते परस्पर चौथमल पथ साज के।।३२।।

समाधिकाले निहितात्म वृत्तिमान् विभाति वाचस्पतिवत् सभास्थितः ।
एमं वदन्ति हम जनाः परस्परं दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ।।
गुरु सम सभा मे शोभते थे योगयत निज वृत्त थे।
यो बोलते जन थे परस्पर चौथमल के कीर्ति थे।।३३।।

उदीयमाने पिवि भास्करं जनो गुरुन्पदार्थान् कुरुते समक्षम् ।
अणुस्वभावानपि तानवेदयद्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
गुरु वस्तु को जन देखते रवि जब उदित हो गगन में।
पर सूक्ष्म को भी दिखाते चौथमल निज कथन मे।।३४।।

महाजना वैश्य कुलोद्भवा जनाः स्वकर्म बन्धस्य क्षयाय सन्ततम् ।
नेमुः प्रभाते विधिवद् व्रतेस्थिता दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ।।
निज कर्म बन्ध क्षयार्थ सन्त वैश्य कुल भवभक्ति से।
थे दिवाकर को सतत करते नमन अनुरक्ति से।।३५।।

अप्राप्त वैराग्य जिनोक्त सत्पथ प्रयाण कामा बहवः सुशिक्षिताः ।
सुशिष्य लोका सततं सिषेविरे दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरं ।।
पाकर विराग जिनेन्द्र नय मे गमन करना चाहते।
थे सुशिक्षित शिष्यगण मुनि चौथमल को सेवते।।३६।।

निशीथिनी नाथ महस्सहोदरं विभ्राजते स्माम्बरमस्य पाण्डुरम् ।
जनाः स्ववाचो विषयं स्वकुर्वते दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरं ।।
थे निशाकार के सदृश अम्बर युगल शित शोभते।
जन दिवाकर चौथमल मुनि के विषय मे बोलते।।३७।।

न भेदले शोऽपि बभूव जातुचित, प्रशासति स्थानकवासी मण्डलम् ।
जना न तास्मिञ्जहति स्म सत्पथं दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ।
जब जैन मण्डल शासते थे भेद नही किंचित कही।
नहिं छोड़ते सन्मार्ग को वे चौथमल जब तक यही।।३८।।

वणिग्जना न्याय्य पथानुवर्तनाद प्रकामवित्तार्जित लब्ध सत्क्रियाः ।
बभुः स्वधर्मेण गुरौ प्रशासके दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ।।
थे वैश्यगण अतिशय धनी सत्कार पाते न्याय से।
थे शोभित निज धर्म से श्री चौथमल जब ज्याय थे।।३९।।

न दुःखदारिद्रय भवायकश्चन प्रधर्षिता ज्ञानतमः समन्ततम् ।
उपास्य भक्तेह चरित्र शालिनम् दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ।।
पाते न दुख दरिद्रता चारित्र शाली जन सभी ।
अज्ञान नाशक चौथमल गुरु को नमन करते जंमी ।।४०।।

चकार हिंसानृत चौर्य प्रवञ्चना कामरतांश्चमानवान् ।
जिनेन्द्र सिद्धान्त पथानुसारिणो दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
चोरी अनृत हिंसा प्रवञ्चन काम चरत जो लोग थे ।
सब त्याग जिन पथ रत हुए जब चौथमल उपदेशते ।।४१।।

जनावदन्तिस्म मृदुस्वभावो नृदेहधारी सुरलोकनायकः ।
इहागतो धर्म प्रचार कारणाद्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
नर देहधारी देवनायक जैन धर्म पसार ने ।
आये यहाँ है लोग कहते चौथमल जग तारने ।।४२।।

कुरुध्वमाज्ञां मनुजाः ! कृपालोर्महेन्द्र देव प्रमुखैर्नुतस्य ।
जिनेश्वरस्येति ह्यदेश सर्वदा दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
हे मनुज देव महेन्द्र युत जिनदेव की आज्ञा करो ।
थे चौथमल उपदेशते भवदु.ख सागर तरो ।।४३।।

अनित्य भूतस्य कलेवरस्य त्यजध्वमस्योपरमाय वासनाम् ।
समान स लोकानिति संदिदेश दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
नश्वर कलेवर मुक्ति हित निज त्याग दो सब वासना ।
देते दिवाकर चौथमल नरलोक को यह देशना ।।४४।।

स्वकर्म सन्तान विराम प्राप्तये प्रयासमासादयतिस्म सन्ततम् ।
शरीर संपोषण कर्म संत्यज द्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
निज कर्म तन्तु विरामपाने यत्न मुनि करते सदा ।
थे देह पोषण कर्म छोड़े चौथमल मुनि सर्वदा ।।४५।।

भजस्व धमत्यज लौकिकैषणां जहीहि तृष्णां कुरु साध सेवनम् ।
कथा प्रसङ्गेन जनानपादिशद्दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।
कर धर्म त्यागो लोक सुख तृष्णा विरत साधु भजो ।
कहते सभा मे चौथमल मुनि धर्महित सब सुख तजो ।।४६।।

जगत्पवित्रं कुरुते मनेः कथा अतोक्त्र भक्ति कुरुतादनारतम् ।
जगत्प्रिये साध समाज सम्मते दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ।।
जगपूत करती मुनिकथा अतएव भक्ति सदा करो ।
जगत प्रिय अति साधु मानित चौथमल का पग धरो ।।४७।।

जिन प्रयातेन पथापरिव्रजन समाचारल्लोक हिताय किन्न।
कृतज्ञतां तत्र तष्नुव सन्ततं दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ।।
जिन पथ गमन करता मुनीश्वर क्या नही जग हित किया।
सन्तत वनो मुनि कृत्यवित श्री चौथमल जो धन दिया ।।४८।।

जिनेन्द्र सिद्धान्त विवेचने रतः समस्त मेवागमयत् स्वजीवनम्।
इयं ममानृण्ययु पैत्वतो मति दिवाकरे चौथमले मुनीश्वरे ।।
जिन नय विवेचन में मुनि जीवन समस्त बिता दिया।
होने उऋण मुनि चौथमल से कृत्य मैने यह किया ।।४९।।

भवाटवी सन्तम सापहारिणं जगन्नुतम्मो क्ष पथ प्रचारिणम्।
विशुद्ध भावेन नयामि मानसे दिवाकरं चौथमलं मुनीश्वरम् ।।
गहन जग के ध्वान्त हरते मोक्ष पन्थ प्रचारते।
मानस विमल में चौथमल मुनि को सदा है मानते ।।५०।।

नमोऽस्तु तुभ्यं भुविपापहारिणे नमोऽस्तु तुभ्यं जनशर्मकारिणे।
नमोऽस्तु तुभ्यं सुखशान्ति दायिने, नमोऽस्तु तुभ्यं तपसो विधायिने ।।
तुमको नमन जगतापहारी सौख्यकारी नमन हो।
मुमको सुख शान्तिदायी तपसो विधायी नमन ।।५१।।

नमोऽस्तु तुभ्यं जिनधर्मधारिणे नमोऽस्तु तुभ्यं सकलाघनाशिने।
नमोऽस्तु तुभ्यं सकलार्द्धिदायिने नमोऽस्तु तुभ्यं सकलेष्टकारिणे ।।
तुमको नमन जिनधर्मधारी पापहारी नमन हो।
तुमको नमन सब ऋद्धिदायी इष्टकारी नमन हो ।।५२।।

कृपाकराक्षेण विलोक्य स्वं जनं तनोतुर्वृतिं जनतापहारिणीम्।
स्व सप्तभङ्गीनय प्राप्त सन्मति दिवाकरश्चौथमलो मुनीश्वरः ।।
कृपा दृष्टि प्रदान कर निजलोक सब दुख हरे।
निज सप्तभंगी नीति से मुनि चौथमल सन्मति करे ।।५३।।

प्रसादमासाद्य मुनेरनारतं विधीयेत येन नुति निधानतः।
सुखं स मुक्त्वेह महीतलेऽखिलं परत्रचावाप्स्यति सौख्य सम्पदम् ।।
पाकर कृपा मुनि की सतत जो रीतिपूर्वक प्रार्थना।
करतं सकल सुख भोग कर परलोक मे सुख सम्पदा ।।५४।।

मुनेः श्री चौथमल्लस्य पञ्च पञ्चाशदात्मिका।
घासीलालेन रचिता स्तुतिर्लोक हितावहा ।।
घासीलाल मुनि रचित ये पढे विनय जो कोई।
सकल सुखो को प्राप्त कर लोक हितावह होय ।।५५।। □□

महामनस्वी साधक संत मुनिश्री चौथमलजी

उपाध्याय कस्तूरचन्द महाराज

संत-सत्संग सोने मे सुगन्ध से कम नही है। इसकी महिमा अकथनीय कही गयी है। संत संयम की साक्षात् मूर्ति होते है। उनके साधना-साम्राज्य में पशु, पक्षी, पेड़, पौधे, मनुज सभी अभीत विचरण करते है। उनका सुखद संदेश मन, वचन और काया को प्रतिक्षण नयी रोशनी और नयी शक्ति प्रदान करता है। वस्तुतः संत-संस्कृति साधना, सेवा और समर्पण की संस्कृति है। इसी सस्कृति में आध्यात्मिकता का चरम और उत्कृष्ट विकास देखने को मिलता है; क्योंकि यही सस्कृति विश्व-संस्कृतियों के समन्वय का मूल आधार है। संत समन्वय, मैत्री और परस्पर बन्धुत्व के प्रतीक है। उनका परिवार अर्थात् सारी वसुधा; सारी धरती, सारा आकाश।

महामालव के मूर्द्धन्य संत श्री चौथमलजी महाराज इसी संत-संस्कृति के एक ज्योतिवाही संत थे, जिन्होने आत्मसाधना के साथ लोकोपकार को भी प्रेरित किया और दलितवर्ग की पीड़ा को समझा। उनके द्वारा अहिसा, करुणा और वात्सल्य की जो तीर्थयात्राएँ हुई उनकी कोई समानता आज उपलब्ध नही है। वे 'पराई पीर' जानते थे, व्यथा की वर्णमाला से परिचित थे, प्राणिमात्र की मंगलकामना उनका श्वासोच्छ्वास थी। बैठते-उठते, सोते-जागते उनके हृदय में एक ही बात रहती थी कि कोई दुःखी न हो, कोई कष्ट में न हो, सब निरापद हों, सब प्रसन्न हों, सब का कल्याण हो। वे असहायों के आश्रय थे; इसीलिए लोग उनके पास अपनी समस्याएँ लेकर आते थे, और एक रचनात्मक समाधान लेकर प्रसन्न चित्त लौटते थे। वे शान्ति और सुख की जीवन्त प्रतिमा थे।

कोटा का त्रिवेणी-संगम उनके जीवन का सब से उज्ज्वल प्रसंग है। वे चाहते थे सब एक हों, एक प्राण होकर सामाजिक और सास्कृतिक अभ्युत्थान की दिशा मे आगे बढे। इसीलिए उन्होने कभी कोई पद नही लिया और कभी कोई दल, संगठन या गुट नही बनाया। वे निर्गुट थे। सदाचार और परोपकार उनके जीवन के दो प्रमुख लक्ष्य थे। उनका सारा बल इन्ही दो पर लगा था। कोटा मे दिगम्बर और श्वेताम्बर साधुओं का जो शुभ संगम हुआ वह अविस्मरणीय है, ऐतिहासिक है। 'निर्ग्रन्थ-प्रवचन' उनकी इसी ऐक्य भावना का प्रतीक है। 'श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रवण संघ' की स्थापना उन्होंने एकता के उद्देश्य से ही की थी। वे चाहते थे व्यक्ति, समाज, देश, विश्व सब सुखी हों और सब एक-दूसरे की सहायता द्वारा विकास करे।

वे जीवन के सच्चे कलाकार थे। उन्होंने नगर-नगर और गाँव-गाँव मे विचरण किया और वहाँ की विकृतियों को समाहित किया। अहिसा की संजीवनी देकर मृतप्रायः मानवता को उन्होंने पुनरुज्जीवित किया। वे जैन-जैनेतर सब के बन्धु थे, अकारण, भूले-भटको के लिए सूर्य थे, अकारण; उनकी प्रवचन-सपदा हम सब की बहुमूल्य विरासत है, क्या हम ऐसे महामनीषी को कभी भूल पायेगे? □

एक संपूर्ण संत पुरुष

☐ उन्होंने बड़ी गंभीरता से कहा– 'पाँच सौ घर के सिवाय जो लोग यहाँ बसते है, हरिजन-आदिवासी से लेकर मेवाड़ के महाराणा तक, वे सब हमारे है।'

☐ उनके प्रति राजे-महाराजे, ठाकुर-जागीरदार, सेठ-साहुकार जितने अनुरक्त थे, उतने ही निरक्षर किसान, कलाल, खटीक, मोची, हरिजन आदि भी।

☐ **केवल मुनि**

'सहस्रेषु च पंडित' की सूक्ति के अनुसार हजार मे कही, कभी एक पंडित होता है; और ज्ञानी तो लाखों मे कोई एक विरला ही मिलता है; क्योकि ज्ञानी ज्ञान की जो लौ ज्योतित करता है, वह उसकी जीभ पर नही होती, जीवन में होती है और कुछ इस विलक्षणता से होती है कि लाख-लाख लोगों का जीवन भी एक अभिनव रोशनी से जगमगा उठता है। भगवान् महावीर के सिद्धान्तानुसार ज्ञानी अहिंसा की जीवन्त मूर्ति होता है। सस्कृत मे एक श्लोक है –

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्वं, क्षमा दया सर्वजनप्रियत्वं।
निर्लोभ दाता भयशोकहर्ता, ज्ञानी नराणां दश लक्षणानि ।।

उक्त श्लोक मे ज्ञानी के दस प्रतिनिधि लक्षण गिनाये गये है। ये वस्तुतः एक संपूर्ण संत पुरुष के लक्षण है। जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमलजी संपूर्ण संत पुरुष थे। वे ज्ञान के अथाह, अतल सिन्धु थे। मैं उनका शिष्य रहा हूँ। मैने उन्हे बहुत निकट से देखा है। मै जानता हूँ वे किस तरह प्रतिपल समाज के उत्थान मे समर्पित थे। वे दिवाकर थे, उन्होंने जहाँ भी, जिसमे भी, जैसा भी अंधियारा मिला, उससे युद्ध किया। अज्ञान का अंधियारा, रूढ़ियों का अंधेरा, दुर्व्यसनो का अंधेरा, छुआछूत और भेदभाव का अंधेरा — इन सारे अंधेरों से वे जूझे और उनके प्रवचन-सूर्य ने हजारों लोगों के जीवन मे रोशनी का खजाना खोला। वे परोपकारी पुरुष थे, उनका जीवन तिल-तिल आत्मोत्थान और समाजोदय में लगा हुआ था।

क्रोध उनमे कम ही देखने मे आया। उनके युग मे सांप्रदायिकता ने बड़ा वीभत्स रूप धारण कर लिया था। लोग अकारण ही एक दूसरे की निन्दा करते थे, और आपस में दंगा-फसाद करते थे। वात इस हद तक बढ़ी हुई थी कि लोग उनके गाँव मे आने मे भी एतराज करते थे; जैसे गाँव उनकी निज की जागीर हो; किन्तु दिवाकरजी ने बड़े शान्त और समभाव से इन गाँवों में विहार किया। उदयपुर का प्रसंग है। गुरुदेव वहाँ

पहुँचे तो लोगों ने कहा– 'यहाँ हमारे ५०० घर है, आप कहाँ जा रहे है ?' उन्होंने बड़ी गहराई से कहा– '५०० घर के सिवाय जो लोग यहाँ बसते है हरिजन-आदिवासी से लेकर मेवाड़ के महाराणा तक वे सब हमारे है ।' सर्प की तरह फन उठाये क्रोध का इतना शान्त उत्तर यदि कोई दे तो आप उसे क्रोधजयी कहेगे या नही ?

वैराग्य तो आपको विवाह से पहले ही हो गया था । वह उत्तरोत्तर समृद्ध होता गया। भरी तरुणाई मे रूपसि पत्नी की रेशम-सी कोमल राग-रज्जु को काटना क्या किसी साधारण पुरुष का काम है ? उनका सुहागरात न मनाना और पत्नी को जम्बूस्वामी की तरह संयम-मार्ग पर लाना, एक इन्द्रियजयी की ही पहचान है । संयमावस्था मे भी वे आत्मचिन्तन और स्वाध्याय मे ही व्यस्त रहते थे; निन्दा, विकथा और अनर्गल-व्यर्थ की बातो की ओर उनका लक्ष्य ही नही था । कोई कभी-कभार आया भी तो उससे स्वल्प वार्तालाप और जल्दी ही पूर्ण विराम । ऐसा नही था उनके साथ कि घटों व्यर्थ की बाते करते और अपना बहुमूल्य समय बर्वाद करते । साधु-मर्यादा के प्रति वे बड़े अप्रमत्त भाव से प्रतिपल चौकस रहते थे । क़दम-क़दम पर आत्मोदय ही उनका चरम लक्ष्य होता था ।

उन्होने रसना-सहित पाँचो इन्द्रियो पर विजय प्राप्त की थी । वे रात तीन बजे उठ जाते थे । सुखासन से वैठकर माला फिराते, चिन्तन करते, प्रतिक्रमण करते । लगभग तीन-चार घण्टे उनके इसी आसन मे व्यतीत होते थे । एक दिन मैने उनसे पूछा– 'गुरुदेव' आप इतनी जल्दी उठ जाते है तो कभी नीद का झोका तो आ ही जाता होगा ?' बोले– 'कभी नही ।' दिन मे भी, यदि पिछले कुछ समय की बात छोड़ दे तो, वे कभी सोते नही थे । ७४ वर्ष की आयु मे भी ३-४ घण्टे निरन्तर जप-ध्यान-चिन्तन-प्रतिक्रमण करना और नीद को एक पल भी अतिथि न होने देना आश्चर्यजनक है । ऐसा सुयोग, वस्तुत किसी आत्मयोगी को ही सुलभ होता है ।

क्षमा की तो वे जीती-जागती मूर्ति ही थे । उन्होने कभी किसी के प्रति वैर नही किया। कोई कितनी ही, कैसी ही निन्दा क्यो न करे, वे उस सबन्ध मे जानते भी हो फिर भी कोई द्वेष या दुर्भावना या प्रतिकार-भावना उनके प्रति नही रखते थे । जो भी मुनि उनसे मिलने आते थे उन सबसे वे हृदय खोलकर मिलते थे; जिनसे नही मिल पाते थे उनके प्रति कोई द्वेप जैसी बात नही थी । लोग कहते फला व्यक्ति वन्दन नही करता तो गुरुदेव एक बड़ी सटीक और सुन्दर बात कहा करते थे – 'उनके वन्दन करने से मुझे स्वर्ग मिलने-वाला नहीं और वन्दन नही करने से वह टलनेवाला नही । मेरा आत्मकल्याण मेरी अपनी करनी से ही होगा, किसी के वन्दन से नही ।' स्वर्णाक्षरो मे अकित करने योग्य सूक्ति है यह ।

दया के तो वे मानो अवतार ही थे । करुणासिन्धु गुरुदेव दया और उपकार के लिए इतने संकल्पित थे कि उन्हे अपनी वढ़ी हुई अवस्था का भी ख्याल नही रहता था । मदेरिया (राजस्थान) मे जेठ की भर दुपहर में जब लू चल रही थी, घास-फूस के छप्पर-

तले कुछ किसान-मजदूर और ग्रामवासी प्रवचन सुनने एकत्रित हुए। प्रवचन सुनना है-एकत्रितों की यह इच्छा जानते ही आप तैयार हो गये। यदि मुझे ऐसे समय कोई कहता तो मै धूप, धूल और लू देखकर मना कर देता; किन्तु गुरुदेव करुणासिन्धु थे, न कैसे कहते? उन्होंने बड़े मनोयोगपूर्वक व्याख्यान दिया। समय नही काटा। इधर-उधर की बातो से व्याख्यान पूरा नही किया। हम लोगो को भी उनके प्रवचन मे कुछ-न-कुछ नया मिल ही जाता था। व्याख्यान के बाद एक साधु ने प्रश्न किया – 'माटी और फूस की झोपड़ी के कारण आपकी चादर पर रेत और घास गिर गया है। आप दोपहर को प्रवचन न करते तो क्या था?' गुरुदेव बोले – 'एक व्यक्ति भी मांस, शराव, तम्बाकू, जुआ आदि छोड़ दे तो एक व्याख्यान में कितना लाभ मिल गया? कितने जीवों को अभय मिला? मेरे थोड़े से कष्ट में कितना उपकार!'

गुरुदेव सर्वजनप्रिय थे। जगद्वल्लभ थे। उनके प्रति राजे-महाराजे, ठाकुर-जागीरदार, साहूकार जितने अनुरक्त थे, उतने ही अपढ किसान, कलाल, खटीक, मोची, हरिजन आदि भी थे। सभी कहते, गुरुदेव की हम पर बड़ी कृपा है, बड़ी मेहरबानी है। हर आदमी यह समझता था कि गुरुदेव की उस पर बड़ी कृपा है। कई लोग कहा करते 'राणाजी के गुरु होकर भी उन्हें अभिमान नहीं'। उनके संपर्क मे आनेवाले ऐसे अनेक व्यक्ति थे, जो अनुभव करते थे कि 'मुझ पर गुरुदेव का अत्यधिक स्नेह है'।

पंजाब-केशरी पंडितरत्न श्री प्रेमचन्दजी महाराज ने अपना एक अनुभव सोजत-सम्मेलन के व्याख्यान मे सुनाया था। जब वे रतलाम का भव्य चातुर्मास संपन्न कर उदयपुर होते हुए राणावास के घाट से सीधे सादड़ी मारवाड़ होकर सोजत के लिए पधार रहे थे, तब उन्हे जिस रास्ते से जाना था वह कच्चा था, गाड़ी-गडार थी, सड़क नही थी, माइल-स्टोन भी नही थे। कहे दो कोस तो निकले तीन कोस, कहे चार कोस तो निकले छह कोस, ऐसा अनिश्चित था सब कुछ। आपने कहा– "एक गॉव से मैने दोपहर विहार किया। अनुमान था कि सूर्यास्त से पहले अगले गॉव मे पहुँच जाएँगे, किन्तु गॉव दूर निकला। सूर्यास्त निकट आ रहा था। पॉव जल्दी उठ रहे थे मंजिल तक पहुंचने के लिए उत्कण्ठित। ऐसे मे एक छोटी-सी पहाड़ी पर खड़ा आदिवासी भील मेरी ओर दौड़ा। मैने समझा यह भील मुझे आज अवश्य लूटेगा। सुन भी रखा था कि भील जगल मे लूट लेते है। उसे आज सच होते देखना था; फिर भी हम लोग आगे बढ़ते रहे। भील सामने आकर बोला– 'महाराज वन्दना'। पंजाव-केशरीजी बोले– "मै आश्चर्यचकित रह गया यह देख कि झोपड़ी मे रहनेवाला एक भील, जिसे जैन साधु की कोई पहचान नही हो सकती, इस तरह बड़े विनय-भाव से वन्दना कर रहा है। जब उससे पूछा तो बोला, 'महाराज मैं और किसी को नही जानता, चौथमलजी महाराज को जानता हूँ।' उस भील की उस वाणी को सुनकर उस महापुरुष के प्रति मेरा मस्तक श्रद्धा से झुक गया। मेरी श्रद्धा और प्रगाढ़ हो गयी। सोचने लगा– 'अहा, झोपड़ी से लेकर राजमहल तक उनकी वाणी गूंजती है, यह कभी सुना था; आज प्रत्यक्ष हो गया।' भील बोला– 'महाराज दिन

थोड़ा है । गाँव अभी काफी दूर है । आज आप मेरी झोपड़ी पावन करे । महाराज, मेरी झोपड़ी गंदी नही है । मैने मास-मदिरा-शिकार सब छोड़ दिया है । अब वह पवित्र है। आपके चरणों से वह और पवित्र हो जाएगी ।' मैंने कहा– 'भाई, तेरी झोपड़ी में इतना स्थान कहाँ, और फिर जैन साधु गृहस्थ की गृहस्थी के साथ कैसे रह सकते है।' भील ने कहा– ''महाराज, हम सब बाहर सो जाएँगे । आप झोपड़ी में रहना ।' उसकी इस अनन्य भक्ति से हृदय गद्‌गद हो गया; मैने कहा– 'अभी मंजिल पर पहुँचते है । तूने भक्तिभाव से रहने की प्रार्थना की, तुझे धन्यवाद । उन जैन दिवाकरजी महाराज को भी धन्यवाद है, जिन्होने तुम लोगों को यह सन्मार्ग बताया है ।

एक उदाहरण पं. हरिश्चन्द्रजी महाराज पंजाबी ने भी सुनाया था । उन्होने कहा– 'जब जोधपुर मे पंडितरत्न श्री शुक्लचन्दजी महाराज का चातुर्मास था, व्याख्यान-स्थल अलग था और ठहरने का स्थान अलग । व्याख्यान-स्थल पर कुछ मुनि पं. शुक्लचन्दजी के साथ जाते थे और अन्य मुनिगण ठहरने के स्थान पर भी रहते थे । व्याख्यान-समाप्ति के बाद कुछ भाई-बहिन मुनियो के दर्शन के लिए ठहरने के स्थान पर जाया करते थे । व्याख्यान के बाद प्रतिदिन एक बहिन सफेद साड़ी पहनकर आती थी और बड़े भक्तिभाव से तीन बार झुककर सभी मुनियो को नमन करती थी । एक दिन प. हरिश्चन्द्र मुनि ने पूछा– 'तुम व्याख्यान सुनने, दर्शन करने आती हो, श्रावकजी नही आते ।' इस पर पास खड़े थे श्री शिवनाथमल नाहटा ने कहा– 'महाराज, इनके पति नही है ।' 'क्यो, क्या हुआ ?' 'महाराज, यह पारियात (हिन्दू वेश्या) है । इनके पति नही होते और होते है तो अनेक । गुरुदेव जैन दिवाकरजी महाराज के व्याख्यान सुनने के बाद इस बहिन ने रंगीन वस्त्र त्याग दिये है । अब श्वेत साड़ी पहिनती है और ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करती है । इनकी जाति की अनेक बहिनो ने वेश्यागिरी छोड़ कर शादी कर ली है ।' यह सुनकर इस काया-पलट पर श्री हरिश्चन्द्र मुनि को बहुत आश्चर्य हुआ । उन्होने नासिक रोड पर जब यह मिलन हुआ तब गुरुदेव की प्रशस्ति करते हुए यह संस्मरण सुनाया । ऐसे अनेक उदाहरण है, जो गुरुदेव की महानता का जयघोष करते है । इन पर अलग से कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाश मे आना चाहिये ।

श्रमण के दशधर्मो मे निर्लोभता भी एक है, किन्तु यह गुण आज विकृत या शिथिल हो गया है । नवाव और राजाओ द्वारा सम्मान और भक्तिपूर्वक दिये हुए बहुमूल्य शाल और वस्त्रो को भी जिन्होने ठुकरा दिया, उनकी निर्लोभता का इससे बढकर और उदाहरण क्या हो सकता है ?

उन्हे यश और पदवी का कोई लोभ नही था । जब उनसे आचार्य-पद ग्रहण करने की प्रार्थना की गयी तब उन्होंने बड़ी निष्पक्ष भावना से कहा– "मेरे गुरुदेव ने मुझे मुनि की पदवी दी, यही बहुत है, मुझे भला अब और क्या चाहिये ।" ऐसे अनेक प्रसग उनके जीवन मे आये किन्तु वे अविचल बने रहे । उनकी मान्यता थी कि 'केवल वस्तु-दान ही दान नहीं

है, ज्ञान-दान भी दान है, बल्कि यही उत्कृष्ट दान है। सर्वोपरि त्याग है अहं का विसर्जन, अन्यों का सन्मान।' दान का यह भी एक श्रेष्ठ आयाम है।

ब्यावर में पाँच स्थानकवासी संप्रदायों ने एक संघ की स्थापना की थी। इनके प्रमुखों ने अपनी-अपनी पदवियाँ छोड़कर आचार्य की नियुक्ति की थी। जिन पाँच संप्रदायों का विलय हुआ था उनमें से तीन में पदवियाँ नही थी, दो में थी। दो संप्रदायों मे से भी इस संप्रदाय में पदवियाँ अधिक थी। अपने प्रतिनिधि के रूप मे उन्होने अपने प्रिय शिष्य उपाध्याय पंडितरत्न श्री प्यारचन्दजी महाराज को भेजते हुए अपना संदेश भेजा कि "पदवी एक ही आचार्य की रखना, अन्य आचार्य-पद नही रखना; और यह पदवी श्री आनन्दऋषिजी महाराज को देना। यदि अलग-अलग पदवियाँ दोगे तो त्याग अधूरा रहेगा; अतः त्याग सच्चा और वास्तविक करना।" श्रमण संघ की संघटना के बाद ब्यावर सम्मेलन संपन्न करके जब उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी महाराज लौटे तब गुरुदेव ने प्रसन्नता प्रकट की। इस अवसर पर एक साधु ने उनसे कहा— "गुरुदेव! अपने संप्रदाय की सब पदवियों के त्याग से चार तो यथास्थान बने रहे, हानि अपनी ही हुई।" उत्तर में गुरुदेव ने कहा—"अरे मूढ़! त्याग का भविष्य अतीव उज्ज्वल है। आज का यह बीज कल वटवृक्ष का रूप ग्रहण करेगा। आज का यह बिन्दु कल सिन्धु बनेगा। दृष्टि व्यापक और उदार रखना चाहिये। तेरा-मेरा क्या समष्टि से बड़ा होता है? व्यक्ति से समाज बड़ा होता है, और समाज से संघ। संघ के लिए सर्वस्व होमोगे तो कोई परिणाम निकलेगा। पदवी तो इसके आगे बहुत नगण्य है।" मैंने गुरुदेव की उस व्यापक दृष्टि का उस दिन भी आदर किया था, और मै 'वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ' की स्थापना पर आनन्द-विभोर हुआ था।

गुरुदेव की सब से बड़ी विशेषता थी—निर्भीकता। वे कहा करते थे—"जो तन-मन से शुद्ध है, वह सदैव निर्भय है; और वही औरों को भी भयमुक्त कर सकता है"। वे सदैव व्यसन, पापाचरण आदि छुड़वाकर निर्भयता का वरदान देते थे। मुझे हमेशा इस बात का अफसोस रहा कि ऐसे महान् धर्मप्रचारक और विश्वमित्र से लोग अकारण ही बैरभाव रखते थे; किन्तु मैने प्रतिपल अनुभव किया कि उनका हृदय पूरी तरह शान्त और निश्चल था इसीलिए वे प्रतिक्षण अभीत बने रहे। एक दिन उन्हे चिन्तित देख मैने विनयपूर्वक पूछा—'गुरुदेव, आपको चिन्ता।' उन्होने कहा— 'मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं है। उस ओर से मैं निश्चिंत हूँ। चिन्ता समाज और संघ की ही मुझे है।' मैने पुनः निवेदन किया—'आपने तो बहुतों का उपकार किया है। कई पथभ्रष्टो को उज्ज्वल राह दी है, कइयों को सुधारा है; समाज और संघ के उत्थान के लिए आपने अथक प्रयत्न किया है। आपको तो प्रसन्न और निश्चिन्त रहना चाहिये। आपकी यह प्रसन्नता अन्यों को उद्बुद्ध करेगी, उनका छल-कपट धोयेगी, उन्हे नयी ऊँचाइयाँ देगी।"

मैंने प्रतिपल अनुभव किया कि उनका चारित्र उनकी वाणी थी और वाणी उनका चारित्र था। वे वही बोलते थे जो उनसे होता था, और वही करते थे जिसे वे कह सकते थे।

(शेष पृष्ठ ११२ पर)

'सबको अपना मानो, अपने जैसा मानो'

अगरचन्द नाहटा

स्व. पूज्य चौथमलजी के सपर्क मे आने–रहने का मुझे विशेष अवसर नही मिला; क्योकि बीकानेर-क्षेत्र मे जवाहरलालजी के सम्प्रदाय का ही विशेष प्रभाव है। मुझे याद पड़ता है कि संभवत· एक बार वे यहाँ पधारे थे और रांगड़ी चौक के उनके प्रवचन मे मै गया था। उनके एक ग्रन्थ ने मुझे बहुत प्रभावित किया था – 'निर्ग्रन्थ प्रवचन'। इसमे उन्होंने भगवान् महावीर की वाणी का उत्कृष्ट सकलन किया है। यह चुना हुआ और विवेचनात्मक है। यह अपनी व्यापक उपयोगिता के कारण लोकप्रिय भी हुआ। इसके अतिरिक्त उनके अन्य अनेक ग्रन्थ है, जिनमें चरित्र-काव्य अधिक है। 'दिवाकर दिव्य ज्योति' शीर्षक से उनके प्रवचनों के लगभग २० भाग ब्यावर से प्रकाशित हुए है, जिनका सपादन पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल ने किया है।

जैन मुनियों का संयत और सदाचारपूर्ण जीवन प्राय. सभी को प्रभावित करता है। वे अहिसा आदि का इतनी सूक्ष्मता और सावधानी से पालन करते है कि लोगो को अचम्भा होता है। उनके व्रत-नियम भी कठोर और उदात्त होते है; इसीलिए जब भी वे बोलते है उनकी वक्तृता मे वाक्पटुता की अपेक्षा जीवन ही अधिक छलकता है। एक ओर उनका जीवन को उठानेवाला नैतिक संदेश और दूसरी ओर आदर्श अनुकरणीय जीवन हृदय पर अजब-गजव प्रभाव डालते है। दिवाकरजी की जीवनी पढने से भी उनकी प्रवचन-शक्ति का बोध होता है। मास-मदिरा जैसे दुर्व्यसनो मे फंसे सैकड़ों-हजारो लोगो ने उनकी जादू-भरी वाणी से प्रभावित होकर सदा के लिए उन्हे छोड़ दिया। यह कोई साधारण बात नही है। जैन यदि उनकी ओर आकृष्ट होते है तो इतना आश्चर्य नही होता, किन्तु जैनेतर जनसाधारण उनके चुम्बकीय आकर्षण से बिधकर उनकी बात सुनता है, तो आश्चर्य होता है। अनेक राजे-महाराजे उनके चरणो मे नत-मस्तक हुए और उन्होंने अपनी रियासतो मे जीव-हिसा-निषेध के आदेश जारी किये। उनकी करुणा बड़ी पतितपावनी थी। हजारो-लाखो पशु-पक्षियो को उनके प्रवचनो की प्रेरणा से जो जीवन-दान मिला वह अविस्मरणीय है।

जीव सभी जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता। सभी सुख चाहते है, दुख न कोई चाहता है न कोई उसकी अगवानी करता है। इस दृष्टि से भगवान् महावीर की वाणी लोक-कल्याणकारी है। इस वाणी का जितना अधिक प्रचार किया जा सके, किया जाना चाहिये। स्व. मुनिश्री चौथमलजी का सपूर्ण जीवन इसी सुकृत्य पर समर्पित था। 'सबको अपना मानो, अपने जैसा मानो' जैन दिवाकरजी के लिए मात्र उपदेश नही था, यह उनका जीवन-लक्ष्य था। उन्होंने प्राणिमात्र की जो सेवा की है, उसे कभी भुलाया नही जा सकेगा। हम चिरकाल तक उनके जीवन से, जो स्वयं ही एक दिव्य सदेश है, प्रेरणा लेते रहेगे। □

एक देवदूत की भूमिका में

हस्तीमल झेलावत

मुनिश्री चौथमलजी महाराज का एक धर्मप्रचारक के रूप में बहुत ऊँचा स्थान है। आपकी वाणी में अनुपम बल था। हजार-हजार श्रोता मन्त्रमुग्ध, मौन-शान्त बैठे रहते थे। चारों ओर सन्नाटा छा जाता था और अन्त मे प्रवचन-सभाएँ गगनभेदी जयघोषों से गूँज उठती थीं। मुनिश्री के इस प्रभाव का कारण बहुत स्पष्ट था। वे जैन तत्त्व-दर्शन के असाधारण वेत्ता थे और उन्होने जैनेतर धर्म और दर्शनो का भी गहन अध्ययन किया था। उनकी भाषा सरल-सुगम थी, और वे अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, जैन-अजैन का कोई भेद नहीं करते थे। उनके प्रभाव का क्षेत्र विस्तृत था। जैन मुनियों की शास्त्रोक्त मर्यादा के अनुरूप पैदल घूमते हुए उन्होंने भारत की सुदूर यात्राएँ की। मेवाड़-मारवाड़, मालवा तो उनकी विहार-भूमि बने ही; इनके अलावा वे दिल्ली, आगरा, कानपुर, पूना, अहमदाबाद, लखनऊ आदि सघन आबादीवाले बड़े शहरो मे भी गये और वहाँ की जनता अपनी अमृतोपम वाणी से उपकृत किया। आपके मधुर, स्नेहल और प्रसन्न व्यक्तित्व ने अहिसा और जीवदया के प्रसार मे बहुत सहायता की।

जैन दिवाकरजी ने मानव-जाति के नैतिक और सास्कृतिक उत्थान के लिए एक देवदूत की भूमिका निभायी। समकालीन राणे-महाराणे, राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार सबने स्वयं को उनका कृतज्ञ माना और उनकी वाणी से प्रभावित होकर वह किया जिसकी ये कल्पना भी नही कर सकते थे। शराब छोड़ी, मांस-भक्षण का त्याग किया, शिकार खेलना बन्द किया, और एक विलासी जीवन से हटकर सदाचारपूर्ण जीवन की ओर अग्रसर हुए। यह काम किसी एक वर्ग ने नही किया। चमार, खटीक, वेश्यावर्ग भी उनसे प्रभावित हुए और अनेक सुखद जीवन की ओर मुड़ गये। अनेक उपेक्षित जातियों ने भांग-चरस, गांजा-तम्बाखू, मांस-मदिरा जिन्दगी-भर के लिए छोड़ दिये। उनकी करुणा और वत्सलता की परिधि इतनी ही नही थी, वह व्यापक थी; उसने न केवल मनुष्य को अधकार से प्रकाश की ओर मोड़ा वरन् उन लाख-लाख मूक पशुओ की जानें भी बचायी जो शिकार, बलि और मास-भक्षण के दुर्व्यसन के कारण मारे जाते थे। कई रियासतों और जागीरो के निषेधादेश इसके प्रमाण है।

मुनिश्री आरंभ से ही मौलिक वक्तृत्व के धनी थे। आपने बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय, हिंसा, मांसाहार, मदिरापान, शिकार, अनैतिकता—जैसी कुप्रथाओं और दुर्व्यसनो पर तो प्रभावशाली प्रवचन दिये ही; अहिंसा, कर्त्तव्य-पालन, गृहस्थ-जीवन, दर्शन, सस्कृति इत्यादि पर भी गवेषणापूर्ण विवेचनाएँ प्रस्तुत की। आपके सार्वजनिक प्रवचन इतने धर्मनिरपेक्ष और मानवतावादी होते थे कि उनमें बिना किसी भेदभाव के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी सम्मिलित होते थे। जैन साहित्य के साथ आपको कुरान शरीफ, बाइबल, गीता इत्यादि का भी गहन अध्ययन था अतः सभी विचारधाराओं के और सभी धर्मो के व्यक्ति आपके व्यक्तित्व और ज्ञान से प्रभावित होते थे। सक्षेप में, वे वाणी और आचरण के अभूतपूर्व संगम थे, कथनी-करनी के मूर्तिमन्त तीर्थ। □

प्रवचन-मेघ, जीवन-धरती

ईश्वर मुनि

जेठ-आषाढ के महीनों मे भूमण्डल गर्मी से संतप्त रहता है। सब ओर गरमागरम हवाएँ झुलसती है। कृषक भीषण कष्ट सहकर, पसीने से तर-बतर अपने खेतों की सफाई करता है, मुस्कराता है और उल्लास से भरा रहता है। उसकी इस सहिष्णुता का एक ही मर्म है, आकाश मे सजल-कजरारे मेघो का घिरने लगना। वह झूम उठता है, उसका मन-मयूर नाच उठता है, और सारा संताप अन्तहीन उल्लास-आह्लाद में बदल जाता है।

मेघ सजल होते है, धरती को सीचते है, उसे सर्वर-सरस बनाते है। बादल और धरती के रिश्ते कितने प्यारे है। पृथ्वी बारम्बार सूखती है, उसमे दरारें पड़ जाती हैं; और वादल हर बार पूरी उदारता से बरसते है, उसे हराभरा बनाते है, और उसे जोड़ देते हैं।

यह रूपक मानव-जीवन पर भी लागू हो सकता है। जीवन धरती है, संत पुरुष सजल मेघ है; हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, कपट, अब्रह्मचर्य, परिग्रह इसे सुखाते है, इसमें दरार डालते है, और संतों की वाणी का अमृत बरस कर इसे सरस, समन्वित और करुणार्द्र बनाती है। वह सारे भेद पाट देती है, और जीवन को नरक नही बनने देती।

ऐसे ही परम संत पुरुष हुए मुनिश्री चौथमलजी जिन्होने बादल की भूमिका मे बने रहकर अपनी वाणी से इस अभिशप्त धरती को सीचा, अभिषिक्त किया; पतितों, उपेक्षितों को उदारतापूर्वक गले लगाया, और एक नयी उमग और नयी ज्योति से परिपूर्ण कर दिया। सच, वे वन्दनीय है, हम उनकी वन्दना करते है। □

प्रवचन-मौक्तिक

'असत्य के लिए अनन्त-अनन्त बार मरने पर भी कोई सुफल नहीं हुआ, अगर एक बार सत्य के लिए मरूँगा तो सदा के लिए अमर हो जाऊँगा।

'जिस आत्मा में मलिनता है उसे परमात्मा नही माना जा सकता। राग, द्वेष और मोह से प्रत्येक संसारी आत्मा युक्त है। इन दोषों से पिण्ड छुड़ाने के लिए रागी-द्वेषी देव की उपासना करने से कोई लाभ नही है। आत्मा का शाश्वत कल्याण तो वीतराग परमात्मा की आराधना से ही संभव है।

'जो रुपया-पैसा, सोना-चाँदी आदि अचेतन पदार्थो पर और पुत्र-कलत्र, मित्र-शिष्य आदि सचेतन पदार्थो पर ममता न रखता हो, जो सबको अपना कुटुम्बी और किसी को भी अपना आत्मीय न समझे, वही गुरु हो सकता है।

'अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। अज्ञान को हटाने के लिए ज्ञानीजनों की उपासना करनी चाहिये, ज्ञान के प्रति भक्ति का भाव होना चाहिये, ज्ञानवानों की संगति करनी चाहिये।

—मुनि चौथमल

जैसी करनी, वैसी भरनी

□ श्रीमती गिरिजा 'सुधा'

माधू खटीक आज फिर बुरी तरह से ठर्रा पीकर पत्नी पर हाथ उठा वैठा था। गालियों का प्रवाह वदस्तूर जारी था। उस बेचारी ने आज सिर्फ यही कहा था पड़ौसिन से कि "इन अनबोले जीवों की हाय हमारा सुख-चैन छीनकर ही मानेगी। कितना कमाते है ये पर पाप की लछमी में बरकत कहाँ ? तभी घर-खेंच मोची के मोची है हम।"

पाप की लक्ष्मी की बात सुनते ही माधू के तन-बदन मे आग लग गयी। वह चीख उठा घरवाली की पीठ पर दो चार मुक्के जमाकर – "···बड़ी पुण्यात्मा बनी फिरती है। अरे खटीकण वकरों का ब्योपार नही करेंगे तो क्य। गाजर-मूली बेचकर दिन काटेंगे हम अपने। खटीक वंश का नाम डुबोऊँगा क्या मैं माधो खटीक !" ···और आग्नेय नेत्रों से उसे घूरता मूंछों पर बल देता पीड़ा से कराहती छोड़ वह वाहर चल दिया।

पत्नी उसकी सात पीढ़ियों को कोसती रही। थोड़ी देर बाद वह वापिस आया और बोला – "मै बकरों को बेचने ले जा रहा हूँ। अभी तो वलि चढ़ाने वाले ऊपर-तरी पड़ रहे है। अच्छे दाम मिलने की उम्मीद है। दो तो बेच ही आता हूँ आज।"

आत्म व्यथा से कराहती पत्नी ने कुछ भी नहीं कहा और वह उसी क्षण बाहर हो गया। बकरों को बाड़े से लेकर वह आगरा के एक कस्बे की ओर चल दिया। चलते-चलते दोपहर हो गयी तो उसने बकरों को एक छायादार जगह में बैठा दिया और खुद भी सुस्ताने की गरज से एक पेड़ के पास जा टिका।

उधर आगरा की ओर से जैन सन्त चौथमलजी महाराज अपनी मण्डली के साथ कदम बढ़ा रहे थे। उन्होंने उसे सोते और पास में बकरों को चरते देखा तो उनके मन मे अनायास ही दया उमड़ आयी। उन्होंने मन-ही-मन उस कसाई को आज सही रास्ता वतलाने का निर्णय किया और आप भी वही वृक्षों की छाया मे विश्राम करने लगे। जैसा कि स्वाभाविक था, कुछ ही देर बाद माधू नींद से जागा और बकरे लेकर चलने लगा।

तभी करुणामूर्ति चौथमलजी महाराज ने उससे पूछा–"क्यों भैया, इन्हे कही वेचने ले जा रहे हो क्या?"

"बेचूंगा नही तो खाऊँगा क्या?" वह एक दम रुखाई से बोला और चलने की तैयारी करने लगा। महाराजश्री ने अपनी मधुर वाणी में उसको समझाते हुए कहा– "भाई, तू यह पाप कर्म आखिर किसलिए करता है? जीवन-निर्वाह के तो छोटे-वड़े अनेक साधन मिल सकते है। तुझे यह कहावत पता नही है क्या—"जैसी करणी वैसी भरणी?" अरे, इस तरह मूक पशुओं की हिंसा करेगा तो उनकी हाय आखिर किस पर पड़ेगी ? दूसरों को दुःख देकर संसार में आज तक कौन सुखी हुआ है?

अब तुम यह सब प.प भी कर रहे हो और सुखी भी नही हो; हो क्या? देखो न तो शरीर पर अच्छे कपड़े है, न बढ़िया खाना-पीना मयस्सर है। फिर ऐसी पाप की कमाई के पीछे पड़े रहने मे क्या सार है भैया? सिर्फ पेट भरने के लिए क्यों पाप की गठरी बाँध रहे हो; बोलो बांध रहे हो या नही?"

"महात्माजी! मै आपके सामने जरा भी झूठ नही बोलूंगा! पर यह बात आपने सच ही कही है कि 'जैसी करनी, वैसी भरनी'। मै सुखी जरा भी नही हूँ। आमदनी भी भरपूर है, वैसे, पर उसमे बरकत जरा नही है।" माधू ने अपनी बात झिझकते-झिझकते भी कह ही डाली।

महाराजश्री ने तभी अपना उपदेश आगे बरकरार रखते हुए कहा—"भाई, अब तुम समझ गये हो कि सुखी नही हो, इस धन्धे की कमाई मे बरकत भी नही है फिर इस धन्धे को छोड़ क्यों नही देते? तुम्हे ध्यान है क्या कि सवाई माधोपुर के खटीकों ने ऐसा जघन्य पाप करना छोड़ दिया है। वे अब दूसरे धन्धों मे लगे है और ठाठ से अपनी रोटी कमा-खा रहे है, उनके घरो में आनन्द-ही-आनन्द है।"

माधू खटीक को यह मालूम था, अत वह बोला—"जी हाँ महात्माजी! मुझे पता है कि वे दूसरे धन्धे मे लग गये है। मै भी इस धंधे से पिण्ड छुड़ाना चाहता हूँ पर।"

"पर! क्या?"—उन्होने पूछा।

"बात यह है गुरु महाराज कि मै कोई धनवान आदमी तो हूँ नही, गरीब हूँ, जैसे-तैसे पेट पाल रहा हूँ। मेरे पास बत्तीस बकरे है। यदि ये बिक जाएँ तो इनकी पूँजी से मैं कोई-न-कोई छोटा-बड़ा धन्धा शुरू कर दूंगा। आप मेरा यकीन कीजिये प्रभो! मै कभी भी अपने प्रण से नही टलूंगा। पापी पेट भरने के लिए मै किसी जीव को जरा भी नही सताऊँगा।"

महाराजश्री ने श्रावको से कह कर उसके बकरों के दाम दिलवा दिये। माधू खटीक का जीवन उस दिन जो बदला तो उसकी सारी आस्थाएँ ही बदल गयी। जिन्दगी की रौनक बदल गयी। वह महाराजश्री के चरणो मे गिर कर अपने कुकृत्यो के लिए क्षमा-याचना करता अश्रु-बिन्दुओ से उनके चरण कमल प्रक्षालित कर रहा था।

हिंसा पर अहिसा की इस विजय का सारे शिष्य एवं श्रावक-समुदाय पर बड़ा व्यापक प्रभाव हुआ। कोई गुनगुना उठा तभी—

संगः संता किं न मंगल मातनोति

(सन्तो की सगति क्या-क्या मंगल नही करती?)

माधू घर आया तो उसका आचरण बदला हुआ था। उसने एक छोटी-सी दुकान लगाकर पाप की कमाई से छुटकारा पाकर घर मे बरकत करने वाली खरे पसीने की कमाई लाने की राह तलाश ली थी। उस राह पर बढ गया वह। अब उसकी पत्नी उस पर नाराज नही रहती। बदलती आस्थाओं के साथ वह उसकी सच्ची जीवन-संगिनी बन गयी है; हर पल प्रतिक्षण हीर-पीर की भागीदार। ☐

'क्या चौथमलजी महाराज पधारे हैं ?'

उनके उपदेशों का प्रभाव था कि हज़ारो राजकर्मचारियों ने रिश्वत लेने का त्याग किया। हजारों ने दारू-मांस छोड़ा। व्यापारियों ने मिलावट न करने की और पूरा माप-तौल रखने की प्रतिज्ञाएँ ली। वेश्याओं ने अपने घृणित धन्धे छोड़े। कठोर-से-कठोर दिलवाले लोग भी उनके जादू-भरे वचनो से मोम की तरह पिघल जाते थे।

☐ **रिखबराज कर्णावट**

मेरे गाँव भोपालगढ़ की बात है। लगभग पचास वर्ष पहले जब मै बच्चा था प्रसिद्ध वक्ता चौथमलजी महाराज पधारे। मुझे याद है सारा-का-सारा गॉव महाराजश्री के प्रवचन सुनने उमड़ पड़ता था। एक छोटे से गॉव मे हजारों स्त्री-पुरुषों का अपना काम-धन्धा छोड़कर एक जैन मुनि का प्रवचन सुनने आ जाना एक असाधारण घटना थी। सैकड़ो अजैन भाई-बहिन अपने को जैन व महाराज के शिष्य कहलाने मे गौरव अनुभव करने लगे थे। महाराजश्री की प्रवचन-सभा मे गॉव के जागीरदार से लेकर गॉव के हरिजन बन्धु तक उपस्थित रहते थे। कुरान की आयतें सुनकर मुसलमान भाई धर्म का मर्म समझने मे प्रसन्नता अनुभव करते थे। समस्त ग्रामवासियो का इस तरह का भावात्मक एकीकरण हो जाने का कारण महाराजश्री के प्रति सबकी समान श्रद्धा थी। अनेक वर्षो तक उनका प्रभाव बना रहा। जब कभी ग्रामवासी जैन लोगों को मुनियों के स्वागतार्थ जाते हुए भारी संख्या में देखते तो बड़ी श्रद्धा-भावना से पूछते, "काई चौथमलजी बापजी पधारिया ?" (क्या चौथमलजी महाराज पधारे है ?)। इस प्रकार का अमिट प्रभाव प्रसिद्ध वक्ताजी ने अपने प्रवचनों से सर्वत्र पैदा किया था।

जोधपुर मे महाराजश्री के दो चातुर्मास हुए। दूसरे चातुर्मास मे मैं जोधपुर रहने लगा था। महाराजश्री के परिचय मे भी आया। मुझ-जैसे साधारण व्यक्ति को भी महाराजश्री ने, जो स्नेह प्रदान किया वह मेरे लिए अविस्मरणीय है। जोधपुर शहर में भी ऐसा वातावरण था जैसे सारा शहर महाराजश्री का भक्त बन गया हो। विशाल व्याख्यान-स्थल पर भी लोगों को बैठने की जगह मुश्किल से मिल पाती। हज़ारों नर-नारी, जिसमें सभी जातियों और सभी वर्गो के लोग होते थे, महाराजश्री का उपदेश सुनने बिला नागा आते थे। किसान, मजदूर और हरिजन भी इतना ही रस लेते थे जितना बुद्धिजीवी, सरकारी अहलकार एवं व्यापारी। महाराजश्री की प्रवचन-शैली इतनी आकर्षक एवं जनप्रिय थी कि उनके उपदेश का एक-एक शब्द बड़ी तन्मयता से

लोग सुनते थे। उनके उपदेश का प्रभाव था कि हजारो राजकर्मचारियों ने रिश्वत लेने का त्याग किया। हजारो ने दारू-मांस छोड़ा। व्यापारियो ने मिलावट न करने की व पूरा माप-तौल रखने की प्रतिज्ञाएँ ली। वेश्याओ ने अपने घृणित धन्धे छोड़े। कठोर-से-कठोर दिलवाले लोग भी उनके जादूभरे वचनो से मोम की तरह पिघल जाते थे।

समाज-उत्थान के बड़े-बड़े काम भी उनके उपदेशों से हुए। अनेक विद्यालयो की स्थापना हुई। वात्सल्य-फण्ड स्थापित हुए। अनेक अगते कायम हुए। जोधपुर मे स. १९८४ से पर्युषण के दिनो मे नौ दिनों तक सारे व्यापारियों ने अपना काम-काज बन्द रखकर धर्म-ध्यान के लिए मुक्त समय रखने का निर्णय लिया गया। यह निर्णय आज तक भी कायम है। सभी सम्प्रदायो के लोग इस निर्णय का पालन करते है।

प्रसिद्ध वक्ता चौथमलजी महाराज के उपकारों की गणना करना कठिन हैं। मारवाड़, मेवाड, मालवा मे किये गये उनके उपकारो के उल्लेख से कई ग्रन्थ भरे पड़े हैं। मैंने तो अपने गाँव भोपालगढ तथा अब निवास-स्थान जोधपुर के स्वल्प सस्मरणो का उल्लेख किया है। स्वाध्यायी के नाते उनके साहित्य को भी पढा है। व्याख्यानों मे सुनायी जानेवाली 'चौपियों' मे उनके द्वारा रचित 'चौपिये' अक्सर सुनायी जाती है। उनके द्वारा रचित भजन, समाज-सुधार के गायन भी सबसे अधिक है। किसी भी क्षेत्र को उन्होंने अछूता नही छोड़ा। गहन आध्यात्मिक विषयों पर अपनी लेखनी चलायी तो ऐतिहासिक तथ्यों से ओतप्रोत कथानक गद्य-पद्य भी लिखे।

वास्तव में जैन दिवाकरजी एक युग-पुरुष थे। उन्होने जाति-पाँति के बन्धनों को तोड़ा, अस्पृश्यता का निवारण किया, व्यसन एवं बुराई मे पड़े लोगों को निर्व्यसनी बनाया। शुद्ध समाज के निर्माण मे उनका अद्भुत योगदान रहा। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व कभी भुलाया नही जा सकता। □

(एक सपूर्ण संत पुरुष : पृष्ठ १०५ का शेष)

कथनी और करनी का ऐसा विलक्षण समायोजन अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी वाणी में एक विशिष्ट मन्त्रमुग्धता थी। कैसा भी हताश-निराश व्यक्ति उनके निकट पहुँचता, प्रसन्न चित्त लौटता। 'दया पालो' सुनते ही कैसा भी उदास हृदय खिल उठता। उसे लगता जैसे कोई सूरज उग रहा है और उसका हृदय-कमल खिल उठा है, सारी अँधियारी मिट रही है, और उजयारी उसका द्वार खटखटा रही है। कई बार मैं यह सोचता कि फलाँ आदमी आया, गुरुदेव ने कोई बात न की, न पूछी और कितना प्रसन्न है!!! जैसे उसकी प्रसन्नता के सारे बन्द द्वार अचानक ही खुल गये हैं। ऐसी विलक्षण शक्ति और मर्यादा के धनी थे जैन दिवाकर महाराज। उस त्यागमूर्ति को मेरे शत-शत, सहस्र-सहस्र प्रणाम! □

जैनधर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति

अध्यात्म-रहस्यों की खोज

"अध्यात्म का एक बहुत बड़ा रहस्य जो अध्यात्म के सूत्रों से उजागर हुआ है, वह है—राग का क्षण, द्वेष का क्षण हिंसा है; और अ-राग का क्षण, अ-द्वेष का क्षण अहिंसा है।

"अध्यात्म का एक महत्त्वपूर्ण रहस्य यह भी है कि किसी के लिए कोई जिम्मेवार नहीं है। सारी घटनाओं के लिए जो अंतिम उत्तरदायी है, वह अपनी आत्मा है, अपना अध्यवसाय है।

□ मुनि नथमल

हम किसी व्यक्ति के साथ बीस वर्ष जी लेते है, पर उसे पहचान नही पाते। दूर के व्यक्ति को पहचानना कुछ आसान होता है, किन्तु जिस व्यक्ति के पास रहते है, उस व्यक्ति का पता लगाना, उसे जान पाना बहुत कठिन होता है।

अध्यात्म का विषय इतना निकट, इतना अभिन्न है, इसीलिए यह रहस्य बना हुआ है, किन्तु इस रहस्य का उद्घाटन किये बिना हमारी कोई गति भी नही है। आज तक दुनिया मे जितना विकास हुआ है वह रहस्यों के उद्घाटन के द्वारा ही हुआ है। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में भौतिक वैज्ञानिकों ने रहस्यों का उद्घाटन किया और आज वे अणु-विस्फोट की भूमिका तक पहुँच गये। मानसिक जगत् में मनोवैज्ञानिको ने बहुत सारे रहस्यो का उद्घाटन किया और वे अवचेतन मन की भूमिका तक पहुँच गये। अन्य किसी भी क्षेत्र में जब रहस्यों का उद्घाटन हुआ तब शक्ति का स्रोत उनके हाथों में आ गया। रहस्यों का उद्घाटन किये बिना शक्ति का स्रोत उपलब्ध नही होता; और शक्ति का स्रोत उपलब्ध हुए बिना संसार का विकास हो नही सकता। आज का सारा विकास, भौतिक जगत् का सारा विकास बिजली और ईधनों पर निर्भर है। पेट्रोल की एक समस्या उत्पन्न होती है और सारे राष्ट्र डगमगा जाते है, चिन्तामग्न हो जाते है। उनके सारे शक्ति-स्रोत सूखने लग जाते है। आप कल्पना करे कि यदि आज विश्व मे पेट्रोल न हो, बिजली न हो, आण्विक ईधन न हो तो क्या यह विकास टिक सकता है? कभी नहीं। यह सब कुछ बिजली के आधार पर चल रहा है। हम इस बात को न भूलें कि हमारी शक्ति के विकास का एक स्रोत बिजली है। जैसे वर्तमान का सारा विकास बिजली पर निर्भर है, वैसे ही अध्यात्म-शक्ति का विकास भी बिजली पर निर्भर है। यह अध्यात्म का रहस्य है।

हमारा शरीर विद्युत् का शरीर है। मुझे इसकी बहुत चर्चा करने की जरूरत नही होगी। जैन दर्शन को जानने वाला भलीभाँति जानता है कि हमारी सारी अभिव्यक्तियाँ तैजस शरीर के माध्यम से होती है। यदि तैजस शरीर न हो तो शरीर का संचालन नही हो सकता। कोई बोल नही सकता, कोई अंगुली भी नही हिला सकता, कोई श्वास नही ले सकता, कोई खा नही सकता, कोई खाने को पचा नही सकता। हमारी सारी ऊर्जा, सारी शक्ति जो प्रगट होती है, वह तैजस शरीर के द्वारा ही होती है। यह सारा विद्युत्-मण्डल, यह विद्युत् का शरीर, यह तैजस शरीर — यह एक द्वार बनता है शक्ति के अवतरण का और अध्यात्म के निकट तक पहुँचने का। तैजस शरीर के द्वारा हम ऐसी शक्तियाँ उपलब्ध करते है जो वर्तमान विश्व के लिए भी आश्चर्यकारक हो सकती है। इन्ही शक्तियों को प्राचीन साहित्य में 'लब्धि' कहा गया है। इन्हे 'योगजविभूति' भी कहा गया है। ये लब्धियाँ, ऋद्धियाँ, योगज विभूतियाँ तैजस शरीर के माध्यम से प्राप्त होती है।

जैन आगम प्रज्ञापना मे दो प्रकार के मनुष्यों का वर्णन प्राप्त है — ऋद्धि-प्राप्त मनुष्य और अऋद्धि-प्राप्त मनुष्य। जिस मनुष्य को ऋद्धियाँ प्राप्त है, विशेष शक्तियाँ उपलब्ध है वह ऋद्धि-प्राप्त मनुष्य है। उसकी शक्तियाँ सचमुच विस्मयकारी होती है।

अध्यात्म की चर्चा करते समय मुझे एक भेद-रेखा भी खीचनी होगी कि हम किसे बाह्य माने और किसे अध्यात्म। प्राचीन आचार्यो ने एक भेद-रेखा खीची है। भगवान् महावीर ने कहा — 'अध्यात्म को जानने वाला बाह्य को जानता है और बाह्य को जानने वाला अध्यात्म को जानता है'। इसका तात्पर्य है कि हमारे सामने दो स्थितियाँ स्पष्ट है — एक है बाह्य जगत् की और एक है अध्यात्म जगत् की। एक है हमारे बाहर का संसार और एक है हमारे भीतर का संसार। बाहर के संसार का नाम है — समाज और भीतर के ससार का नाम है — व्यक्ति। व्यक्ति और समाज — ये दो हमारे जीवन के पहलू है। हम जब-जब बाह्य जगत् से जुड़ते है, इसका तात्पर्य है कि हम दूसरे से जुड़ते है। जहाँ दूसरे के साथ हमारा सम्बन्ध स्थापित होता है, वहाँ समाज बनता है। व्यक्ति समाज बन जाता है। जहाँ हम अकेले रहे, किसी के साथ हम जुड़े नही, अकेलापन हमारा सुरक्षित रहा, वहाँ हम व्यक्ति ही रहे; समाज नही बने। हम समाज का जीवन भी जीते है और व्यक्ति का जीवन भी। व्यक्ति के जीवन मे घटित होने वाली घटनाएँ भिन्न प्रकार की होती है।

हम दोनो प्रकार का जीवन जीते है — वैयक्तिक और सामाजिक। हमारा जीवन दोनो आयामो वाला जीवन है। हमारा वैयक्तिक जीवन आध्यात्मिक जीवन है, आन्तरिक जीवन है और सामाजिक जीवन बाहरी जीवन है। यह बाह्य दुनिया मे होने वाला जीवन है। हम दोनो प्रकार के जीवन जीते है और दोनों के रहस्यो की खोज करते है। हम बाह्य जगत् (सामाजिक जीवन) की जो घटनाएँ है उनकी

व्याख्या करते है और आन्तरिक जगत् (व्यक्तिगत जीवन) की जो घटनाएँ हैं उनकी भी व्याख्या करते है।

अन्तर्जगत् चेतना का जगत् है, केवल चेतना का जगत् है। यहाँ केवल चेतना होती है और कुछ नही होता। इसे हम आनन्द कहें, शक्ति कहें, ज्ञान कहें, कुछ भी कहें यहाँ केवल चेतना है। उस चेतना में जो कुछ है वह आनन्द भी है, शक्ति भी है, ज्ञान भी है। यह सारी चेतना है और कुछ नही है।

बाहर का जगत् नाना प्रकार का जगत् है। यहाँ अनेक द्रव्य है, पदार्थ है, अणु-परमाणु का संघटन है। भीतर केवल चेतना है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नही है।

एक है चेतना का जगत् और एक है पदार्थ का जगत्। जब हम चेतना के जगत् की ओर बढ़ते है, वहाँ जो भी निर्णय प्राप्त करते है, जहाँ पहुँचते है, वह है हमारा अध्यात्म। चेतना से हटकर, दूसरों के साथ जुड़कर, हम जो कुछ करते है वह है हमारा भौतिक जगत्, वस्तु-जगत्।

रहस्य की खोज के लिए हमें कुछ गहराई में उतरना पड़ता है। कई बार ऐसा होता है कि निमित्त बनता है और रहस्य का उद्घाटन हो जाता है। कई बार ऐसा होता है कि निमित्त नहीं बनता, अनायास ही अतल गहराई में डुबकी लगाने का मौका मिलता है और रहस्य का उद्घाटन हो जाता है।

आपने रहस्य का उद्घाटन का सिद्धान्त जाना है और अनेक घटनाएँ भी सुनी हैं।

○

एक व्यक्ति पहाड़ के पास बैठा था। झरना बह रहा था। एक हिरनी आयी। उसने लम्बे समय तक अपनी एक टांग को पानी में डुबोये रखा। दूसरे दिन भी आयी। तीसरे और चौथे दिन भी आयी। चार दिन तक वह लंगड़ाते-लंगड़ाते आयी और पाँचवे दिन वह ठीक ढंग से चलने लगी। उस व्यक्ति ने सोचा — यह रोज क्यों आती रही? उसने पता लगाया। हिरनी के पैर को देखा। उसका पैर जख्मी था। हड्डी टूट-सी गयी थी। दो-चार दिन के पानी के उपचार से वह पैर ठीक हो गया। व्यक्ति ने उस उपचार को पकड़ा। प्राकृतिक चिकित्सा का प्रारंभ हो गया। जल के उपचार, मिट्टी के उपचार का प्रारंभ हो गया।

एक व्यक्ति बैठा था। उसने देखा बच्चा रो रहा है। उसका श्वास फूल रहा है। श्वास गहरा आ रहा है, पेट फूल रहा है, और सिकुड़ रहा है। वह ला-ला-ला की अव्यक्त ध्वनि भी कर रहा है। व्यक्ति ने ध्यान दिया। सोचा, इस ध्वनि के साथ कुछ हो रहा है। उसने प्रयोग किया। ध्वनि-चिकित्सा का विकास हो गया। व्यक्ति ने ध्वनि-चिकित्सा का विकास किया शब्दों के उच्चारण के द्वारा। इस पद्धति से बीमारियो को मिटाना जाना। ○

एक आदमी के सिर में भयंकर दर्द रहता था। वह वैद्यों के पास गया। डाक्टरो के पास गया। काफी चिकित्सा करायी; पर सब व्यर्थ। वह जीवन से घबरा गया। उसका जीना दूभर हो गया। एक बार किसी व्यक्ति के साथ उसकी लड़ाई हुई। प्रतिपक्षी ने गुस्से मे आकर तीर फेंका। जैसे ही वह तीर पैर में चुभा, सिर का दर्द तत्काल मिट गया। वह आश्चर्य में पड़ गया। उसने सोचा — इतने उपचार भी मेरे सिर-दर्द को नही मिटा पाये और आज एक तीर लगते ही वह मिट गया, मानो कि वह कभी हुआ ही न हो। वह रहस्य को समझ नही सका। वह वैद्यों के पास गया। अपनी रामकहानी सुनायी। सभी अचंभे मे पड़े रहे। वैसा ही प्रयोग प्रारंभ किया। दूसरे आदमी के सिर मे दर्द आया उसे तीर चुभोया और वह ठीक हो गया। तीसरे, चौथे, पाँचवे व्यक्ति पर भी प्रयोग किया और सिर दर्द गायब हो गया। यह तथ्य स्थापित हो गया कि सिर में दर्द होने पर पैर के अमुक स्थान में तीर चुभाने से दर्द मिट जाता है। 'एक्यूपंक्चर' की चिकित्सा-पद्धति की यही कहानी है। ○

हमारा शरीर विद्युत् का शरीर है। इसमे बिजली की प्रधानता है। हम माने, न माने, यह बहुत ही स्पष्ट है कि बिजली के असन्तुलन के कारण हमारे शरीर मे अनेक बीमारियाँ हो जाती है। तैजस शरीर के अस्त-व्यस्त होने पर शरीर में विकृतियाँ उत्पन्न होती है। यदि हम तैजस शरीर की समुचित व्यवस्था कर लें, बिजली का उचित सतुलन स्थापित कर ले और समीकरण कर लें तो अनेक चीजों को हम स्वयं समाप्त कर सकते है। अनेक स्थितियाँ स्वयं समाहित हो सकती है।

यह सारी चर्चा मै इसलिए कर रहा हूँ कि रहस्यो की खोज किये बिना, रहस्यों का उद्घाटन किये बिना, दुनिया मे विकास नही हो सकता और शक्तियाँ उपलब्ध नही हो सकती। प्राचीन आचार्यो ने अनेक रहस्य खोजे। आज हम उन सिद्धान्तों को तो समझते है, पर वे रहस्य याद नही रह पाये। उनकी विस्मृति हो गयी। विस्मृति के कारण उन रहस्यो की हम ठीक से व्याख्या भी नही कर सकते और उन सबका प्रयोग भी नही कर सकते।

इस प्रसंग मे मै एक घटना की चर्चा करूँगा। अभी-अभी मैंने एक बात पढी थी कि उत्तर की ओर सिर कर नही सोना चाहिये; अर्थात् दक्षिण की ओर पैर कर नही सोना चाहिये। यह बात हमारे यहाँ प्रचलित भी है। कुछ इसे अन्ध-विश्वास भी मानते है। वे कहते है सोते समय पैर चाहे दक्षिण मे हो, उत्तर मे हो, पश्चिम मे हो, पूर्व मे हो, क्या फर्क पड़ता है? कही तो सिर करना ही होगा। कही तो पैर करने ही होगे! किन्तु आज प्रत्येक चीज की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। विज्ञान रहस्यों के उद्घाटन के पीछे इस तरह पड़ा हुआ है कि आज कोई भी व्यक्ति किसी चीज को अन्धविश्वास कहता है तो वह उसका दु:साहस है। पुराने जमाने मे कह सकता था, आज नही कह सकता। अभी-अभी इसकी वैज्ञानिक

व्याख्या पढ़ी तो आश्चर्य हुआ। हमारे शरीर मे दो प्रकार के विद्युत् है — एक है पॉजिटिव्ह और एक है निगेटिव्ह। एक है धन विद्युत् और एक है ऋण विद्युत्। शरीर का ऊपर का जो भाग है — आँख, कान, नाक, सिर, मुँह — इन सब में धन विद्युत् है। नीचे का जो भाग है — पैर, जाँघ आदि इन सबमें ऋण विद्युत् है। व्यक्ति ब्रह्माण्ड से, जगत् से भिन्न नही होता। जब इससे सम्बन्ध जुड़ता है तब व्यक्ति समाज बन जाता है। हम ऐसे जगत् में जीते है जहाँ वातावरण का प्रभाव होता है, परिस्थिति का प्रभाव होता है। हम इन सबसे प्रभावित होते है।

विश्व मे दो ध्रुव माने जाते है। एक है उत्तरी ध्रुव और दूसरा है दक्षिण ध्रुव। जो उत्तरी ध्रुव है उसमे बिजली का अटूट भण्डार है। वहाँ इतनी बिजली है जहाँ जाने पर ऐसा लगता है कि मानो सैकड़ों सूर्य उग आये हों। बहुत चकाचौंध है। पता ही नही लगता कि कहीं अंधकार है। दक्षिणी ध्रुव में भी इतनी ही विद्युत् है। उत्तरी ध्रुव में धन विद्युत् है और दक्षिणी ध्रुव में ऋण विद्युत्। जब आदमी उत्तर की ओर सिर करके सोता है तब उसके पैर दक्षिण की ओर होते है। दक्षिण से जो विद्युत् का प्रवाह आता है वह ऋणात्मक होता है और मनुष्य के पैर की विद्युत् भी ऋणात्मक होती है। जहाँ दो ऋणात्मक विद्युत् परस्पर मिलती है, वहाँ प्रतिरोध होता है, टक्कर होती है। इसी प्रकार जब धन विद्युत् से धन विद्युत् मिलती है तब प्रतिरोध होता है। तब वे एक-दूसरे को सहारा नही देती, किन्तु एक-दूसरे को हटाने का प्रयास करती है; इसलिए जो व्यक्ति दक्षिण की ओर पैर करके सोता है, उसकी ऋण विद्युत् दक्षिणी ध्रुव से आने वाली ऋण विद्युत् से टकराती है। उस स्थिति मे व्यक्ति के मन में चिन्ता उत्पन्न होती है, बुरे-बुरे स्वप्न आते है और शरीर में बीमारियाँ तथा विकृतियाँ उत्पन्न होती है; इसीलिए वैज्ञानिकों ने यह प्रतिपादन किया कि दक्षिण की ओर पैर कर नही सोना चाहिये। इससे शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की बीमारियाँ होती है।

हम इस बात को न भूले कि रहस्यों का उद्घाटन करने पर जो बात हमारी समझ में सही दृष्टि से आती है और जिस पर हमारा सही विश्वास होता है; वह केवल मान्यता मात्र से नही होता। अब मै अध्यात्म के रहस्यों की भी चर्चा थोड़ी करना चाहता हूँ।

धर्म का मूल सूत्र है — पाप मत करो; पाप से बचो। पर कैसे बचा जा सकता है, यह प्रश्न है। कितना चंचल है मन! कितना चचल है शरीर! कितनी चंचल है वाणी! इनसे कुछ-न-कुछ हो ही जाता है। हम पापों से कैसे बचें? क्या उपाय है उनसे बचने का? अध्यात्म के रहस्य का उद्घाटन किये बिना यह समझ मे नही आ सकता। यह प्रश्न समाहित नही हो सकता। वह यह मान ही नही सकता कि पापो से आदमी बच सकता है और उस दुनिया में रहकर आदमी पापों से बच सकता है, जहाँ पाप करने के लिए हजारों उत्तेजनाएँ निरन्तर प्राप्त होती रहती है। ऐसी स्थिति मे पापो से कैसे बचा जा सकता है?

भगवान् महावीर ने इसका उपाय वताते हुए कहा – 'एक कछुआ है। जव कोई कठिन स्थिति पैदा होती है, पक्षी उसे नोचने आते है, सियार आदि उसे खाने आते है, जव कोई असुरक्षा उत्पन्न हो जाती है, भय उत्पन्न होता है, तव तत्काल वह अपनी खोल मे चला जाता है। प्रकृति ने उसे ऐसी खोल भी दी है जो उसके लिए ढाल का काम करती है। प्राचीनकाल मे जव तलवारो और भालों से युद्ध होता था तव योद्धा अपने हाथो में ढाल रखते थे। वह भी कछुए की खोल से ही वनती थी। कछुआ अपनी खोल के भीतर जाने के वाद सव प्रकार से सुरक्षित वन जाता था। क्या हमारे पास भी ऐसी कोई ढाल है जिसमे पहुँचकर हम पापों से वच सके? हमारे मन मे वासना उभरती है। हमारे ऊपर वासना का आक्रमण होता है, क्रोध का आक्रमण होता है, आवेश का आक्रमण होता है। क्या कोई उपाय है इन आक्रमणो से वचने का? हाँ, है। भगवान् ने कहा — 'जैसे कछुआ वाहरी आक्रमण से वचने के लिए अपनी ढाल मे चला जाता है, वैसे ही तुम अध्यात्म मे चले जाओ। वच जाओगे सभी आक्रमणों से। अध्यात्म मे चले जाओ, चेतना के पास चले जाओ, भीतर चले जाओ, अन्दर प्रवेश कर लो, सुरक्षित हो जाओगे। जव तक मन वाहर भटकता है, तव तक वासनाएँ उभरती है, आवेश उभरते है। और जो स्थितियाँ चिन्ता, भय और दु.ख उत्पन्न करने वाली है वे सारी-की-सारी उभरती है, उभर सकती है। तुम भीतर चले जाओ, चेतना के जगत् में चले जाओ, चेतना का नैकटय प्राप्त कर लो, सुरक्षित हो जाओगे, पूर्ण सुरक्षित। कोई खतरा नही, कोई भय नही। यह एक ज्वलन्त शक्ति है। इसका अनुभव किया जा सकता है।

एक वात वह होती है जो माननी पड़ती है और एक वात वह होती है जो माननी नही पडती; किन्तु जिसकी अनुभूति की जा सकती है। अध्यात्म की वात मानने की वात नही है। यह अनुभृति मे लाने की वात है। यदि आप चाहे तो आज भी ऐसी स्थिति का निर्माण कर सकते है और आज रात को सोने से पहले-पहले उसका अनुभव कर सकते है। जैसे ही मन मे कोई विचार आया, विकल्प आया, वुरा चिन्तन उभरा, आप तत्काल अपने भीतर चले जाएँ, मन को भीतर ले जाएँ। ऐसा लगेगा कि आप दूसरी दुनिया मे पहुँच गये है और सारे विचार, सारे विकल्प और सारे चिन्तन वाहर रह गये है। अब इनका आक्रमण आप पर नही हो सकता। यही है प्रेक्षा-ध्यान। इसका अर्थ है अपने आपको देखने लग जाना। जिस क्षण मे आप अपने आपको देखने लग जाते है, चेतना के क्षेत्र मे चले जाते है, फिर आप आक्रमण से मुक्त हो जाते हैं। किसी का आक्रमण हो नही सकता।

अध्यात्म के द्वारा हम इनसे वच सकते है। हम उसी अध्यात्म की चर्चा कर रहे है, जो अध्यात्म हमे इन सारे वाहरी आक्रमणो से वचा सकता है और इन सारे प्रभावो से अप्रभावित रख सकता है। आज हम उस अध्यात्म से थोड़ा दूर

भटक गये हैं। आज बताने वाले नहीं रहे। अध्यात्म के रहस्य भी आज अज्ञात बन गये है। इसका कारण क्या बना?

एक आदमी चलता है। पैर से दबकर जीव मर जाता है। हम कहते है—हिंसा हो गयी। उसने जीव को मार डाला, हिंसा हो गयी। यह हमारा निर्णय हुआ। यह व्यवहार का निर्णय है, बाहरी दुनिया का निर्णय है। भगवान् महावीर ने या किसी मनस्वी आचार्य ने यह तो नहीं माना। उन्होंने तो यही कहा—'बंध होता है–अध्यवसाय से। एक होता है अध्यवसाय और एक होती है घटना। दोनों दो बाते हैं। अध्यवसाय अन्तर्जगत् का निर्णय है; और घटना बाह्य जगत् में घटित होती है। आचार्य भिक्षु ने यह कहा था कि मारने वाला हिंसक होता है। जो मारता है अर्थात् जिसका मारने का अध्यवसाय है वह हिंसक है। जीव जीता है या मरता है, इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। जीता है तो कोई दया नहीं होती और मरता है तो कोई हिंसा नही होती। जीव मरता है या नहीं मरता, यह गौण बात है, दूसरी बात है। मारने का जो संकल्प है, अध्यवसाय है, परिणाम है—यह मुख्य बात है। हिंसा है मारने का अध्यवसाय, न कि किसी का मर जाना। अध्यात्म के जगत् में पहुँचकर जब हम रहस्यों को देखते हैं तब हमारी सारी साधना-पद्धति बदल जाती है। फिर हम घटना को मुख्य मानकर व्यवहार नहीं चलाते; किन्तु अन्तर को मुख्य मानकर व्यवहार चलाते हैं।

एक है सामाजिक जीवन। सामाजिक जीवन के निर्णय व्यवहार के आधार पर होते हैं और व्यवहार के आधार पर ही व्यक्ति जीवन चलाता है।

एक है व्यक्ति का जीवन। इसमें निर्णय का सारा आधार होता है आन्तरिक जीवन; इसीलिए यह कहा गया कि दिन हो या रात, कोई देख रहा हो या न देख रहा हो कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता वह आन्तरिक स्थिति होती है। अन्तर आता है व्यवहार के जगत् में। व्यवहार को मानकर चलने वाला, आचरण करने से पहले यह देखेगा कि प्रकाश है या अन्धकार, कोई देख रहा है या नही देख रहा है। इस आधार पर उसका आचरण होगा, अगला कदम उठेगा।

स्वप्न क्यों आता है? हम नींद में स्वप्न क्यों देखते है? मानसशास्त्रियों की व्याख्या है कि हमारे मन की जो दमित वासनाएँ होती हैं, उनको प्रगट होने का जब मौका नही मिलता तब वे स्वप्न में प्रगट होती हैं, और इसीलिए हमें स्वप्न आते है। किसी सीमा तक यह सचाई है। कभी-कभी ऐसा होता है कि सोते समय जो बात मन में रह जाती है, सपने मे वही दृश्य हमें दिखायी देता है। यह बहुत बड़ी सचाई है अध्यात्म की। क्रोध आता है। वहाँ तक पहुँच कर आप स्थिति को समाप्त करे। उसे दबाये नहीं उस पर नियन्त्रण न करें। व्यवहार की बात तो ठीक है। मैं आपको व्यवहार से सर्वथा मुक्त होने की बात नही कहता। हमारी

नियन्त्रण की शक्ति है, हमारा विवेक है। हम बाह्य जगत् में जीते है, इसलिए व्यवहार को भी मानकर चलते है। कुछ नियन्त्रण भी होता है, दमन भी होता है, दबाव भी होता है; किन्तु अध्यात्म की चर्चा करते समय यह कहने में कोई संकोच नही होना चाहिये कि यह मात्र व्यवहार की बात है, यह कोई अध्यात्म की बात नही। अध्यात्म की बात तो यह है कि हम मूल तक पहुँच जाएँ। सारी समस्याओ का मूल है —— राग और द्वेष। प्रचलित भाषा में कहा जा सकता है—— हिसा। चाहे परिग्रह का प्रश्न है, चाहे अब्रह्मचर्य का प्रश्न है, चाहे चोरी का प्रश्न है, चाहे झूठ बोलने का प्रश्न है – इन सबको हमारे आचार्यो ने हिंसा माना है। इसे उलटकर देखे तो अहिंसा से भिन्न कोई महाव्रत नही है। दो शब्दों में सब कुछ आ गया —— हिंसा और अहिंसा। अहिंसा क्या है? राग आदि को उत्पन्न न करना अहिंसा है। आप अहिसा की बात को, अहिंसा की घटना को हिसा के साथ मत देखिये। घटना को मिटाने का प्रयत्न भी मत कीजिये। उस क्षण को देखें जिस क्षण मे राग उत्पन्न हो रहा है। जिस क्षण में राग उत्पन्न हो रहा है वही क्षण वास्तव मे जागृत रहने का क्षण है।

प्रेक्षा-ध्यान का सूत्र है——अप्रमाद। प्रेक्षा-ध्यान का सूत्र है——जागरूकता। किसके प्रति जागरूकता? अतीत के प्रति जागरूक रहने की जरूरत नही है। भविष्य के प्रति भी जागरूक रहने की जरूरत नही है। जागरूक रहे वर्तमान क्षण के प्रति और वर्तमान क्षण के प्रति जागरूक रहने का तात्पर्य यह है कि कोई बीज होगा वह बोया जाएगा वर्तमान के क्षण मे। बाद मे तो फल लगता है, बाद मे तो परिणाम आता है, बाद मे एक वृक्ष बनता है। आप वृक्ष को नही उखाड सकते। आप फल को नही रोक सकते। आप केवल यही देखें कि बीज बोया जा रहा है या नही बोया जा रहा है। हमे जागरूक रहना है वर्तमान के उस क्षण के प्रति जिस क्षण मे बीज की वुवाई होती है। यह राग का क्षण, यह द्वेष का क्षण; यह राग का बीज, यह द्वेष का बीज जब बोया जाता है उस क्षण के प्रति यदि हम जागरूक नही होते है तो परिणामों के प्रति जागरूक होने का कोई अर्थ नही होता। अध्यात्म का एक बहुत बड़ा रहस्य जो अध्यात्म के सूत्रों से प्रतिपादित हुआ है, वह है —— राग का क्षण, द्वेष का क्षण हिंसा है। और अ-राग का क्षण, अ-द्वेष का क्षण अहिसा है।

वहुत विचित्र घटनाएँ घटित होती है। मन मे कोई भी विकल्प उठा, एक विचार आया और हमने उसकी उपेक्षा कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि वह वीज वो दिया गया और वह वीज जब बड़ा होगा तो निश्चित ही अपना परिणाम लायेगा। हम दुनिया की घटनाओ को देखे। पचास-साठ वर्ष तक जिस व्यक्ति का जीवन यशस्वी रहा, जिस व्यक्ति का पूर्वार्द्ध पूर्ण तेजस्वी और उदितोदित रहा, वही व्यक्ति अपने जीवन के उत्तरार्द्ध मे पतित हो गया, नष्ट हो गया, हमे आश्चर्य

होता है कि यह कैसे हुआ ? जो व्यक्ति पचास-साठ वर्ष तक यशस्वी और तेजस्वी जीवन जी लेता है वह आगे के वर्षो में पतन की ओर कैसे जा सकता है ? हम सामान्यतः इसकी व्याख्या नही कर सकते; किन्तु ऐसी घटनाओं के पीछे भी कुछ कारण अवश्य होते हैं। यदि हम सूक्ष्मता से ध्यान दे, गहराई से सोचें तो यह तथ्य स्पष्ट होगा कि जो बीज बोया गया था, उसका प्रायश्चित्त नहीं हुआ, वह वृक्ष बन गया, घटना घटित हो गयी।

प्रायश्चित्त यही तो है कि जिस क्षण मन मे राग का संस्कार उत्पन्न हुआ, जिस क्षण मन में द्वेष का संस्कार उत्पन्न हुआ, उसे धो डालो, सफाई कर दो, परिवर्तन कर दो; फिर वह सतायेगा नही। बीज को नष्ट कर दिया, वह वृक्ष नही बन पायेगा। प्रायश्चित्त नहीं होता है तो बीज को पनपने का मौका मिल जाता है, अंकुरित होने का मौका मिल जाता है। कालान्तर मे वह वृक्ष बन जाता है, उसके फल लग जाते है, उसकी जड़ें जम जाती है। अब हमारे वश की बात नहीं रहती। हमे उसके फल भुगतने ही पडते है। फल भुगतने के लिए हमें बाध्य होना पड़ता है।

अध्यात्म का बहुत बड़ा रहस्य है कि हम उस क्षण के प्रति जागरूक रहे जिस क्षण में राग और द्वेष के बीज की बुवाई होती है।

हम अहिसक है। हमने बहुत स्थूल रूप से मान लिया कि किसी को न मारना अहिसा है; किन्तु राग-द्वेष के बीजों की बुवाई होती जाएगी तो अहिसा कैसे हो सकेगी ? व्यवहार के जगत् की बात तो ठीक है। कोई आदमी अगर किसी को नही मारता है तो वह कानून की पकड़ मे नही आयेगा। कानून उसे पकड़ेगा नही, सतायेगा नही, क्योंकि वह ऐसा कोई काम नही कर रहा है, जो कानून की सीमा में आ सके। कानून का सूत्र है—कार्य। ऐसा कार्य जो पकड़ मे आ सके। अध्यात्म का सूत्र है—अध्यवसाय। कार्य हो, न हो, अध्यवसाय मात्र जिम्मेवार हो जाता है। ऐसा अध्यवसाय, ऐसा संकल्प, ऐसा विचार, ऐसा परिणाम, जो हिसा-प्रधान हो, वह आया, आपने कुछ किया नही, फिर भी आप उस हिसा से बंध गये। आप अपने-आपको वैसा प्रस्तुत कर सकते है कि हमने कुछ किया तो नही, फिर हम उस घटना के प्रति उत्तरदायी कैसे ? अध्यात्म इसे स्वीकार नही करता कि आपने क्रिया-रूप मे कुछ किया या नही। वह वहाँ तक पहुँचता है कि आपने ऐसा सोचा या नही, ऐसा चिन्तन किया या नहीं। अध्यात्म का सारा निर्णय होता है चिन्तन के आधार पर, परिणाम और अध्यवसाय के आधार पर। कानून का सारा निर्णय होता है कार्य के आधार पर। यदि यह बात हमारी समझ में ठीक से आ जाती है तो जागरूकता का क्षेत्र खुल जाता है, जागरूकता की सीमा बढ जाती है, फिर हम परिणाम के प्रति उतने जागरूक नही होते जितने कि मूल के प्रति जागरूक हो जाते है। जब मन पर थोड़ा प्रमाद छाता है, हमारी जागरूकता चली

जाती है परिस्थिति पर, परिणाम पर । हम सोचने लग जाते है — उसने मेरी शिकायत कर दी, उसने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया; उसने मेरा अपमान कर डाला । हमारा सारा चिन्तन बाह्य जगत् पर चला जाता है। यह नही सोचा जाता कि राग का क्षण हमने कैसे जिया था? द्वेष का क्षण हमने कैसे जिया था? अर्थात् हम अध्यात्म से हटकर बाहर के निर्णय पर चले जाते है ।

भगवान् महावीर ने एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया कि समूची जिम्मेवारी, समूचा दायित्व आत्मा पर है । उन्होंने कभी नही कहा कि आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई शत्रु है या मित्र है । उनका सूत्र यही रहा कि आत्मा ही मित्र है । बाहर मित्र की क्या खोज कर रहे हो । उन्होने कभी नही कहा कि दूसरा कोई तुम्हे बन्धन मे डालता है, बन्धन में फँसाता है । यह बंध और मोक्ष का दायित्व, यह पुण्य और पाप का दायित्व, यह सुख और दुःख का दायित्व — सारा दायित्व आत्मा का है । आत्मा ही सब कुछ करने वाला है । क्या हम अध्यात्म के इस रहस्य की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न करते है कि यह सारा दायित्व हम पर है ? हमेशा हम प्रत्येक बात का दायित्व दूसरों पर डाल देते है और हम जब तक दूसरे पर दायित्व नही डाल देते तब तक मन बेचैन रहता है। हम बहाना ढूंढ लेते है कि अमुक ने ऐसे किया, अमुक ने वैसे किया । ऐसा कर हम अपने-आपको हल्का अनुभव करते है । और सोचते है कि चलो, अपना काम हो गया, किन्तु अध्यात्म का रहस्य इससे भिन्न है । अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण रहस्य यह है कि 'किसी के लिए कोई जिम्मेवार नही । सारी घटनाओं के लिए जो अन्तिम जिम्मेवार है, वह अपनी आत्मा है, अपना अध्यवसाय है ।'

मैंने अध्यात्म के दो-तीन रहस्यों की चर्चा की है। यह चर्चा बहुत विस्तार मांगती है, पर मैंने संक्षेप मे उसको प्रस्तुत किया है । यदि ये दो-तीन रहस्य, जिनका उद्घाटन हमारे मन मे हो सके, हमारे जीवन मे हो सके तो और रहस्य खोजने की जरूरत नही है । मैंने ऊपर जिन रहस्यों की चर्चा की है, वे सब खोजे गये रहस्य है । हमारे तीर्थंकरो ने, हमारे आचार्यो ने इनकी खोज की थी । जो खोजे गये रहस्य है, उनकी मात्र स्मृति मैने प्रस्तुत की है । आपको थोड़ी-सी याद दिलानी है। इन रहस्यों के प्रति हमारा ध्यान केन्द्रित हो और नये रहस्यो को खोजने की एक तड़प, एक भावना, सघन श्रद्धा मन मे जागृत हो, पुरुषार्थ उस दिशा मे आगे बढे तो मुझे लगता है कि इस संसार मे भोगी जाने वाली बहुत सारी व्याधियो और मानसिक संकट से हम बच सकते है और कछुए की भाँति अपने लिए ऐसी ढाल बना सकते है जिसमे जाकर सारे आक्रमणो, अतिक्रमणो से बचकर अपने-आपको सुरक्षित अनुभव कर सकते है । □□

'आत्मा मे प्रकाश है तो भौतिक प्रकाश भी हमारे काम आ जाता है। आत्मा का प्रकाश न हो तो बाहर का कोई भी प्रकाश काम नही आ सकता।

चारित्र ही मन्दिर है

9

चारित्र से मन पवित्र हो तो मन की पवित्रता आकृति पर झलकती है; जैसे मथा हुआ नवनीत दही से अलग ऊपर तिरने लगता है ।

□ उपाध्याय मुनि विद्यानन्द

चारित्र ही मन्दिर है अर्थात् मन्दिर के समान पवित्र है। मन्दिर भगवान की प्रतिमा के मागल्य से उपकृत है, मंगल-भवन है । धर्म और आत्म-संस्कार को नित्य नवीन करने के लिए मन्दिरो में जाने की विधि है । धर्म-भावना और आत्म-संस्कार से चारित्र की रत्नवेदी का निर्माण होता है । पुष्प की मुस्कान को देखते-देखते व्यक्ति स्वयं मुस्काने लगता है और जिनेश्वरों की वीतराग-मुद्रा के दर्शन करने से मन पर उनकी गुणावली का संक्रमण होता है। यह तद्गुण संक्रमण जब आचरण का अभिन्न अंग बन जाता है तब व्यक्ति मन्दिर-स्वरूप बन जाता है। इसी अर्थ में चारित्र को मन्दिर कहा गया है। सम्यक् चारित्र के देवालय समान पीठ पर भगवान् बिराजते है । मनुष्य अपने चारित्र से 'आत्म मन्दिर' का निर्माण करने मे स्वतन्त्र है। अपने ही कृत्यो से वह इसे मदिरालय भी बना सकता है । प्रतिक्षण अपने देह को 'आत्मा' का पवित्र आगार मानकर 'मन्दिर' समान रखे, यह चारित्रवान् व्यक्ति का नैतिक कर्त्तव्य है । व्यक्ति के व्यक्तित्व को लोक उसके आचरण की कसौटी पर रखते है। वह अपनी दिनचर्या कैसी रखता है, इसी आधार पर 'वह क्या है ?' का निष्कर्ष फलित होता है; अत. मन्दिर जाने वाले के प्रति यदि चारित्रवान् होने का अनुमान कोई करे, तो उसकी युक्ति को असंगत नही कहा जा सकता । 'यत्र धूमस्तत्र वह्नि' जहाँ धुआँ है, वहाँ अग्नि है, यह तो व्याप्तिसाहचर्य का नियम है । इस प्रकार 'जहाँ चारित्र है, वहाँ मन्दिर है' कहना उपचार से चारित्रशील को मन्दिर-समान अभिहित करना है । जैसे मन्दिर से देवालयत्व को पृथक् नही किया जा सकता, वैसे चारित्र के प्रासाद को पवित्रता में मन्दिर के उपमान से हीन नही किया जा सकता ।

चारित्र का पालन आत्मना किया जाता है । वह बाह्य प्रदर्शन का अलंकार न होकर आन्तरिक शील की आधारशिला है। जैसे स्फटिक मणि में छाया संक्रान्त होती है, उसी प्रकार चारित्र मे से व्यक्ति की पवित्रता झलकती है। मोक्ष के साथ चारित्र का अविनाभावी सम्बन्ध है । जो लोग मन्दिर से लौटकर अपने व्यवसाय में विशुद्ध नही रहते, मिलावट करते है अथवा वस्तु के मूल्यांकन में अनौचित्य रखते है, 'चारित्र और मन्दिर' से उनका कोई सम्बन्ध नही है । कहा है–

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्॥

(देवता न काष्ठ मे है, न पत्थर मे और न मिट्टी में, वह तो मनुष्य के अपने भावों मे बिराजमान है; अत. भाव ही देवत्व की प्रतिष्ठा में मुख्य है) । 'प्रात.काल घूमने से स्वास्थ्य उत्तम रहता है', इस सूत्र का लाभ उठाने के लिए यदि कोई बन्द गाड़ी मे बैठकर मैदान हो आये तो क्या सूत्र का भाषित उसे फलेगा ? इसी प्रकार मन्दिर जाने मात्र को धार्मिकत्व का लक्षण मानने वाला और जीवन-व्यवहार मे भिन्न आचरण करने वाला क्या आस्तिक कहा जा सकेगा ? उद्यान मे जाने वाला अनायास ही पुष्पों के सौरभ को प्राप्त करता है और लौटते समय एक-दो पुष्प उसके हाथ में होते है । यदि मन्दिर जाने वाला सर्वज्ञ भगवान् के दर्शन कर खाली हाथ, खाली मन लौट जाता है तो उसकी जड़ता को देने योग्य पुरस्कार किसके पास है ? मन्दिर और भगवान् की प्रतिमा तो भाव-राशि को उद्वेलित करने के साधन मात्र है वहाँ से भावों मे (परिणामों मे) दिव्यता प्राप्त करने की प्रवृत्ति नही ला सके तो मन्दिर जाने को ही साध्य मान बैठने की भूल का संशोधन कब करोगे ? यह तो छिलका खाने और रस फेकने जैसी बात हुई । जैसे शिल्पकार पत्थर में से सर्वांग-पूर्ण मूर्ति का आविर्भाव कर लेता है, वैसे ही चारित्र की साधना करने वाला अपने व्यक्तित्व में अलौकिक सौन्दर्य की उद्‌भावना करता है । चारित्र से मन पवित्र हो तो, मन की पवित्रता आकृति पर झलकती है, जैसे मथा हुआ नवनीत दही से अलग ऊपर तिरने लगता है । इस प्रकार मनुष्य का वास्तविक देवालय उसका चारित्र है । मन्दिर, गिरिजाघर, मस्जिद और उपासना-गृह उस चारित्र लब्धि के नामान्तर है । यदि इनमें नियमित उपस्थिति देने वाला भी चारित्रहीन है तो वह उसकी अपनी अयोग्यता है । □

'समयसार' की पन्द्रहवीं गाथा

२

"कोई भी शब्द आगम, व्याकरण और शब्दकोश द्वारा सम्यग्ज्ञान से परीक्षित होने पर ही ग्राह्य होता है, अन्यथा वह भद्र तथा स्व-पर-उद्धारक नही बल्कि अनर्थ का कारण होता है।

यह पन्द्रहवी गाथा अध्यात्म-क्षेत्र और जैन जगत् के विद्वानो के मध्य सदैव, जटिल तथा गूढ़ समस्या का विषय रही है। आज से ही नही आचार्य प्रवर अमृतचन्द्र जैसे महान् प्रतिभा-संपन्न के समय से ही है। उन्होने भी इस गाथा की दूसरी पक्ति की पहली अर्द्धाली 'अपदेस सत मज्झं' आचार्य कुन्दकुन्द के स्वल्पाक्षर-विशिष्ट शैली का अर्थ नही किया। अवश्य ही उन्हे भी इस अर्द्धाली का स्पष्ट अर्थ ज्ञात नही हुआ अथवा उसे सदिग्ध समझकर छोड़ दिया। अन्यथा इस पक्ति

का अर्थ उनसे नही छूटता। आचार्य जयसेन ने अपनी तात्पर्यवृत्ति में इस अर्द्धाली का अर्थ तो किया, परन्तु एक शब्द बदल दिया अथवा किसी प्रति में लिपिकार के कारण पाठ ही ऐसा प्राप्त हुआ होगा। वह अर्द्धाली है 'अपदेस सुत्त मज्झ' आचार्य जयसेन ने इस पाठ का अर्थ 'सुत्त' शब्द को 'जिण-सासणं' का बलात् विशेषण मान कर किया है और उत्तरवर्ती पं. जयचन्द आदि सभी बुद्धि-जीवी वर्ग को 'सुत्त' पाठ ने अनेक विद्वानों के मस्तिष्क की यात्रा की और आखिर उलझा ही रक्खा। जयसेन ने 'सुत्त' शब्द का अर्थ 'श्रुत' मान कर उसका विशेषण भावश्रुत और द्रव्यश्रुत के रूप में किया। क्या मोमबत्ती दोनों सिरों पर जल सकती है? कोई भी अर्थ आगम, व्याकरण और शब्दकोश द्वारा सम्यग्ज्ञान से परीक्षित होने पर ही ग्राह्य होता है अन्यथा रूप मे शब्द नाम मात्र यदि भ्रान्तिवश ग्रहण किया जाए तो वह भद्र तथा स्व-पर-उद्धारक नही बल्कि अनर्थ का ही कारण होता है। इस अर्थ को पं. वंशीधर न्यायालंकार ने क्लिष्ट कल्पना माना है। उनकी दृष्टि से इस गाथा मे ये सब 'अप्पाणं' का विशेषण होना चाहिए; 'जिण सासणं' का नही। डा. ए. एन. उपाध्ये ने भी 'अपदेससंतमज्झं' पाठ को ही ठीक माना है। पं. जुगल किशोर मुख्तार ने इस विषय पर एक लेख 'अनेकान्त' मासिक में प्रकाशित करवाया था और इस गाथा के सही अर्थ बतानेवाले को पुरस्कार देने की घोषणा भी की थी। अभी तक स्थिति वैसी ही रही है। जब हम जैन नगर, जगाधरी (हरियाणा राज्य) मे चातुर्मास थे आचार्य श्री तुलसीजी और प्राकृत भाषा तथा दर्शन शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् मुनि श्री नथमल ने 'समय-सार' ग्रथ का स्वाध्याय करते समय १५ वी गाथा के बारे मे वहाँ तीन पत्र भेजे थे। उस समय इस पक्ति का अर्थ और 'अपदेस-सुत्त-मज्झं' पाठ का समुचित समा-धान हम नही कर सके। उन्होने हमें तत्काल पत्र द्वारा सुझाव दिया था कि प्राचीन प्रतियो द्वारा 'समयसार' ग्रंथ का प्रामाणिक पाठ के साथ संपादन होना परम आवश्यक है। हमने भी उसके बाद ही समूचे भारत के ग्रंथ-भण्डारों से 'समयसार' की हस्तलिखित प्रतियों का संकलन किया और पाठ-भेद एवं अर्थ पर गम्भीर अनुचिन्तन, अन्वेषण के साथ रोमन्थन किया और निर्दिष्ट पाठ के सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुँच गये है, अन्वय अर्थ—इस प्रकार किया है, और इस तरह इसे बीसवी शताब्दी की हमने एक बड़ी उपलब्धि मानी है। प्राकृत भाषा और 'समयसार' के अनुचिन्तकों से सुझाव अपेक्षित है।

—आचार्य कुन्दकुन्द ने 'समयसार' (गाथा १५) मे 'गागर मे सागर' की कहा-वत को चरितार्थ किया है यानी—स्वल्पाक्षरो के द्वारा पारिणामिक तथा क्षायिक भाव को दर्शाया है—

जो भव्य आत्मदर्शी है वह जिनशासनदर्शी है—

जो पस्सदि अप्पाणं अवद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥

—आचार्य कुन्दकुन्द, समयसार, १।१५

सान्वय अर्थ—(जो) जो भव्य पुरुष (अप्पाणं) आत्मा को (अवद्धपुट्ठं) वंधरहित और पर के स्पर्श से रहित (अणण्णं) अनन्य-अन्यत्व-रहित (अविसेसं) अविशेष—विशेष-रहित—उपलक्षण से नियत तथा असंयुक्त (अपदेस)[1]— प्रदेशरहित—अखण्ड (संत)[2]— शान्त-प्रशान्त रस से आपूर्यमाण (मज्झं)[3]—अपने अन्दर (पस्सदि)—

शुद्ध ज्ञानचेतना का अनुभव करता है वह (सव्वं) सम्पूर्ण (जिण) केवली-प्रणीत (सासण) शासन-स्वसमय और परसमय को (पस्सदि) देखता है–जानता है।

---

१. **अपदेस**–अप्रदेश–निरंश, अवयवरहित ।

अपएस–अप्रदेश–प्रदेशरहितत्वे अवयवाभावात् निरंशे निरन्वये । अभिधान राजेन्द्र. –जो किसी का न तो प्रदेश है, न अवयव है, न अंश है और न किसी का अन्वय है । प्रत्येक आत्मा असंख्यात प्रदेशी, स्वतन्त्र और अखण्ड यानी अपने आप में पूर्ण है ।

परसमय वचन–

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत· सनातन. । गीता, १५।७

२. **संत**–शान्त–(प्राकृत तथा पाली में सत का शान्त । दंत का दात बनता है) । नव रसों में से एक (प्राकृत, पाली, अपभ्रंश, कन्नड, हिन्दी और मराठी कोश) ।
सता–शान्त–रूपा– बोध पाहुड –गा ५१
संत–शान्त (*Repose*) पाली धम्मपद; ७।७
सत–शान्त–रस, विशेषण: पाइअसद्दमहण्णवो, पृ. ८३९
उवसंतो–उपशान्त·; कार्तिकानुप्रेक्षा; गा. ३७७
उवसतोमि–उपशान्तोऽस्मि; प्रतिक्रमण, १२
उपसंतखीणमोहो; पचास्तिकाय, गा. ७०
संत–सज्जन; भगवती आराधना, गा. ६८, पृ. १६३
पसंतप्पा–प्रशान्तात्मा, प्रवचनसार, गा. २७२
जैन शौरसेनी में उपशान्त का उवसंत बन जाता है–आर. पिशल पैरा ८३
इच्छमि भंते। संति भत्ति। शान्ति भक्ति अचलिका
धम्म तित्थयर सत, प्राकृत जयमाला ।।५।।
प्रशान्तात्मने नम ; सिद्धचक्र पाठ। १३६
शुद्धं शिवं शान्तम्; सामायिक पाठ, अमित गति, २०
नम शान्ताय तेजसे; भर्तृहरि, नीति. १।१
शान्तो नि स्पृहनायक:; वाग्भट्टालकार, ५।३२
शान्तो रसो विजानीयाद्; संगीतसमयसार –४।१६९
जय परम शान्त मुद्रा समेत –हिन्दी
संत असंत भरम तुम्ह जानहु –तुलसी, रामायण, ७।१२१।३

३. मज्झं–में मइ मम मह मह मज्झ मज्झं अम्ह अम्हं ङ सा ।।८।३।११३।।
अस्मदो ङ् सा पष्ठयेकवचनेन सहितस्य एते नवाऽऽदेसा भवन्ति ।
–अभिधान राजेन्द्र कोश, भाग–६, पृ. ६३

'मज्झं' शब्द प्राकृत भाषा में उत्तम पुरुष सर्वनाम, षष्ठी विभिवित का एक वचन सम्बन्ध कारक बनता है तथा बहुवचन में 'मज्झाणं' है। (आर विशल, कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ दि प्राकृत लैंग्वेजेज' पैरा ४१५, मेवसमूलर भवन, न्यू डेल्ही) ।

४. 'पस्सदि'–जो पस्सदि–य: कर्ता पश्यति जानात्यनुभवति।
–समयसार, तात्पर्य. १।१५
(आत्मग्राहकं दर्शनमिति कथिते।)
–वृ द्रव्यस गा. ४४

स्थानक अर्थात् इमारत नहीं, आत्मालय

स्थानकवासी शब्द में स्थानक का अर्थ कोई मकान, इमारत या भवन नहीं है वरन् इसका वास्तविक अर्थ है–आत्मा का स्थान। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रमय जीवन ही आत्मा का स्थान है, इसमें निवास करने वाला ही स्थानकवासी कहलाता है।

□ उपाध्याय मधुकर मुनि

एक समय था जब जैन परम्परा की धारा अक्षुण्ण रूप में समग्र भारत मे प्रवाहित थी। श्रमण भगवान् महावीर से लेकर अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी तक यह स्वर्णयुग रहा, तत्पश्चात् जैन परम्परा दो उपधाराओं मे विभक्त हो गयी – दिगम्बर, श्वेताम्बर। जैन परम्परा की दिगम्बर धारा का श्रमण संघ विचरणार्थ दक्षिण की ओर चला गया और श्वेताम्बर धारा का श्रमण संघ उत्तर-पश्चिम की ओर विचरण करता रहा।

आगम-विहित विधि-विधान के अनुसार मर्यादा-चर्या एवं सुव्यवस्थित साधना के बल पर श्वेताम्बर धारा का सघ सर्वत्र पूजित गौरवान्वित होता रहा। जैनेतर समाज पर भी इस संघ का अच्छा प्रभाव बना रहा। साधु-जीवन की मर्यादाओं को अप्रमत्त सुरक्षित रखते हुए संघ के संत इतस्ततः सुदूरपूर्व विचरण करके जैनधर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते रहे।··· किन्तु एक ऐसा युग भी आया जब समय ने करवट ली, और शिथिलता पनपने लगी। साधना और स्वाध्याय मे निरन्तर संलग्न श्रमणवर्ग लोकैषणा की ओर झुकने लगा। वह स्वयं के लिए 'अणगार' शब्द का उपयोग करते हुए भी 'चैत्यवासी' बनने लगे। जिनभक्ति और जिनपूजा के नाम पर द्रव्य एकत्रित कराया जाने लगा। यन्त्र, तन्त्र तथा मन्त्र के माध्यम से वह अपनी पूजा-प्रतिष्ठा बढ़ाने मे व्यस्त हो गया।

श्रमणों के इस शिथिलाचार से युगयुगों से चली आती साधु-मर्यादा खतरे में पड़ गयी। जैनधर्म के वास्तविक सिद्धान्त तिरोहित होने लगे।

इस विषम स्थिति में एक ऐसी क्रान्ति की आवश्यकता थी जो श्रमणों मे पुनः शास्त्रसम्मत मर्यादाओ की प्रतिष्ठा करे और उसे अपनी पवित्रता के पुराने परिवेश में लौटाये। धर्मप्राण लोंकाशाह ने इस क्रान्ति का नेतृत्व किया। स्थानकवासी समाज इसी क्रान्ति की देन है।

'स्थानकवासी' नामकरण नया हो सकता है, किन्तु इसमें जो मर्यादा-व्यवस्था है वह शुद्ध सनातन साधु-संस्था का ही सही रूप है; अतः यह असदिग्ध है कि स्थानकवासी जैन समाज कोई नवीन स्थापना नहीं है अपितु चली आ रही महावीरकालीन साधु-संस्था का ही एक संस्करण है। 'स्थान' शव्द के साथ 'क' प्रत्यय जोड़ने से 'स्थानक' शब्द बनता है; तदनुसार 'स्थानक में जो वास करता है, वह स्थानकवासी है'।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि 'स्थानक' क्या है ? स्थानक यहाँ किसी मकान, भवन या इमारत का पर्याय नही है वरन् इसका अर्थ है 'आत्मा का स्थान' सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्‌चारित्रमय जीवन ही आत्मा का स्थान है, इसमे निवास करने वाला कहलाता है 'स्थानकवासी ।'

स्थानकवासी जैन समाज में साधु-संस्था को ही प्रमुखता दी गयी है । इस समाज का संचालन साधु-संस्था के आधार पर ही होता है, अत: इसका एक अन्य नाम 'साधुमार्गी' है ।

साधुओं का मार्ग साधु-मार्ग कहलाता है तदनुसार इस मार्ग पर चलनेवाले, इसे अपनानेवाले 'साधुमार्गी' कहलाते है । शास्त्रानुसार साधुमार्ग वह है जो विशुद्ध ज्ञान और क्रिया के साथ सम्यक्‌चारित्र मे आस्था रखता है; स्वभावत: इस मार्ग के अनुगामी साधुमार्गी कहे जाते है । इस तरह 'स्थानकवासी' और 'साधुमार्गी' दोनों शब्द एकार्थवाची है, इनके अलग-अलग अर्थ नही है । ध्यातव्य है कि स्थानकवासी जैन समाज के श्रमणवर्ग ने सदैव अपनी क्रिया-निष्ठा को सावधानी से सुरक्षित रखा है, इसीलिए इसकी प्रतिष्ठा समग्र भारत मे तथा अन्यत्र बढ़ी-चढ़ी रही है । किन्तु आज इस समाज के श्रमणवर्ग मे भी पुन: क्रिया-शैथिल्य और प्रमाद बढ़ने लगा है । जैनधर्म के प्रचार-प्रसार के मिस आज के साधुवर्ग मे विपरीत साधनो का उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, ऐसी स्थिति मे इस समाज का भविष्य क्या होगा, यह गभीरतापूर्वक विचारणीय है । □

प्रतिक्रमण/प्रतिलेखन

प्रतिक्रमण और प्रतिलेखन के
दीप जब तक निर्धूम और निष्कम्प
जल रहे है
आलोकित कर रहे है मेरे अभ्यन्तर के
ब्रह्माण्ड को !
कषायो के साप—
अन्धकार मे कुण्डली-आसन पर बैठ,
हमे कभी भी
भयाक्रान्त नही कर सकेंगे मेरे प्रभु !
तुम्हारा तेजोवलय
विष्णु का सुदर्शन बनकर
काट रहा है हमारे जन्म-जन्मान्तरो की
ग्रंथियो को,
निर्ग्रन्थ का मलय पुलकाकुल किये दे रहा है
प्राण-प्राण को;
तृष्णाओं का दावानल—
शान्त है, प्रशमित है,
प्रज्ञा-प्रसून खिल उठा है
हृदय की कुँआरी धरती पर !
एक नयी सृष्टि के जन्म का
शंखनाद सुन रहे है हम सब !

—रत्नेश 'कुसुमाकर'

समाज और सिद्धान्त

"सिद्धान्त-हीनता जैसे एक बहुत बड़ा खतरा है और अराजकता है, वैसे ही सिद्धान्त-विपर्यय भी एक भयंकर अभिशाप है। जहर को न समझना भयावह है; किन्तु ज़हर को अमृत मान लेना तो सीधा विनाश-पथ ही है।

□ मुनि मोहनलाल 'शार्दूल'

चीन के सुप्रसिद्ध संत कन्फ्यूशियस ने कहा है–'रक्त का विषाक्त हो जाना कोई बात नही; किन्तु सिद्धान्त का विषाक्त हो जाना सर्वनाश है।' इसी प्रकार भगवान् महावीर ने एक मर्मोद्घाटन किया है कि 'वे अन्धकार से और गहन अन्धकार मे प्रविष्ट होते है, जो मन्दबुद्धि है और हिसा में आसक्त है। वे मोह (अज्ञान) में डूबे हुए न आर रह पाते है, न पार पहुँचते है।' वैदिक वाणी है— 'दुर्बुद्धि ही मनुष्य को भटकाती है और पीड़ित करती है।' सभी बाधाएँ दुर्मति-जनित है। सन्मति के समक्ष कोई अड़चन नही ठहरती। विपत्तियाँ और विघ्न मूढ़ के लिए है, विवेकी के लिए नही। इन सब बातों से स्पष्ट होता है — सिद्धान्त का समाज के लिए बहुत बड़ा महत्त्व है।

मौलिक आधार

हर क्षेत्र मे सिद्धान्त एक मौलिक आधार है। सिद्धान्त के बिना किसी भी विषय में व्यवस्थित रूप से कार्य नही हो सकता। गणित, विज्ञान, ज्योतिष, काव्य, समालोचना, धर्म और राज्य आदि सभी के अपने-अपने दर्शन है, अपने-अपने सिद्धान्त है। सिद्धान्तहीन होने पर किसी का भी कोई स्वरूप नही रहता और न उसकी प्रामाणिकता रहती है। प्रामाणिकता विनष्ट हो जाने पर वस्तु ध्वस्त हो जाती है। हर क्षेत्र का स्थायित्व और विकास सिद्धान्त पर निर्भर है। छोटे-मोटे जितने कारखाने है, सब अपनी-अपनी व्यवस्था पर चलते है। उनकी व्यवस्था भंग हो जाए तो उनकी गति भी बन्द हो जाती है। संसार का 'सर्वस्व' प्राकृतिक और मनुष्य-निर्मित सिद्धान्तो पर टिका है। विज्ञान की इतनी समग्र प्रगति, उसकी सिद्धान्त परिपक्वता मे है। एक नियम के द्वारा ही अणुबम जैसी महान् विस्फोटक शक्ति मनुष्य के नियन्त्रण में है। उसका जो प्रकृतिगत विधान है वह न रहे तो वह कभी भी दुनिया को धूल में मिला दे।

भ्रान्त सिद्धान्त

सिद्धान्त-हीनता जैसे एक बहुत बड़ा खतरा है और अराजकता है, वैसे ही सिद्धान्त-विपर्यय भी एक भयंकर अभिशाप है। मिथ्या सिद्धान्त सब उलट-फेर कर

देते है। सिद्धान्तहीनता से भी सिद्धान्त-विपर्यास अधिक विनाशक होता है। ज़हर को न समझना भयावह है पर ज़हर को अमृत मान लेना तो सीधा ही विनाश का पथ है। ग़लत मान्यताओं और मिथ्या धारणाओ से समाज छिन्न-भिन्न हो जाता है। उसकी सारी सास्कृतिक कड़ियाँ ही टूट जाती है। सामाजिक पतन, सामाजिक विघटन और सामाजिक व्याकुलता, भ्रान्त सिद्धान्तो का परिणाम होता है। समाजोत्थान और समाज-कल्याण के लिए सिद्धान्तों का सही और आदर्शवादी होना वहुत जरूरी है। मिथ्या मूल्यांकन स्थापित होते ही समाज का ढाँचा विगड़ने लगता है। यह किसी से छिपा हुआ तथ्य नही है।

सिद्धान्तों की सही पहचान

समाज के प्रेय और श्रेय के लिए ऊँचे तथा उदार सिद्धान्तों की आवश्यकता है। महान् सिद्धान्तों के आधार पर ही कोई समाज तथा देश सर्वांगीण उन्नति कर सकता है। महान् सिद्धान्तों की पहचान यह है कि वे सर्वजनोपयोगी हों, अर्थात् सवके विकास, हित एवं उदय में सहायक हों। जिनसे विना भेदभाव सर्वसाधारण को लाभ पहुँचता हो। जो सिद्धान्त चन्द लोगों के हित में और शेष जनता के अहित मे हों; वे महान् सिद्धान्तों मे सम्मिलित नही किये जा सकते। ऐसे सिद्धान्त जो कुछ लोगों को अधिकार से वंचित करते है और हीन वनाते है, वे चिरकाल तक चल नही सकते। वे मानवता के लिए कलक होते है, उन्हे मिटाना पडता है। स्वार्थ-वृद्धि से विनिर्मित तुच्छ और परमार्थ-प्रेरित सिद्धान्त उदात्त होते है।

भारतीय संस्कृति की विशेषता

भारतीय संस्कृति की यह विशेपता रही है कि उसके सास्कृतिक दिव्य दृप्टाओं ने वहुत ही महान् और उदार सिद्धान्तो का निर्माण किया है। प्राणिमात्र के सुख की और हित की परिकल्पना की। **मित्ति मे सव्व भूएसु वैरं मज्झ ण केणइ**—हमारी सब के साथ मैत्री है किसी के साथ कोई वैर नही। **मित्रस्य चक्षुपा समीक्षामहे**—सबको मित्रता की दृप्टि से देखें। ये कितने व्यापक और महान् सिद्धान्त है।

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया.।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चन् दुख भाग् भवेत्॥

सब सुखी बने, सब नीरोग हों, सब कल्याण-मंगल पाये, कोई भी दुःखी न हो इस प्रकार की पवित्र और उदार भावनामय भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण सिद्धान्त है। इन्हीं श्लाघ्य सिद्धान्तो के बल पर भारतीय संस्कृति फूली-फली है; विश्व-पटल पर अपनी नैतिक छाप अंकित कर सकी है।

संकीर्ण सिद्धान्त

जब-जब संकीर्ण, भेदमूलक, स्वार्थरत सिद्धान्तों की रचना होती है, समाज टुकड़े-टुकड़े हो कर बिखर जाता है। एक समय था जब स्त्री शूद्रो नाधीयाताम्—

(शेष पृष्ठ १३५ पर)

महामन्त्र णमोकार : कुछ प्रश्न-चिह्न

"प्रश्न यह उठ सकता है कि उच्च पदधारी आचार्य और उपाध्याय अपने से नीचे पदवालो को कैसे नमस्कार करेंगे ? इसके अलावा क्या आचार्य, उपाध्याय अथवा साधु स्वयं को भी नमस्कार करेंगे, क्योकि 'सव्व' में तो वे स्वयं भी आ जाते हैं।

☐ प्रतापचन्द्र जैन

णमोकार मन्त्र महान् सुखकारी और शान्ति का ज्ञाता है, जो चारों ही जैन परम्पराओं को समान रूप से मान्य है। इस लोक में यही एकमात्र ऐसा मन्त्र है, जो सर्वव्यापी और सर्वहितंकर है, क्योंकि बगैर किसी भेदभाव के सभी महा-पुरुष इसमें आते है, जिन्होंने राग, द्वेष, काम आदि जीत लिये है और जो समूचे जग के ज्ञाता-दृष्टा है, भले ही फिर उन्हें बुद्ध, वीर, हरि, हर, ब्रह्मा, ईसा, अल्लाह किसी भी नाम से जाना जाता हो। स्व. डा. नेमिचंद्रजी, आरा ने तो अपनी खोजपूर्ण पुस्तक 'मंगल-मन्त्र णमोकार—एक अनुचिंतन' के आमुख में यहाँ तक लिखा है कि "इसमें समस्त पाप, मल और दुष्कर्मो को भस्म करने की शक्ति है। णमोकार मन्त्र मे उच्चरित ध्वनियों से आत्मा में धन और ऋण दोनों प्रकार की विद्युत्-शक्तियाँ उत्पन्न होती है, जिनसे कर्म-कलंक भस्म हो जाता है। यही कारण है कि तीर्थंकर भगवान भी विरक्त होते समय सर्वप्रथम इसी महामन्त्र का उच्चारण करते है। वैराग्यभाव की वृद्धि के लिए आये देव भी इसीका उच्चारण करते है। यह अनादि है। प्रत्येक तीर्थंकर के कल्प-काल में इसका अस्तित्व रहता है।"

प्रचलित णमोकार मन्त्र में निम्नलिखित पैंतीस अक्षर है और उसमें अरिहन्त से लेकर समस्त साधुओं तक को नमस्कार करने का विधान है:—

णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आइरियाणं। णमो उवज्झामाणं।
णमो लोए सव्व साहूणं।

इस अनुचिन्तन में स्व. डॉक्टर साहव ने विद्वत्तापूर्ण शैली मे यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि "पैंतीस अक्षरोंवाला यह मन्त्र समस्त द्वादशांग जिनवाणी का सार है। इसमे समूचे ऋतुज्ञान की अक्षर-संख्या निहित है। जैन दर्शन के तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य, गुण, पर्याय, नयनिक्षेप, आश्रव और बन्ध आदि भी इस मन्त्र मे विद्य-मान है।" स्व. डॉक्टर साहव ने इस मन्त्र को इसी रूप में अनादि बताया है, परन्तु आगे चल कर उन्होंने यह भी लिखा है कि "कुछ विद्वान् इतिहासकारों का अभिमत है कि साधु शब्द का प्रयोग साहित्य मे अधिक पुराना नही है और 'साहूणं' पाठ इस बात का द्योतक है कि यह मन्त्र अनादि नही है।"

इस शंका के समाधानार्थ आदरणीय डॉक्टर साहब ने लिखा है कि साधु भी परम्परागत अनादि है परन्तु इस आधार पर महामन्त्र के वर्तमान प्रचलित रूप को अनादि मान लेना सही लगता है क्योंकि –

(१) कलिंग सम्राट् खारवेल द्वारा निर्मित हाथीगुंफा पर जो लेख है वह पुरातत्त्व, प्राचीनता और इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उस लेख मे जो कि ब्राह्मी लिपि में है यह मंत्र केवल निम्नलिखित चौदह अक्षरों में अंकित है, प्रचलित पैतीस अक्षरों में नही :–

'नमो अर हंतानं। नमो सब सिधानं।" (जैन सन्देश—छठा शोधांक)

शिलालेख में उसके लेखन की तिथि नहीं मिलती; परन्तु इतना स्पष्ट है कि यह शिलालेख ई पू. दूसरी शताब्दी का है यानी, अब से दो हजार दो सौ वर्ष पुराना। हो सकता है, अन्य कुछ अक्षरो की भाँति इसकी तिथि भी भग्न हो गयी हो। इस मंत्र का इससे पुराना लेख शायद ही अन्यत्र कही उपलब्ध हो और यह रूप है भी ऐसा जो अनादि हो सकता है विद्वान् इतिहासकारों की शका से परे। इसकी लिपि भी प्राचीनतम ब्राह्मी है।

(२) मत्र को इस प्राचीन रूप में आचार्य और उपाध्याय भी जप सकते है, जब कि उसके प्रचलित रूप को लेकर प्रश्न यह उठ सकता है कि उच्च पदधारी आचार्य और उपाध्याय अपने से नीचे पदवालो को कैसे नमस्कार करेगे? इसके अतिरिक्त क्या आचार्य, उपाध्याय अथवा साधु अपने स्वयं को भी नमस्कार करेगे, क्योंकि 'सव्व' में तो वे स्वयं भी आ जाते है।

ऐसा लगता है कि मंत्र को प्रचलित वर्तमान रूप कालान्तर मे दे दिया गया। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि धीरे-धीरे क्षीण हो रही स्मरण-शक्ति के कारण जब श्रुतज्ञान घटने लगा तो तत्कालीन आचार्यो ने जिनवाणी की रक्षार्थ जो भी याद रह गया था, उसे प्राकृत भाषा में शास्त्रवद्ध करा दिया और ईसा बाद निर्वाण संवत् ६८३ में षट्खण्डागम् नाम के सूत्र-ग्रन्थ की रचना की गयी। (जैनधर्म, पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री; पृष्ठ २५६) इस मूल-ग्रन्थ मे महामन्त्र णमोकार मंगलाचरण के रूप मे प्रचलित पैतीस अक्षरों में सर्वप्रथम पाया जाता है। इससे पूर्व और आदि से यह मन्त्र हाथीगुफा के शिलालेख मे अंकित चौदह अक्षरों का ही रहा होगा। शायद इसी आधार पर स्व. डॉ. हीरालालजी ने आचार्य पुष्पदन्त को इस महामन्त्र का आदिकर्ता बता दिया हो। डॉ. हरीन्द्र भूपण जैन के मतानुसार भी श्रुत की हो रही विस्मृति से होनेवाली हानि को रोकने के लिए शास्त्रलेखन का कार्य वि. स. ५१० से पूर्व ही शुरू हो चुका था। (जैन अंगशास्त्र के अनुसार मानव-व्यक्तित्व का विकास; डॉ. हरीन्द्र भूषण जैन, पृष्ठ ११)।

यहाँ एक वात यह भी ध्यान देने योग्य है कि णमोकार मंत्र के साथ ही आगे वोले जानेवाले चार मंगलो (मंगली) में आचार्य और उपाध्याय का अलग से

उल्लेख न होकर उन्हे साधुओं में ही मान लिया गया और उनकी बजाय चौथे स्थान पर केवली-प्रणीत-धर्म को शामिल कर लिये जाने से पाथ इस प्रकार हो गया—

अरहंता मंगलं। सिद्धा मंगलं। साहू मंगलं।
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगरं।।

इस प्रकार इस महामन्त्र का आदि चौदह अक्षरों का ही ठहरता है।

यदि यह मान लिया जाए कि यह महामंत्र श्रावकों के जपने का है श्रमण तो श्रावकों को इससे संस्कारित करते है। स्व. ज्योतिषाचार्यजी ने भी लिखा है कि तीर्थंकर भगवान् (तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करनेवाले राजा का महापुरुष) भी इसका उच्चारण श्रावक अवस्था में ही विरक्त होते समय करते है, तब तो यह चाहे चौदह अक्षरों का रहा हो चाहे पैंतीस अक्षरो का हो, कोई अन्तर नही पड़ता। हमें तो कृतज्ञ होना चाहिये उस आचार्यो का कि मंत्र का यह संशोधन ऐसा अद्भुत और चमत्कृत करनेवाला हुआ कि यह केवल मन्त्र न रह कर द्वादशांगरूप एवं भाषा-विज्ञान का आधार भी बन गया है, जैसा कि स्व. डॉ. नेमिचंद्रजी, आरा ने अपनी अनूठी, अनुपम और खोजपूर्ण कृति में बड़ी खूबी के साथ सिद्ध किया है। □

(समाज और सिद्धान्त : पृष्ठ १३२ का शेष)

स्त्री और शूद्र को वेदज्ञान का अधिकार नही है; करार दे दिया गया था। ऊँच-नीच की भावना पर उठे इस सिद्धान्त ने समाज-भेद मे बहुत बड़ा पार्ट अदा किया और शेष में उसकी अवज्ञा-भावना को समाप्त करना पड़ा। इतना होने पर भी आज तक समाज को उसके कटुफल भोगने पड़ते है; इसलिए अणुव्रत-संहिता में एक नियम है कि मैं जाति-वर्ण के आधार पर किसी को अस्पृश्य या उच्च-नीच नही मानूंगा।

प्राचीन समय की भाँति वर्तमान में भी समाज में कुछ ऐसी मान्यताएँ स्थापित हो रही है, जो मनुष्य को उल्टी दिशा मे अग्रसर करती है। पैसेवाला ही बड़ा योग्य है—यह भ्रान्त धारणा समाज में बड़ी ही गर्हित और विपरीत भावना फैलाती है। धर्म और सदाचार के लिए तो यह कुठाराघात ही है। जब लोगों की दृष्टि द्रव्य पर टिक जाती है तब वे न्याय, अन्याय कुछ नही समझते। वर्तमान की गरीबी, भ्रष्टाचार, चोर-बाजारी, मिलावट आदि समस्याएँ इसी मिथ्या मान्यता की जड़ से फूटी है। इनका समाधान तभी होगा जब यह भ्रान्त धारणा समाप्त होगी। मनुष्य का मूल्य उसके सद्गुण और सद्व्यवहारो पर होगा।

हमारे मनीषी धर्माचार्य युग-युगो से समाज मे सही सिद्धान्तों की स्थापना के लिए सत्प्रयत्न करते रहे है और कर रहे है। सामाजिक क्रान्ति और कल्याण के लिए शोभन सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा बहुत जरूरी है। □

जैन संस्कृति : विश्व-संस्कृति की अन्तरात्मा

मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल'

संस्कृति मानव से जुड़ी हुई है। यद्यपि इस विराट् विश्व में मानव के अतिरिक्त देव-दानव, पशु-पक्षी आदि अनंत प्राणधारी है। उन सबकी नियत वृत्ति है, प्राप्त का भोग करना उनके जीवन का लक्ष्य है; लेकिन मानव की अपनी अनूठी विशेपता है। वह प्राप्त का भोग करने के साथ-साथ अपने विकास के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने का भी अधिकारी है। इसके लिए उसने जो सिद्धान्त निश्चित किये, आचार-विचार की प्रक्रिया स्वीकार की, चिन्तन-मनन किया, उन सबका समवेत नाम है– संस्कृति; अतः संस्कृति का अर्थ और उद्देश्य हुआ सुख, शान्ति, समता एवं समन्वय का संतुलित विकास।

अतीत में अनेक युग वदले, अभी वदल रहे है और अनागत मे भी वदलते रहेंगे; लेकिन संस्कृति के स्वरों में परिवर्तन नही आया है और न आने वाला है। वह तो अनिकेतन-अनगार की तरह अन्तर्मुखी होकर अहर्निश अपनी विशिष्ट कल्याणकारी परम्पराओं द्वारा सर्वजन सुखाय सर्वजन हिताय सक्रिय है–

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःखमाग् भवेत्॥

संस्कृति का लक्ष्य है 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का प्रसार करना। वह शरीर को भी स्वस्थ देखना चाहती है और आत्मा को भी वलिष्ठ। उसकी दृष्टि मे न तो तन उपेक्षणीय है और न मन अवगणनीय। उसे व्यक्ति का उदय भी इष्ट है और समष्टि का विकास भी; इसलिए अन्य शब्दों मे हम यो कह सकते है– संस्कृति अर्थात् सर्वोदय।

रूपरेखा, उद्देश्य, लक्ष्य मे अन्तर नही होने से यद्यपि संस्कृति के स्वरूप आदि में भेद-कल्पना सभव नही है; फिर भी वैदिक संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति आदि नामकरण होने का उन-उनकी दार्शनिक चिन्तन-मनन की विशेप पद्धतियाँ और उस पर आधारित आचार-व्यवहार की प्रक्रियाएँ है। यही दृष्टि जैन संस्कृति के नामकरण का आधार है। जैन संस्कृति यानी वीतरागता की संस्कृति, आत्म-पुरुषार्थ को जाग्रत करनेवाली संस्कृति, पुनर्जन्म के नाश के उपायों को वतानेवाली संस्कृति, लोकैपणाओं से अतीत निराकुल आनन्द का आदर्श उपस्थित करनेवाली संस्कृति।

अन्य संस्कृतियाँ जहाँ भोगप्रधान है, दैहिक जीवन मे अधिक सुख-सामग्री का भोग करना लक्ष्य है, वही जैन संस्कृति का ध्येय है निवृत्ति-परकता। इसमे त्याग पर सबसे अधिक वल दिया गया है। इसकी प्रत्येक क्रिया मे त्याग के वीज निहित हैं।

इसमें जो जितना अधिक त्याग करता है, उसका उतना ही ऊँचा स्थान माना जाता है। बड़े-बड़े सम्राटों को त्यागियों के समक्ष झुकते और गुणगान करके अपने को कृतकृत्य समझते हुए बताया गया है, न कि किसी योगी, त्यागी को भोगी की प्रशंसा करते हुए।

यह कहना तो सत्य है कि जैन संस्कृति मे निवृत्ति पर सबसे अधिक बल दिया गया है, लेकिन इसके अनेकान्त दर्शन की अनुयायी होने के कारण प्रवृत्ति को भी उचित स्थान प्राप्त है। प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों ही जीवन की दो विधाएँ हैं; जिनका उद्देश्य जीवन को पावन बनाना है। दोनों एक-दूसरे पर आश्रित है। प्रवृत्ति में भी निवृत्ति के तत्त्व निहित है और निवृत्ति में प्रवृत्ति के।

कोई भी समाज या व्यक्ति एकमात्र प्रवृत्ति की भूल-भुलैयों में जीवित रह कर वास्तविक निवृत्ति नही साध सकता। यदि वह किसी तरह की निवृत्ति को न माने और प्रवृत्ति-चक्र का ही महत्त्व समझे तो यह निश्चित है कि वह संस्कृति के सामान्य धरातल का भी स्पर्श नही कर पायेगा। यही स्थिति प्रवृत्ति का आश्रय लिये बिना निवृत्ति के निराधार आकाश मे रहनेवालों की होगी। दोष, बुराई, गलती से तब तक कोई नही बच सकता, जब तक वह दोष-निवृत्ति के साथ-साथ सद्‌गुणों और कल्याणमय प्रवृत्ति की ओर अग्रसर न हो। रोगी को स्वस्थ होने के लिए कुपथ्य-त्याग के साथ पथ्य-सेवन करना भी आवश्यक है।

दूसरी संस्कृतियो की तरह जैन संस्कृति के दो रूप है—एक बाह्य और दूसरा आन्तर। बाह्य रूप वह है, जिसको उस संस्कृति के अनुयायियों के अतिरिक्त दूसरे लोग भी आँख, कान आदि बाह्य इन्द्रियों से जान सकें, लेकिन संस्कृति का आन्तर रूप ऐसा नही है। आन्तर रूप अनुभूतिगम्य है। उसका साक्षात् दर्शन, आकलन तो वह कर सकता है जो उसे जीवन में तन्मय कर ले, आत्मसात् कर ले।

जैन संस्कृति के बाह्य रूप मे उन अनेक वस्तुओ का समावेश होता है, जो प्रकट है और जिनके लिए व्यक्ति की कायिक और वाचनिक प्रवृत्ति होती है। जैसे खान-पान, उत्सव-त्यौहार, भाषा-प्रयोग, दैनिक जीवन में काम आने वाले उपकरण, उपासना-विधि आदि। इनका आन्तर रूप के साथ संबन्ध होता है और अनुयायि-वर्ग उस प्रवृत्ति को करके अपनी निष्ठा भी व्यक्त करता है, लेकिन यह कोई एकान्तिक नियम नही है कि जहाँ और जब बाह्य अंग हो वहाँ और तब आन्तर रूप होना ही चाहिये, क्योंकि आन्तर रूप इतना व्यापक है कि किसी एक दो बाह्य अंगो से उसकी यथार्थता का अनुमान नही लगाया जा सकता।

इस स्थिति मे प्रश्न यह है कि जैन संस्कृति का आन्तर रूप क्या है? इसका उत्तर ऊपर दिया जा चुका है कि निवृत्ति निवर्त्तक धर्म जैन सस्कृति की आत्मा है। निवृत्ति के सामान्य अर्थ का भी संकेत किया गया है—'त्याग', लेकिन 'त्याग' शब्द में भी एक

रहस्य गर्भित है कि सुख जीवन-मात्र का स्वभाव है और वर्तमान जीवन में जो सुख प्राप्त हो रहा है, वह क्षणिक एवं पराश्रित है, अत. वास्तविक सुख प्राप्त करने के लिए लौकिक पदार्थो के प्रति मूर्च्छा का त्याग करना एवं आत्मज्ञानमूलक अनासक्त भाव की क्रमश. वृद्धि करके निराकारता मे रमण करना ; अर्थात् पुन. पुनः जन्म और देह धारण न करना पड़े , ऐसी साधना करना ।

जैन संस्कृति के उक्त आन्तर रूप, त्याग, निवृत्ति को ध्यान में रखकर अनादिकाल से अनेकानेक साधकों ने चिन्तन, मनन एवं आचरण द्वारा आचार और विचार के क्षेत्र में अन्वेषण करके जो सिद्धान्त निश्चित किये, उनमे त्याग-प्रत्याख्यान की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है । यदि गणना की जाए तो उनकी संख्या काफी बडी होगी और दृष्टिकोण की विभिन्नताओं से नानारूपता दीखेगी, लेकिन सामान्य रूप से सरलता से समझने के लिए जैन सस्कृति के मुख्यतः चार सिद्धान्त है : अहिसा, अपरिग्रह, अनेकान्त, आत्मा और कर्म का अस्तित्व ।

सामान्यतया अहिंसा का अर्थ है—'न हिंसा अहिंसा' यानी हिंसा न करना व प्रमाद और कषाय के वशीभूत होकर किसी भी प्राणी के प्राणों का हनन करना हिंसा है; अतः अहिंसा की स्पष्ट व्याख्या यह हुई कि प्रमाद एवं कषाय के वश स्व-पर के प्राणों का घात न करना, वियोग न करना; किन्तु रक्षा करना । प्राणों का वियोग सिर्फ शारीरिक और वाचिक प्रवृत्ति द्वारा ही नही; किन्तु वैर, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, लोभ, लालच आदि मानसिक विकृतियो द्वारा भी होता है । इन सब विकृतियो से निवृत्त होने का नाम अहिंसा है । यद्यपि अहिंसा मे त्याग का आशय गर्भित है, लेकिन अपने प्रवृत्तिमूलक दृष्टिकोण के द्वारा विश्व के समग्र चैतन्य को यह समानता के धरातल पर ला खड़ा करती है । समग्र जीवधारियो मे एकता देखती है, समानता पाती है, उन्हे जीवन जीने और सुख-प्राप्ति की कला सिखाती है ।

प्रत्येक युग मे आधिपत्य और आर्थिक एकाधिकार की प्रवृत्ति ने हिंसा को जन्म दिया है । अभाव, असमानता एव असतोष की अग्नि सुलगायी है । इसका एकमात्र कारण परिग्रह है । परिग्रह का अर्थ है – प्राप्त वस्तु पर स्वामित्व स्थापित करने के अतिरिक्त अप्राप्त अनुपयोगी वस्तुओं मे भी मूर्च्छा रखना, उनको अपना मान लेना, लेकिन विश्व के सम्पूर्ण भोगोपभोग के साधन धन, सम्पत्ति, वैभव पर न तो किसी का अधिकार हुआ है न होने वाला है और मान लो कि अधिकार हो भी जाए तो सबका उपयोग करना सम्भव नही है क्योंकि ऐहिक जीवन-काल परिमित है और वैभव आदि अपरिमित । इसलिए इस स्थिति का निराकुकरण करने का उपाय यही है कि अपरिग्रह-वृत्ति का अगीकार किया जाए । परिग्रह की धुरा का परित्याग करके अपरिग्रह के अनन्त आकाश मे विहार किया जाए, जिसका परिणाम होगा कि विश्व की समस्त संपत्तियाँ स्वमयमेव पाद-प्रक्षालन के लिए प्रतीक्षा-रत रहेगी ।

इस सारी स्थिति को समझकर ही जैन संस्कृति के सिद्धान्तों में अपरिग्रह की श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है कि मानव-समाज में धन, सम्पत्ति, वैभव का प्राधान्य न हो, जीवन का केन्द्र-चक्र केवल धन के पीछे घूमने लगे और मानवता की रक्षा एवं कल्याणकारी कार्यों की गति रुक न जाए, मानव अपनी पारमार्थिकता को समझे और तृष्णा के जाल से दूर रहे।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि व्यक्ति ने अपने एकांगी दृष्टिकोण से मूल्यांकन करके लोमहर्षक युद्धों में अपनी लिप्सा की पूर्ति की, फिर भी शान्ति नहीं हुई। दूसरी बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ के स्वरूप, गुण-धर्मों का निर्णय एक निश्चित दृष्टि से नहीं किया जा सकता। यदि उसके पूर्ण रूप को समझना है तो भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिन्दुओं से देखना-परखना होगा, इसलिए जैन संस्कृति के एकांगिक दृष्टियों का निराकरण करने, विविध और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली मान्यताओ का समन्वय करने, सत्य की शोध करने, संक्लेश को मिटाने और चिन्तन के विभिन्न आयामों व सिद्धान्तों को मुक्ता-माला के समान एक सूत्र मे अनुस्यूत करने के लिए अनेकान्त, स्याद्वाद को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करके घोषित किया है—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रह:।।

जैन संस्कृति किसी अलौकिक ब्रह्मलोक से आये हुए या में रहने वाले ईश्वर को विश्व के कर्ता-हर्ता और धर्ता के रूप मे न मान कर, ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुणों से युक्त स्वतन्त्र मौलिक तत्त्व आत्मा को कर्ता और भोक्ता मानती है। वह स्वयं कृत कर्मो के कारण ही सुख-दु:ख की अनुभूति करती है।

जैनों द्वारा मान्य आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व एवं कर्म-सिद्धान्त अन्य दार्शनिकों के सिद्धान्तों से भिन्न है। भूत-चैतन्यवादियों के अतिरिक्त शेष दार्शनिकों ने आत्मा के अस्तित्व को मानकर भी आत्मिक भावों और क्रियाओं को ही कर्म कहा है; जबकि जैनों ने भावों एवं क्रियाओं तथा उनके निमित्त से आत्मा के साथ संबद्ध होने वाले पौद्‌गलिक द्रव्य को भी कर्म माना है। यह संश्लिष्ट द्रव्य आत्मा के विकास में बाधा डालता है और संसार मे भ्रमण करता है; लेकिन कर्म-बन्ध नष्ट होने पर आत्मा मुक्त हो जाती है, पुनः संसार में भ्रमण नही करती है।

कर्मवाद का यह सिद्धान्त मानव को ईश्वर-कर्तृत्व एवं ईश्वर-प्रेरणा जैसे अन्ध-विश्वास से मुक्त करता है और आत्मा की स्वतन्त्रता का, स्व-पुरुषार्थ का ध्यान दिलाता हुआ इस रहस्य को प्रकट करता है कि प्रत्येक आत्मा मे नर से नारायण बनने की असीम शक्ति निहित है।

जैन सस्कृति के पूर्वोक्त सिद्धान्त अनादिकाल से जैन परम्परा मे मान्य है। तीर्थंकरों ने उपदेश द्वारा ही नही, आचरण द्वारा भी इन सिद्धान्तों को ओजस्वी

रूप दिया है तथा उत्तरवर्ती काल में श्रमण और श्रावक वर्ग भी उन आदर्शों को उत्प्राणित करने का प्रयत्न करते रहे है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक कठिनाइयो के वीच भी उन्होंने अहिंसा, संयम, तप, त्याग आदि आदर्शों के हृदय को संभालने का प्रयत्न किया है और जव कभी सुयोग मिला तभी त्यागी तथा राजा, मंत्री, व्यापारी आदि गृहस्थों ने अपने-अपने ढग से इसका प्रचार किया है।

परिणाम यह हुआ कि सिद्धान्तत. सर्वभूत दया को सभी के मानने पर भी जहाँ-जहाँ औ॰ जब-जब जैन लोगों का किसी-न-किसी प्रकार का प्रभाव रहा, सर्वत्र साधारण जनता मे प्राणि-रक्षा के संस्कार अत्यधिक प्रवल बने है। उनके आचार-विचार स्वयं की प्राचीन परम्पराओं एवं सांस्कृतिक सिद्धान्तों से बिल्कुल पृथक् हो गये। तपस्या के बारे मे भी यही हुआ कि जैन तपस्या की देखा-देखी उन्होने एक या दूसरे रूप में अनेकविध सात्त्विक तपस्याएँ अपनायीं। जन्मजात मास-भक्षी और मद्यपायी जातियो ने कुव्यसनों के रोकने में सहायता दी और वे स्वयं भी खुले आम मद्य-मास का उपयोग करने मे सकुचाती है; शिष्टता, सभ्यता के विपरीत समझती है। अनेकान्त एवं कर्म-सिद्धान्त की चर्चा का परिणाम यह हुआ कि कट्टर से कट्टर विरोधी सम्प्रदायों और दार्शनिकों ने अपने सिद्धान्त के विवेचन एवं लोक व्यवस्था और व्यवहार की यथार्थता को स्पष्ट करने के लिए इन्हे स्वीकार किया है, इनसे प्रेरणा ली है।

जैन संस्कृति का उद्देश्य मानवता की भलाई है और उसके सिद्धान्तों मे मानवीय भावनाओ का समावेश है; लेकिन कोई भी संस्कृति केवल अपने इतिहास एवं यशोगाथाओ के सहारे जीवित नही रह सकती है और न ही प्रशसनीय हो सकती है। यह तभी संभव है जब उसका अनुयायि-वर्ग तदनुरूप प्रवृत्ति करे, और प्राणि-मात्र के योग-क्षेम की ओर अग्रसर हो; अत. हमारा कर्तव्य है कि बाह्य-रूप के विकास द्वारा ही जैन-संस्कृति के सुरक्षित होने के भ्रम को त्यागकर अतीत की तरह वर्तमान मे भी उसके हृदय की रक्षा का प्रयत्न करें, उसे जीवन-वृत्ति का अभिन्न अंग बनाये। व्यक्ति व समाज का धारण, पोषण और विकास करनेवाली प्रवृत्तियों को स्वीकार करने एवं विकृत धारणाओं, कार्यो का त्याग करने में ही जैनत्व का गौरव गर्भित है। □□

'जो किसी से उधार ले आयेगा, उससे लेने के लिए भी वह आयेगा, इसी प्रकार तुम किसी के प्राण लोगे तो वह भी अवसर मिलने पर तुम्हारे प्राण लेगा। अगर तुम किसी के प्राण नही लोगे तो तुमसे कोई बदला लेने नहीं आयेगा। किसी भी प्रकार का वदला न चुकाना पड़े, ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाना ही मोक्ष कहलाता है।

—मुनि चौथमल

धर्म : उत्पत्ति और अस्तित्व

□ स्व. पं. 'उदय' जैन

धर्म, साधारणतया एक संप्रदाय, पंथ, सामुदायिक मान्यता और सामाजिक व्यवस्था के मानदण्ड के रूप मे व्यवहृत होता है। धर्म एक ऐसी व्यवस्था है, जो किसी मानव-समुदाय की कामनाओं की पूर्ति मे योग दे सके और तृप्त कर सके। उस-उस समूह की जीवन जीने या व्यवहार-निर्वाह की प्रणाली को भी धर्म कह सकते है। और शान्ति और व्यवस्थापूर्वक जीवन-यापन की कला का नाम भी धर्म है।

धर्म की अनेक व्याख्याएँ है। वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते है। जो धारण किया जाता है वह धर्म है। जिससे आत्मा की उन्नति और कल्याण की सिद्धि होती है, वह आचरण-प्रणाली धर्म कहलाती है। ये सब ठीक है। धर्म की पारिभाषिक व्याख्याएँ है। सभी धर्मो, मान्यताओं एवं विद्वानों की व्याख्याएँ भिन्न-भिन्न है। व्यवस्थाएँ पृथक्-पृथक् है और पालन-क्रियाएँ अलग-अलग है।

कई विद्वान् धर्म की उत्पत्ति भय के कारण मानते है। कई इच्छित लाभों की प्राप्ति के लिए धर्म का उत्पादन मानते है। सामान्यतया विशिष्ट महापुरुषों, अवतारो, अपौरुषेय शक्ति और भगवानों द्वारा प्ररूपित मानव-हितैषी मार्गो के रूप मे उत्पन्न धर्म माना गया है; अर्थात् तीर्थंकर तथा अवतारों ने धर्म की उत्पत्ति की है। ऋषियों, महर्षियो मसीहाओ, पैगंबरों आदि द्वारा धर्म-प्रवर्तन ऐतिहासिक सत्य है, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही है।

कहना न होगा कि सभी जीव जीना चाहते है। सभी में जिजीविषा है; जहाँ जीने की इच्छा है, वहाँ जीवन है और जीवन विस्तार के दृश्य भी आलोकित है। सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई पसंद नही करता अतः यह आवश्यक हो गया कि जीने मे एक जीव दूसरे जीव को अपना योग दे, सहकार करे। जब यह भावना जीवों में पैदा होती है धर्म के रूप का आविर्भाव होता है। किस तरह जीना और किस प्रकार का सहयोग देना इन विचारों से धर्म की उत्पत्ति का आभास मिलता है।

कई विद्वान् कहते है कि धर्म तीर्थंकरों और महापुरुषों द्वारा प्रवर्तित है, लेकिन वस्तुस्थिति यह नही है। जब जीव का युगल बनता है और युगलों से समाज-रचना होती है; तब से सहज ही उनको एक-दूसरे के साथ रहने, बसने, उठने, बैठने, सोने, खेलने, कूदने, हंसने, पढ़ने, लिखने एवं उत्कर्ष करने के लिए व्यवस्थाएँ देनी होती है। ऐसी व्यवस्थाएँ जो सहभावी सामाजिक जीवन-यापन के शान्तिपूर्ण अवसर दे सके, आगे जाकर धर्म कहलाती है। विनय, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, सत्य, ईमानदारी,

समय-प्रतिवद्धता आदि व्यवस्थाएँ धर्म के रूप में अवतरित हुईं। ऐसी व्यवस्थाओं में जब-जब विशृंखलताएँ पैदा होतीं है—शान्ति और अव्यवस्था फैलती है; तब महापुरुष उन्हीं सन्मार्गो का पुन. आव्हान करते है। वे मार्ग भी समय-समय पर धर्म वन जाते है; लेकिन भिन्न-भिन्न समय और क्षेत्र के ये रूढ़ मार्ग प्राय: अव्यवस्था और अशान्ति फैलाते है।

जीवो की सहज वृत्ति जीते रहने की है। अमर वनने की है। अमरता की भावना ने स्वर्ग की और उससे ऊपर मोक्ष की कल्पना कर डाली है। धर्म का विकसित रूप इसी से भासित होता है।

धर्म, समाज मे रहनेवाले प्राणियों की व्यवस्था और शान्ति बनाये रखने के निमित्त पैदा हुआ और प्रसारित होता आ रहा है। जहाँ-जहाँ पशु-समाज, पक्षी-समाज, जलचर-समाज और अन्य प्राणि-समाज तथा मानव-समाज है वहाँ सभी जगह जीवन जीने की कला के रूप में धर्म विद्यमान है। धर्मज्ञान और विज्ञान वर्तमान है; अत: कहना न होगा कि प्रत्येक प्राणी के जीवन जीने के साथ धर्म का प्रादुर्भाव निश्चित है। भगवान् महावीर ने इसीलिए 'परस्परोऽपग्रहो जीवानाम्' का मूल मंत्र फूंककर धर्म की व्याख्या की है।

धर्म की उत्पत्ति जिजीविषा एवं व्यवस्था तथा शान्तिमय जीवन जीने की कला के उद्‌गम के साथ अस्तित्व में आयी है।

जब तक किसी भी पृथ्वि-पिण्ड पर जीवन वर्तमान रहेगा; धर्म रहेगा। धर्म शाश्वत है, धर्म अविभाज्य है। धर्म सहभावी है। और धर्म जीवन का आधार है। जीव बिना धर्म नही है। अजीव बिना भी धर्म नही। जीव और अजीव के मिश्रण में धर्म है, धर्म या धर्म रहेगा। जीव और अजीव के पृथकत्व में भी सत्ता रूप धर्म कायम है, था और रहेगा।

धर्म की कैसी भी व्याख्या हो, धर्म के साथ कितने ही शब्द जोड़ दिये जाएँ, धर्म का कितना भी परिवर्तन कर दिया जाए, लेकिन धर्म के बिना जगत् की गति नहीं, स्थिति नही और परिवर्तन नही। उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्यमय सत् लक्षणवाले द्रव्य के अस्तित्व मे धर्म सदा वर्तमान है। मुक्ति की कल्पना और मुक्ति के स्वरूप में धर्म की स्थापना है।

धर्म का अस्तिकाय रूप को भी हम देखे तो लोक के सम्पूर्ण भाग मे वह वर्तमान है। धर्म का जो भेद हमने पंथ के रूप मे मान रखा है, वह धर्म का विकृत रूप है। ऐसे धर्म के कर्म, नियम आचरण और प्रवर्तन अलग-अलग होते है, लेकिन सब जीवो के जीवन से संबन्धित सही धर्म सब का एक है, अखण्ड अनादि तथा अनन्त है।

धर्म के अस्तित्व को कभी खतरा नही। खतरा है, धर्म के विकृत रूप और उस रूप के प्रचारको के अस्तित्व का। मानव-समाज के अखण्ड रूप को विभाजित करने वाले ऐसे धर्म बदलते रहते है और एक दूसरे को नष्ट करने के लिए मानवो का संहार तक करते रहते है। ऐसे धर्मो का बहिष्कार करना और सहभावी जीवनदायी धर्म का प्रसार करना हमारा परम कर्तव्य है। □

संवत्सरी : एक विचारणीय पक्ष

क्या यह संभव नहीं था कि पूरे जैन समाज की एक प्रतिनिधि सभा बुलाकर पर्युषण के संबन्ध में एक सर्वसम्मत निर्णय लिया जाता, जो हमारी सामाजिक एकता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण क़दम होता ?

□ सौभाग्यमल जैन

पूरे जैन समाज में पर्युषण पर्व का महत्त्व स्वीकृत है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे 'पर्युषण' तथा दिगम्बर सम्प्रदाय मे 'दशलक्षण' पर्व के नाम से विख्यात यह एक आध्यात्मिक पर्व है। इसके अन्तिम दिन क्षमायाचना की जाती है। अविस्मरणीय काल से मानव एक-दूसरे के प्रति अपनी की हुई भूल, अविनय, अपराध के लिए क्षमा की याचना करता तथा दूसरे को क्षमादान करता है। इस अत्यन्त कोमल भावना से परिपूर्ण आध्यात्मिक पर्व को मनुष्य जितने शुद्ध हृदय से पालन करे, उतना ही उसका कल्याण होगा यह संदेह से परे है, किन्तु वर्षो से इस पर्व ने भी एक रूढ़ि और औपचारिकता का स्थान ले लिया है। यही कारण है कि नाम पर भी मतभेद कायम है। जिस वर्ष अधिक मास होता है उस वर्ष पर्युषण कब मनाया जाए? यह प्रश्न चिन्तनीय हो जाता है। वैसे श्वेताम्बर परम्परा में ही संवत्सरी को कुछ समुदाय चौथ को तथा कुछ लोग पचमी को मनाते ही है। चतुर्थी तथा पंचमी का अन्तर तो प्रति वर्ष का ही है। यदि वास्तव में देखा जाए तो पर्युषण पूरे वर्ष मनाया जाए तो कोई हानि नही है, इसमें भला किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? किन्तु मनुष्य इतना आध्यात्मिक तो है नहीं कि पर्युषण पर्व-जसा व्यवहार पूरे वर्ष तक रख सके।

सामाजिक एकता के लिए यह आवश्यक है कि पूरा जैन समाज एक ही समय पर्युषण मनाये। यदि यह संभव न हो तो कम-से-कम यह तो किया ही जा सकता है कि श्वेताम्बर तथा दिगम्बर परम्परा अलग-अलग दिनों में मना लें, किन्तु इस वर्ष तो यह देखा गया कि श्वे. स्थानकवासी परम्परा में एकाध अपवाद को छोड़कर पूरे समाज ने एक समय ही पर्युषण मनाया। किन्तु श्वे. देरावासी समाज में किसी ने द्वितीय श्रावण मे किसी ने भाद्रपद मे पर्युषण मनाया। दिगम्बर परम्परा ने भी पर्युषण पर्व भाद्रपद में ही मनाया। यह सुखद विषय है कि स्थानकवासी समाज में द्वितीय श्रावण या भाद्रपद संवन्धी पुरातन मतभेद के बाद भी एकता के लिए अधिकतर साधु-मुनिराज ने द्वितीय श्रावण में ही पर्युपण मनाने का तय कर लिया। क्या यह सभव नही था कि पूरे जैन समाज की एक प्रतिनिधि सभा बुलाकर पर्युषण के संबन्ध में एक निर्णय लिया जाता, जो सामाजिक एकता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम होता, किन्तु अब तो पर्युषण मना लिये गये है अतः अव यह प्रश्न अतीत का हो गया है।

अगस्त १९७७ की 'अमर भारती' मे कविरल अमर मुनिश्री का एक अत्यन्त विश्लेपणात्मक लेख प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक है 'पर्युषण कब? एक चिन्तन'। उक्त लेख में श्रद्धेय मुनिजी ने शास्त्रीय उद्धरण तथा प्राचीन परिपाटी का विश्लेषण करके यह प्रतिपादित किया है कि चातुर्मास (वर्षावास) की परम्परा भगवान् महावीर ने ही प्रारंभ की थी। उनके पूर्व कोई परम्परा नही थी। महाविदेह क्षेत्र मे आज भी नहीं है। तात्पर्य यह है कि हमारी परम्परा में देशकालानुसार परिवर्तन होता रहा है। श्रद्धेय मुनिश्री के मतानुसार जैन मान्यता में अधिक मास का प्रश्न असंगत है। वर्षावास के

काल में अधिक मास नहीं माना जाता; किन्तु वर्षो से लौकिक मान्यता के कारण जैन समाज ने भी चातुर्मास काल मे वृद्धि मान लीं तथा यह विवाद उत्पन्न हो गया। मैं शास्त्रो का अध्येता नही, किन्तु एक साधारण वुद्धि का व्यक्ति होने के नाते यह जानता हूँ कि पृथ्वी या सूर्य (जो भी गति करता हो) वर्ष भर मे चक्कर लगाता है। वर्ष के काल को मानव ने सुविधा के लिए १२ भाग करके नामकरण कर दिये है। केवल यही नही उन १२ भागो के नाम भी निश्चित कर दिये वरन् १-१ भाग के ३०-३० भाग करके भी उनके नाम निश्चित कर दिये। यह सारी प्रक्रिया मानव-कृत है। यदि मास तथा दिन के नाम शाश्वत या किसी प्राकृतिक शक्ति द्वारा निश्चित किये होते तो भाषा-भेद के पश्चात् भी पूरे विश्व मे एक से नाम ही होते। मानव द्वारा निश्चित इन नामो के पीछे इतना विवाद अल्पबुद्धि मे नही आता नाम निश्चित कर्ता मानव को हम ज्योतिषी कह सकते है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है जैन ज्योतिष के हिसाव से श्रावण या भाद्रपद अधिक मास नही होता। शायद इस मान्यता के पीछे प्राचीन जैन ज्योतिष के विद्वानों अथवा आचार्यो को यह भय होगा कि आगामी काल मे मनुष्य अपनी मान्यता के प्रति अधिक आग्रह रखेगे और यह आध्यात्मिक पर्व भी विवाद का कारण वन जाएगा। इस कारण उन्होने यह व्यवस्था की कि चातुर्मास काल में श्रावण या भाद्रपद की वृद्धि नही होती है।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है सवत्सरी (श्वे. परम्परा) के संबन्ध मे ही चतुर्थी या पंचमी का विवाद प्रति वर्ष का प्रश्न है अभी बम्बई से प्रकाशित गुजराती 'जैन प्रकाश' के पर्युपणाक के पृष्ठ ५४२ पर एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें अहमदाबाद (गुजरात) मे आयोजित भारतीय पंचाग परिषद् द्वारा निश्चित ४० राष्ट्रीय त्यौहारों का विस्तृत समाचार पत्रो मे प्रकाशित होना वताया गया है। उस समाचार मे यह भी निर्देश था कि संवत्सरी भाद्र शुक्ल चतुर्थी को मान्यता दी गयी है। इस समाचार पर से भारतीय पंचांग परिषद् से पत्र-व्यवहार करने पर इसके अध्यक्ष का २१ जुलाई ७७ का पत्र गुजराती 'जैन प्रकाश' के सपादक को प्राप्त हुआ है उस उत्तर मे उन्होने स्पष्ट वताया है कि चतुर्थी तथा पचमी दोनो का उल्लेख हमने कर दिया है, किन्तु यदि प्राचीन शास्त्रीय उद्धरण हमे भेजे जाएँ तो हम ऐसा प्रयत्न करेगे कि जिससे निर्णय सर्वग्राही बन सके। उक्त समाचार मे निहित प्रश्न को गंभीरता से लिया जाना चाहिये तथा जैन समाज को गहराई से सोच-विचार कर एक तिथि निश्चित करना चाहिये ताकि भारतीय समाज तथा राष्ट्र के सन्मुख हम इस आध्यात्मिक पर्व के संवन्ध मे एक्य प्रकट कर सके। एक आदर्श, एक धर्माचार्य, एक सिद्धान्त के वाद भी हम अपने आध्यात्मिक पर्व के सवन्ध में अनाग्रही न वन सके यह हमारे लिए अत्यन्त हास्यापद स्थिति है। इस या ऐसे ही संदर्भो मे जव तक हम एक नही होंगे तव तक सरकार हमे नही मानेगी और इसी कारण इस महान आध्यात्मिक पर्व पर भी हम राष्ट्रीय अवकाश स्वीकृत नही करा सकेगे। मुझे स्मरण है कि संवत्सरी पर्व पर अवकाश न होने के कारण एक स्थान के श्वेताम्बर जैन समाज के एक सदस्य को एक फौजदारी मुकदमे के निर्णय के लिए उपस्थित होना पड़ा था तथा दुर्भाग्य से उसे कैद की सजा हुई थी परिणाम यह हुआ कि उनको सावत्सर प्रतिक्रमण (यदि किया हो) जेल के भीतर ही करना पड़ा होगा। इन सारी विषम परिस्थितियो मे कभी-कभी हृदय मे यह विचार आता है कि क्या अंग्रेजी ज्योतिष के हिसाव से निश्चित तारीख तथा महीने हम नही अपना सकते ताकि अधिक मास या तिथि वृद्धि-क्षय का प्रश्न ही समाप्त हो जाए। यदि हमारा नेतृत्व एक मत नही हुआ तो वह दिन दूर नहीं जव युवा-वर्ग उपयुक्त विचार को अपना समर्थन देने लगे। □

स्व. अयोध्याप्रसाद गोयलीय के
जन्म-दिन (७ दिस. १९७७) पर विशेष

गोयलीयजी : बेटे के आईने में

- आदरणीय ताऊजी और पिताजी दिल्ली मे एक साथ गिरफ्तार हुए। दादी ने अपने दोनों बेटोंको जी-भर कर आशीर्वाद दिया और कहा—"मैने तुम्हें इसीलिए (आज के लिए) जना था"। जनता ने जयजयकार की।

- **मुझे लिफाफे पर रखी दुअन्नी की बात समझ में नहीं आयी। दफ्तर में मैनेजर से बातचीत के दौरान पूछा तो उन्होंने बताया—"मंत्रीजी, व्यक्तिगत डाक में 'ज्ञानपीठ' का पोस्टेज खर्च नहीं करते हैं। दुअन्नी टिकिट के लिए दी है।**

□ श्रीकान्त गोयलीय

पूर्वज/जन्म

पिताजी का जन्म रविवार, ७ दिसम्बर १९०२ को बादशाहपुर (जिला गुड़गाँवा, राज्य हरियाणा) में हुआ था। आपके माता-पिता श्रीमती जावित्रीदेवी और श्रीरामशरणजी थे। खानदानी व्यवसाय बज़ाजे का करते थे। बाबा शास्त्रों के विद्वान् थे। शास्त्र की बारीकियाँ समाज को बताते थे। वे अपनी सरलता, सादगी एवं उच्च विचार के लिए विख्यात थे। जनश्रुति है कि वे दिगम्बरावस्था में जिन-दर्शन करते थे। दादी बहुत बहादुर, मेहमान-नवाज, मधुभाषी और कहानी कहने-गढ़ने मे बहुत प्रवीण थी। पिताजी ने अपने पूर्वजों एवं हमारे बाबा-दादी के गुणों को विरसे मे पाकर उन्हें और निखारा।

पिताजी जब ३॥ साल के थे, तभी बाबा का साया उनके सिर से उठ गया था। पुश्तैनी मकान और व्यवसाय को मजबूरन छोड़कर पिताजी और दादी कोसींकलाॅ (मथुरा) आगये। वहाँ पिताजी के मामा-मामी एवं नानी ने उन्हें बहुत स्नेह दिया। पिताजी के मामा लाला भगवन्तलालजी बहुत आन-बान के व्यक्ति थे। वे कोसी के श्रेष्ठ नागरिक थे।

अध्ययन

पिताजी की प्रारम्भिक पाठशाला चौरासी (मथुरा) थी। वहाँ आप गुरुजनों एवं विद्यार्थियों के बीच चरित्र के विलक्षण गुणों से सर्वप्रिय बन गये। हस्तलिखित पत्र 'ज्ञानवर्द्धक' के सम्पादक बने। यही पत्र आपके साहित्य रूपी वृक्ष का बीज बना।

गुरु पंडित उमरावसिंह न्यायतीर्थ ने उन्हें लेखनी और वाणी का आशीर्वाद दिया। चौरासी मे उन्होंने मध्यमा (संस्कृत-हिन्दी) तक का अध्ययन किया।

अनुभव : जीवन-सूत्र/प्रकाश-स्तम्भ

पिताजी अपने ननिहाल मे थे। उम्र १५-१६ वर्ष होगी। लालटेन मे तेल भर रहे थे। अंधेरा हो चला था। तेल की धार और लालटेन के मुहँ में जरा-सा मेल बिगड़ा। तेल जमीन पर फैल गया। किरासन तेल मात्रा के अनुपात मे फैलता ज्यादा है। मामाजी पास लेटे हुए थे। उन्हे ख़बर मिली तो लेटे-ही-लेटे धीरे-से कहा—"कमायेगा, तो नही गिरायेगा।"

पिताजी ने उसी समय संकल्प किया, कमाकर दिखाना है और अपनी कमाई का तेल भी गिराकर दिखा देना है। यह संस्मरण पिताजी अपनी जिन्दगी मे बहुत दफ़े दुहराते हुए कहते—"कमाना तो उसी समय से शुरू कर दिया था, लेकिन आज तक अपनी कमाई का तेल ज़मीन पर गिरा नही सका हूँ"।

जीविका/राजनीति में प्रवेश

अपने पूर्वजों के नाम को रौशन करने के लिए पिताजी दिल्ली आगये। बाबा की बुआ (बैरिस्टर चम्पतरायजी की बहन मीरो) के वात्सल्यपूर्ण निर्देशन में उन्होने एक छोटा-सा मकान लिया और बजाजे का पुश्तैनी कार्य संभाला। उनकी मिठास और ईमानदारी पर ग्राहक रीझे रहते थे। कारोबार चल निकला। सुबह-शाम सामायिक, स्वाध्याय और जिन-दर्शन उनका स्वभाव हो गया।

पहाड़ी धीरज (दिल्ली) में ताऊजी (श्री नन्हेमलजी जैन) के सहयोग से 'जैन संगठन लाइब्रेरी सभा' की स्थापना की और उसके मंच से सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक उत्सव किये। हिन्दी-उर्दू साहित्य एवं भारतीय इतिहास के उद्धरण उनके भाषणों में प्रवाह लाते। वे वाणी के जादूगर हो गये।

दिल्ली के पहाड़ी धीरज और चाँदनी चौक ने उन्हे अपना राजनैतिक नेता माना। चॉदनी चौक की विशाल जनसभा मे धाराप्रवाह भाषण दे रहे थे। 'देहलवी टकसाली जुबान और मौके के चुस्त शेर' भीड़ को भारतमाता की बेड़ियाँ तोड़ने पर जोश भर रहे थे। पुलिस-उच्चाधिकारी ने अदालत में कहा था—"गोयलीय साहब को सभा मे गिरफ्तार करना बहुत मुश्किल था। आप अवाम पर छाये हुए थे। पूरी भीड़ हम पर टूट पड़ती; अतः हमने मीटिग ख़त्म होने पर ही गोयलीयजी को गिरफ्तार करना मुनासिब समझा।"

आदरणीय ताऊजी (लाला नन्हेमलजी जैन) और पिताजी दिल्ली मे एक साथ गिरफ्तार हुए। दादी ने अपने बेटो को जी भरकर आशीर्वाद दिया और कहा, "मैंने तुम्हें इसीलिए (आज के लिए) जना था।" जनता ने जयजयकार की।

ताऊजी और पिताजी दिल्ली के प्रथम नमक-सत्याग्रही थे। दिल्ली में सबसे पहले नमक बनाकर उन्होने बेचा। महामना मालवीयजी ने स्वयं उनसे नमक ख़रीदा था।

पिताजी ने ३ साल की 'सी' क्लास बामशक्क़त कैद सहर्ष मंजूर की। जेल मे वे मूज बँटते, चक्की चलाते। छह माह पिताजी ने रोटी नमक और पानी से लगाकर खायी। उनके मौन सत्याग्रह पर जेल अधिकारियों का ध्यान गया। अलग से बिना प्याज की सब्जी बनने लगी। जेल मे समय का उपयोग अध्ययन में किया। सर इकबाल की 'बांगेदरा' और 'बालेजबरील' जेल में पढ़ डाली। अल्लामा इक़बाल का 'क़लाम-ओ-फ़लसफ़ा', उनकी भाषा, वाणी और जिन्दगी का ओढ़ना-बिछौना हो गया। मास्टर काबुलसिहजी और क़ौमी श्री गोपालसिंह उनके मौण्ट-गुमरी और मियाँवाली जेल के ख़ास साथियों में थे। शहीदों के शहीद भगतसिह की सीट पर पिताजी को १२ घंटे रहने का फ़ख्र हासिल है।

कारावास के अनुभवों को पिताजी ने अपनी कहानी की पुस्तकों 'गहरे पानी पैठ' 'जिन खोजा तिन पाइयां' 'कुछ मोती कुछ सीप' और 'लो कहानी सुनो' (सभी भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से प्रकाशित) में पिरोया है। ये अनुभव अब साहित्य की बहुमूल्य थाती है।

उनके जेल से छूटने का दिल्लीवासी बहुत बेताबी से इन्तज़ार कर रहे थे। भव्य स्वागत-योजना थी। कारावास पिताजी आत्मशुद्धि के लिए गये थे। जेल से वे चुपचाप घर आ गये। लाला शंकरलाल और श्री आसफअली घर पर मिलने आये। पिताजी के त्याग एवं देशसेवा की सराहना की। श्री देवदास गांधी ने गाँधी आश्रम नें पिताजी को सर्विस देनी चाही, किन्तु उन्होंने देशसेवा का मुआवज़ा स्वीकार नहीं किया।

उनका दिल्ली के क्रान्तिकारियों से बहुत घनिष्ट सम्पर्क था। अपने ओजस्वी विचारों से वे आजीवन कारावास जाने वाले थे। पार्लियामेन्ट में साइमन कमीशन पर बम फेंका जाएगा, इसकी जानकारी उन्हे बहुत पहले से थी। राजनैतिक शिष्यों में क्रान्तिकारी श्री विमल प्रसाद जैन और श्री रामसिह प्रमुख हैं।

वे श्री अर्जुनलालजी सेठी से बहुत प्रभावित थे। सेठीजी पर उनके लिखे संस्मरण ('जैन जागरण के अग्रदूत' भारतीय ज्ञानपीठ काशी) बहुत सजीव एवं मार्मिक बने है।

चाचा सुमत

उनका परिचय एवं स्नेह श्री सुमतप्रसादजी जैन से हुआ। उस समय वे सेंट स्टीफ़ेन्स कालेज के होनहार छात्र थे। वे अंग्रेजी-उर्दू कविता के बहुत बड़े प्रशंसक एवं पारखी थे। ग़ालिब और इक़बाल के दीवान उन्हे कण्ठस्थ थे। पिताजी

उनसे शेर सुनते थे। शेर सुनाते नही थे। उनके लिखे ख़तूत क़ीमती शेरों के ख़ज़ाने होते है। वक्त की बेबसी और परेशानी पर उनके पढ़े हुए शेर अपना सानी नही रखते है। उनके ख़त हमारे घर की धरोहर है। पिताजी ने 'शेर-ओ-शाइरी' उन्हीं को नजर की है। पिताजी ने अपनी उर्दू पुस्तकों और कथा-कहानी में जगह-जगह उनकी तारीफ की है। बेशुमार शानदार मुशाइरे आपके बँगले पर हुए है। अनेक शुअरा उनके दस्तरखान पर तोश फ़र्मा चुके है। उनकी कोठी पर महीनों मेहमान रहे है। उनसे पिताजी को अपने अनुज सा स्नेह रहा है। उनसे, चाचीजी (श्रीमती सत्या जैन) और अपने भतीजों से पिताजी को बेहद मोहब्बत थी।

ताऊजी : श्री नन्हेंमलजी जैन

'जैन संगठन सभा' ने एक और घनिष्ठ हितैषी दिया है। वे है ताऊजी लाला नन्हेमल जी जैन। पहले यह परिचय प्रगाढ़ प्रेम में और फिर भाई के रिश्ते मे परिणत हो गया। कुछ ही दिनों में दोनों दो शरीर एक प्राण जैसे सखा हो गये। शानदार दावत देने का उन्हे बहुत शौक़ था। वे बहुत बड़े मुन्तजिम थे। उनकी व्यवस्था हर तरह से मील का पत्थर होती। उनमे गजब की भविष्य-दृष्टि थी। वे बहुत उदार और सुन्दर थे। मेरे जन्म पर उन्होंने पहाड़ी धीरज पर बढ़िया दावत की थी। ख़र्च करने में उनका हाथ खुला हुआ था। सन् १९२५ से आज तक ताऊजी के परिवार से वही पारिवारिक रिश्ता निभ रहा है।

जैनेन्द्रजी

पिताजी से उनका परिचय सन् १९२५ से है। पिताजी के शब्दों मे— "जैनेन्द्रजी सभा में आते। हर विषय पर अपनी मौलिक राय देते। सभा मे बैठते लगता कोई बड़ा आदमी बैठा हुआ है। जैनेन्द्र की 'पर्सनेलेटी' बहुत ही शानदार है। जैनेन्द्र पर किसी का रौब गालिब नही होता। वह पैदायशी बडा आदमी है। वह गाँधी के पास हो गाँधी को अहसास होगा, सामने जैनेन्द्र बैठा हुआ है। जैनेन्द्र को क्रोध नही आता। जैनेन्द्र पहले एक शब्द पर कहानी, उपन्यास लिखने की क्षमता रखते थे, अब एक वाक्य शुरू का दूसरा व्यक्ति कहे और जैनेन्द्र जी उस पर उपन्यास, कहानी लिख देंगे। क्या ख़ूबसूरत ढंग से जैनेन्द्र अपनी कहानियाँ सुनाते है। हमेशा से देश-विदेश के बड़े आदमी जैनेन्द्र के पास आते रहे है। जैनेन्द्र ने मुझे हमेशा स्नेह दिया है। साहित्य में मुझे प्रोत्साहन दिया है। जैनेन्द्र-साहित्य को जैनेन्द्र की जुबानी सुनो तब उसका लुत्फ़ देखो। कैसा ही समारोह हो, जैनेन्द्र सब पर छा जाते है।"

पिताजी की तबियत मे बेहद मजाक़ रहा है। वे उन दिनों 'वीर' के सम्पादक थे। जैनेन्द्रजी की शादी हुई ही थी। पिताजी 'वीर' के लिए लेख लेने जैनेन्द्रजी के घर गये थे। जैनेन्द्रजी की पत्नी ने पिताजी को पहले कभी देखा नही था।

जैनेन्द्रजी की पत्नी ने पूछा–"कौन ?"

"चपरासी ! 'वीर' के लिए लेख लेना था।' पिताजी ने उत्तर दिया।

"वीर से चपरासी लेख लेने आया है," यह कहते जैनेन्द्रजी की पत्नी अन्दर गयी।

थोड़ी देर में जैनेन्द्रजी बाहर आये। पिताजी को देख हँसते हुए बोले— "अरे भई गोयलीय ! आओ, आओ। मजाक छोड़ो। अन्दर आओ।"

सन् १९४३-४४ मे पिताजी डालमियानगर मे नियम से अंग्रेजी चाचाजी से (परिष्कृत सुरुचि और स्वर के मालिक श्री नेमीचन्दजी जैन, एम. एस-सी., साहू जैन प्रतिष्ठान) पढ़ रहे थे। पढ़ाई की गति बहुत अच्छी चल रही थी। तभी श्री जैनेन्द्रजी डालमियानगर पधारे। बातों-बातों मे पिताजी ने कहा–"जैनेन्द्रजी, मै आजकल अंग्रेजी पढ़ रहा हूँ।"

जैनेन्द्र–"अंग्रजी, हरगिज मत पढ़ना।"

गोयलीय–"क्यों ?"

जैनेन्द्र–"क्लर्क होकर रह जाओगे।"

गोयलीय–"बहुत ठीक" (बात बहुत जँचने पर पिताजी यही कहते थे)।

उसी दिन से पिताजी ने अंग्रजी का अभ्यास छोड़ दिया। सन् १९४४ से १९६९ तक उन्होंने डालमियानगर में २५ पुष्पों से सरवस्ती की वन्दना की। यदि वे अग्रेजी के पठन-पाठन मे लगे रहते, संभवत. वे इस साहित्य-सृजन से वंचित हो जाते। इस साहित्य-सेवा का श्रेय वे बहुत हद तक जैनेन्द्रजी को देते। जैनेन्द्रजी के सम्मानित होने पर वे बहुत गौरव महसूस करते थे।

डालमियानगर में

१ अप्रैल १९४१ से ५ जुलाई १९६८ तक पिताजी साहू शान्तिप्रसादजी के प्रेमाग्रह पर डालमियानगर मे रहे। वहाँ आप श्रम कल्याण पदाधिकारी थे। दो-दो विशाल लायब्रेरी एवं श्रमिक एमनीटीज़ एवं मनोरंजन-विभाग के कार्य को उन्होंने बहुत कुशलता से निभाया। वे सास्कृतिक उत्सव (क्षमावणी-उत्सव, परिहास और मूर्ख-सम्मेलन), साहित्यिक उत्सव (तुलसी जयन्ती, रवीन्द्र-जयन्ती, कवि-सम्मेलन एवं कवि दरबार) एवं होली का जलसा करते। अब ये सब यहाँ की रीत हो गये है। सभी उत्सव निश्चित समय यानी 'गोयलीय टाइम' पर होते। 'गोयलीय टाइम' यहाँ मशहूर रहा है। सार्वजनिक निमन्त्रण, ऑफिस, फ़ैक्ट्री-गेट, क्लब मे लगा दिये जाते। उसे ही देखकर, पढकर सब अपने को निमन्त्रित समझते। जौक-दर-जौक लोग उत्सव मे आते। गोष्ठी मे सभी बाअदब और बातहजीब बैठते। सम्मेलन का संचालन इतने प्यारे ढंग से होता कि बीच मे से उठने का कोई नाम

नहीं लेता था। पिताजी के लतीफ़े, फड़कते शेर, जुमले, सभा में मस्ती का सरूर ला देते। सभा-संचालन में वे अपने सहयोगियों को आगे बढ़ाते। सारा श्रेय अपने सहयोगियों को देते।

'भारतीय ज्ञानपीठ'

सन् १९४४ में 'भारतीय ज्ञानपीठ (काशी) प्रकाशन' की स्थापना साहू-दम्पति से करवायी। पिताजी इसके १४।। वर्षो तक अवैतनिक मंत्री रहे। भारतीय ज्ञानपीठ और गोयलीयजी एक आत्मा की तरह रहे। स्वप्न में भी पिताजी को 'भारतीय ज्ञानपीठ' और उसके मासिक पत्र 'ज्ञानोदय' का हित और प्रसार दिखायी देता। हमेशा 'भारतीय ज्ञानपीठ' प्रकाशन-स्तर और पुस्तकों का मैटर गेटअप, बुक-शेल्फ़ में रक्खी अन्य सभी पुस्तकों से बेहतर हो, इसी की योजना और मेहनत होती। भारतीय वाङमय के मनीषी चिन्तकों ने पिताजी के सत्प्रयत्न की मुक्तकंठ से प्रशसा की। प्रकाशित पुस्तकों के लेखक अपने को धन्य समझने लगे। पुस्तकों की रॉयल्टी एवं तनख्वाह लेखकों तथा ज्ञानपीठ स्टाफ़ को निश्चित समय पर मिले, इस प्रयास मे वे हमेशा सफल रहे।

'ज्ञानोदय' मासिक पत्र भी पिताजी के सम्पादन मे प्रकाशित हुआ। श्रमण-संस्कृति का प्रतीक 'ज्ञानोदय' प्रबुद्ध जनता का डाइजेस्ट हो गया। 'ज्ञानपीठ' का 'सन्मति मुद्रणालय' पिताजी की भविष्य-दृष्टि ने खुलवाया। पिताजी ने अपने को हमेशा 'ज्ञानपीठ' का प्रहरी माना। इसे भाई साहब श्री अखिलेश जी शर्मा (सम्पादक 'नया जीवन' और 'विकास') की जुबानी सुनिये—

"सन् १९५३ मे भारतीय ज्ञानपीठ कार्यालय (काशी) का जाना हुआ। वहाँ गोयलीयजी डालमियानगर से पधारे हुए थे। गोयलीयजी अपने कार्यालय में थे। आराम का वक्त था। वे अपने बिस्तरे पर विश्राम कर रहे थे। उसी समय 'ज्ञानपीठ' के तत्कालीन मैनेजर आये। आदेशानुसार तकिये के पास रखा लिफाफ़ा और रखी हुई दुअन्नी उठा ली। मुझे लिफाफे पर रखी दुअन्नी की बात समझ मे नहीं आयी। कार्यालय मे मैनेजर से बातचीत के दौरान पूछा। मैनेजर ने बताया— "मंत्रीजी, व्यक्तिगत डाक मे ज्ञानपीठ का पोस्टेज खर्च नही करते है। दुअन्नी टिकट के लिए दी है।"

पिताजी ने नवम्बर १९५८ मे 'भारतीय ज्ञानपीठ' से इस्तीफा दे दिया। त्यागपत्र देने के बाद पिताजी ने ज्ञानपीठ के सभी मातहत स्टाफ एवं कर्मचारी (मैनेजर से चपरासी तक) को पत्र लिखकर उनके अथक सहयोग एवं परिश्रम की सराहना की; जिसमे उन्होंने अपने श्रम और अपनी सेवा को साधारण बताते हुए यह शेर लिखा था—

'यह चमन यूं ही रहेगा और हज़ारो जानवर।
अपनी-अपनी बोलियां सब बोलकर उड़ जाएंगे।।

सन् १९५९ मे वे सपरिवार मसूरी गये। सिन्ध पंजाब होटल (कुलड़ी) में एक माह रहे। वहाँ उन्होंने सेवोय होटल में 'कोल्ड-ड्रिंक' पिलवाया। महापंडित राहुलजी और डॉ. श्री सत्यकेतुजी से मिलाने ले गये। दोनों परिवार का हार्दिक स्वागत आज भी स्मृति-पटल पर अंकित है।

आदरणीय राहुलजी का स्नेह और प्रोत्साहन पिताजी को शेर-ओ-शाइरी से निरन्तर मिलता रहा है। राहुलजी ने दिल्ली की सार्वजनिक सभा मे (इसी) दिल्ली के अयोध्याप्रसाद गोयलीय की उर्दू शाइरी की खिदमत का जिक्र किया। "उर्दू अमर हो" शीर्षक से 'सरस्वती' में पिताजी पर लेख (सम्भवत: जुलाई-अगस्त १९५८) लिखा। अन्यत्र ग्रंथों में—यहाँ तक कि अपनी आत्मकथा मे भी—उन्होंने पिताजी की विशिष्ट मूक साहित्य-साधना का सहृदयता से उल्लेख करने की कृपा की है।

पिताजी राहुलजी का जिक्र हमेशा अदब के साथ करते। उन्होंने अपने 'शाइरी के नये दौर' ग्रन्थ को भेंट करते हुए लिखा है—

'श्रद्धेय राहुलजी,

उच्च शिखर पर स्वय ही नही बैठे, अपितु तलहटी मे भटकते हुओ को भी उबारते रहते है। आपकी महानता, मानवता और विद्वत्ता के प्रति 'शाइरी के नये दौर' के समस्त दौर श्रद्धापूर्वक सर्मपित—

है एक दरे-पीरे-मुगाँ तक ही रसाई।
हम वाद परस्तो का कहाँ और ठिकाना।।

उर्दू कैसे सीखी : पिताजी की जुबानी

"मेरे अज्ञात हितैषी !

न जाने इस वक्त तुम कहाँ हो? न मै तुम्हे जानता हूँ और न तुम मुझ जानते हो, फिर भी तुम कभी-कभी याद आते रहे हो। बकौल फिराक़ गोरखपुरी—

मुद्दते गुजरी तेरी याद भी आई न हमें।
और हम भूल गये हों, तुझे ऐसा भी नही।।

तुम्हें तो २७ जनवरी १९२१ की वह रात स्मरण नही होगी, जबकि तुमने मुझे अन्धा कहा था। मगर मै वह रात अभी तक नही भूला हूँ। रौलेट-एक्ट के आन्दोलन से प्रभावित होकर मई १९१९ मे चौरासी-मथुरा-महाविद्यालय से मध्यमा की पढाई छोड़कर मै आ गया था और कांग्रेसी-कार्यो मे मन-ही-मन दिल-चस्पी लेने लगा था। उन्ही दिनो सम्भवत २६ जनवरी १९२१ ई. की बात है, रात को चाँदनी-चौक से गुजरते समय वल्लीमारान के कोने पर चिपके हुए कांग्रेस के उर्दू पोस्टर को खड़े हुए बहुत से लोग पढ़ रहे थे। मै भी उत्सुकतावश वहाँ पहुँचा और उर्दू से अनभिज्ञ होने के कारण तुमसे पूछ बैठा—"बड़े भाई ! इसमें

क्या लिखा हुआ है ?" तुमने फ़ौरन दन्दान शिक़न जवाब दिया—"अमाँ अन्धे हो इतना साफ़ पोस्टर भी नही पढ़ा जाता।" जंवाब सुनकर मै खिसियाना-सा खड़ा रह गया। घर आकर गैरत ने तख्ती और उर्दू का कायदा लाने को मजबूर कर दिया।".

शाइरी से शौक़

पहाड़ी धीरज (दिल्ली) के जिस मुहल्ले मे रहते थे, वही शेरसिह 'नाज' रहते थे। उनके साथ पिताजी मुशायरो मे जाने लगे तथा शाइरी का शौक होने लगा। उन दिनों दिल्ली के गली-कूचो मे शाइरी का जोर था। वे भी उस रंग मे डूबने लगे। 'दास' तखल्लुस (उपनाम) से शाइरी करने लगे। उनकी शाइरी मन्दिरो एवं स्वागत-समारोहो में गायी जाने लगी। उनकी कविताओ का सकलन 'दास-पुष्पाजलि' बहुत पूर्व प्रकाशित हो चुका है (अब अप्राप्य)। उनकी रगो मे राष्ट्रीयता और जिन-भक्ति का लहू दौड़ा है। वे जन्मजात कवि थे और उर्दू शाइरी मे जीते थे। उनकी नज़्म का यह नमूना अपने आप मे बेमिसाल है—

'मकताॅ हैं बेमिसाल है और लाजवाब है।
हुस्ने सिफाते दहर मे खुद इन्तख्वाब है।
पीरी मे भी नमूनमे अहदे शबाब है।
गोयाके जैन कौम के एक आफ़ताब है।

यह नज्म पिताजी ने बैरिस्टर चम्पतरायजी जैन के लिए २१ फरवरी १९२७ को दिल्ली के स्वागतार्थ जलसे मे कही थी। बैरिस्टर साहब के सौन्दर्य एव दमकते हुए व्यक्तित्व को देखते हुए गोयलीयजी की उपमा 'पीरी मे भी नमूनमे अहदे शबाब हैं' का जवाब नही है।

उनका जीवन एक ऐसे तपस्वी और साधक का जीवन रहा है, जिसने जीवन मे आये झंझावात को चुपचाप सहा है, ऊसर-बीयाबान माहौल मे चुपचाप 'बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय' के साहित्य तक में हिन्दी कहानियाँ, अनुभव, सस्मरण एव उर्दू कविताओ का जल चढाया।

पिताजी अपने जीवन की संध्या मे भी यही कहते रहे 'अभी मै कलम ही माँज रहा हूँ।"

उनका प्रकाशित साहित्य

१ मौर्य साम्राज्य के जैन वीर, २. राजपूताने के जैन वीर, ३. 'दास'— पुष्पाजलि, ४. शेर-ओ-शाइरी, ५. शेर-ओ-सुखन (५ भाग), ६. शाइरी के नये दौर (५ भाग), ७. शाइरी के नये मोड़ (५ भाग), ८. नग्मये हरम, ९. उस्तादाना कमाल, १०. हँसो तो फूल झडे, ११. गहरे पानी पैठ, १२. जिन खोजा तिन पाइयाँ, १३. कुछ

मोती कुछ सीप, १४. लो कहानी सुनो, '१५. जैन जागरण के अग्रदूत, १६. मुग़ल बादशाहों की कहानी ख़ुद उनकी जबानी।

प्रथम तीन पुस्तकें सन् '३० से पहले दिल्ली से प्रकाशितम हुई थीं जो अब अप्राप्य हैं। 'शेर-ओ-शाइरी' से लेकर 'जैन जागरण के अग्रदूत' तक सभी पुस्तकें 'भारतीय ज्ञान पीठ' काशी से प्रकाशित हुई है तथा अप्राप्य है।' मुग़ल बादशाहों की कहानी वाली पुस्तक विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित हुई है।

अप्रकाशित पाण्डुलिपियाँ

१. शराफ़त नही छोडूँगा; २. हैदराबाद दरबार के रहस्य; ३. पाकिस्तान के निर्माताओं की कहानी ख़ुद उनकी जबानी; ४. उमर ख़ैय्याम की रुबाइयात; ५. वेदाग हीरे—विषयवार अशआर (२ भागों मे)।

उनकी ग्रन्थ-भूमिकाओं के लेखक

१. रायबहादुर गौरी शंकर हीराचन्द ओझा — 'राजपूताने के जैनवीर'
२. श्री विशेश्वरनाथ 'रेऊ' — 'मौर्य साम्राज्य के जैन वीर'
३. श्री जैनेन्द्रकुमार — 'कथा-कहानी और संस्मरण' ('गहरे पानी पैठ' का पूर्व नाम.)
४. महापंडित राहुल सांकृत्यायन — 'शेर-ओ-शाइरी'
५. डा. अमरनाथ झा — 'शेर-ओ सुख़न (भाग १)'
६. श्री क. ला. मि. प्रभाकर — 'जैन जागरण के अग्रदूत'

पुरस्कार/सम्मान

१. 'शेर-ओ-शाइरी', 'शेर-ओ-सुखन' तथा 'कुछ मोती कुछ सीप' उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत।
२. 'मुगल वादशाहों की कहानी ख़ुद उनकी ज़ुबानी' हरियाणा राज्य द्वारा पुरस्कृत।
३. हरियाणा राज्य में उनकी मूक साहित्य-सेवा के लिए चण्डीगढ मे सार्वजनिक अभिनन्दन (दुशाला ओढ़ाकर एव ५०० रु. भेट-स्वरूप देकर) किया। उस स्वागत-समारोह मे उन्होंने अपने स्वागत का जवाब देते समय कुछ वाक्यो मे यह भी कहा था—

'क्या हमारी नमाज, क्या हमारे रोजे।
बख्श देने के सौ बहाने है।।'

४. स्वतंत्रता-सेनानी होने से केन्द्रीय सरकार एव उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ताम्र-पत्र से सम्मानित किया।

पिताजी पत्रो का उत्तर तत्काल देते थे। पत्र की भाषा स्पष्ट, किन्तु सहृदयतापूर्ण होती थी। वे अपनी सीमा-परिधि लिखने में तनिक संकोच नही करते

थे। 'मैं शतरंज खेलता हूँ, ताश नहीं' यह उनका खास मुहावरा उनके पत्रों मे साफ़ झलकता है।

उन्हे अच्छा पहनने और बढ़िया खाने-पीने का शौक़ था। अचकन-चूड़ीदार पायजामे मे उनका व्यक्तित्व उभर जाता। लगता हुजूर कोई शेर कहेंगे। खद्दर के कुर्ते और महीन धोती मे उनका सौम्य और सुन्दर शरीर एक दिलेर रईस की शोभा बढाता। उन्हे असग़र अली (लखनऊ) के हिना का ख़ास शौक था। उसका फ़ाया वे कान में जरूर लगाते।

उन्ह उड़द की दाल, भरवाँ आलू, मटर-गोभी, काबली चने, पालक-बथुए का साग और बेसनी रोटी बेहद पसन्द थी। फलो मे संतरा और आम की पसन्द थी। तेज मसाले का समोसा हो, धनिये की चटनी हो, मूग की दाल का हलवा हो, टमाटर-सतरे का सैंडविच हो और रेडियो पर सुरैया-शमशाद के नग्मे हों और गोयलीय के लाड़ले बेटे हों फिर गोयलीय साहब उस महफ़िल के पीरे-मुँगा हो जाते। बच्चों को लतीफे, किस्से, शेर, अपने दोस्तों के टोकरो भर के गुण और एहसानात इस तरह से सुनाते, लगता घर मे शहनाई बज रही है। बातचीत मे हमारी अम्मा शेर और जुमले कहती तो हम लोग कहते--'पिताजी बेअदबी माफ़, आप भी हजरत दाग़ और सुदर्शनजी की तरह अपनी साहित्यिक दुनिया मे अम्मा से शेर, लतीफ़े और मुहावरे के लिए अम्मा से सलाह लीजिये'। इस पर पिताजी मुस्कराते हुए अपने ख़ास अन्दाज मे कहते, 'हाँ भाई! बेटे तो आखिर अपनी माँ के हों'। हमारी माँ ने हमारे पिताजी को पूर्ण बताया। अम्मा ने पिताजी की चादर को हमेशा बडा बताया। पिताजी के घर को हवेली बना दिया। पिताज़ी ने आज तक अम्मा के रहते अपने हाथ से एक गिलास पानी नही पिया। पिताजी के वस्त्रों को माँ बडे चाव से धोती। उनकी सेवा करती। उनके लिए व्रत-त्यौहार करती। उफ्, हमे क्या मालूम था, अम्मा पर उनके बिछोह की मार पडेगी।

पिताजी स्वाभिमान की अन्तिम पक्ति थे। दर्द का यह शेर—

तरदामनी पे शेख हमारे न जाइयो।
दामन निचोड़ दे तो फरिश्ते वजू करे।।

उनके जीवन पर सही उतरता है। उन्होने अपने अत्यन्त सीमित साधनो मे पाँचो बच्चों को उच्च शिक्षा दी, बच्चों का अच्छी तरह से विवाह किया, मकान बनवाया।

सर्विस से निवृत्त होने के बाद, ६ वर्षों तक सहारनपुर की रौनक बढायी। खानपान, रहन-सहन का वही ऊँचा स्तर। कही तबियत मे तंगदिली नही। मेहमानो की चरणधूलि पडते देख उसी तरह से चहकना, सत्कार करना पिताजी का स्वभाव था। पिताजी ने कभी भी महंगाई नही गायी। उनके ४ में से ३ लड़के अच्छी

तनख्वाह पाते थे, किन्तु कभी लड़कों से एक पैसा नही लिया; बल्कि हमेशा उन्हें देते ही रहे।

उनके जीने मे एक सलीका था, एक तरीका था। उनकी हर चीज़ व्यवस्थित होती थी। उनकी रखी हुई चीज अँधेरे में मिल जाती। उनका ट्रंक लगाना अपने आप में निहायत खूबसूरत उपमा थी। इस खूबसूरती पर चचा प्रभाकर रीझ गये और 'गोयलीय का ट्रंक; एक सलीका : एक तरीका' संस्मरण लिखा। दिनकरजी ने ठीक ही कहा था, "ब्रह्मा ने गोयलीय को बनाकर, उस साँचे को ही तोड़ दिया।" (बन्धुवर केदार के माध्यम से सुना)।

वे मीर, गालिब, मोमिन, इक़बाल और असर लखनवी के शेर अपनी बातचीत में 'कोट' करते थे। व्यथा पीर की और जबान की सुथराई हज़रत दाग की उन्हे पसन्द थी। वे अपने जबाने-मुबारक़ से शेर पढ़ते तो शेर का एक-एक लफ्ज फूल की जगह फूल और बिजली की जगह बिजली बरसाता।

वे १२ घंटे प्रतिदिन कुर्सी-टेबुल पर बैठकर लिखने की क्षमता रखते थे। न कोई अदा, न कोई नख़रा। बिसमिल्लाह का दादरा बज रहा हो, इक़बाल के नग्मे गूंज रहे हों; सहगल, शमशाद, सुरैया के तराने फ़जॉ में तैर रहे हों, पिताजी जेठ की दुपहरी में लिखे जा रहे है। बच्चे शोर मचा रहे है, उन्हे पता नही अगल-बगल क्या हो रहा है। जेठ की चिलचिलाती धूप गर्मी मे इस शेर पर—

यह भीगी रात, यह ठंडा समाँ, यह कैफ़े बहार।
यह कोई वक्त है, पहलू से उठके जाने का ?—दिल शाहजहाँपुरी

दाद देते हुए कहते हैं, "हजरते दिल का शाइराना कमाल देखिये कि उक्त शेर मे न तो वस्ल और बोसो-कनार के अल्फाज़ आये है न कही छेड़छाड़ है, न कोई पोशीदा राज की तरफ़ इशारा किया है। फिर भी शेर मुह बोलती तस्वीर बन गया है। पढ़ते हुए महसूस होता है, मसूरी में शानदार कोठी मे ठहरे हुए है, और माशूक पहलू में है। धीमी-धीमी फुहारें गिर रही है, चाँदनी खिली हुई है और रेशमी रजाई मे लिपटे पडे है। अचानक माशूक़ उठकर जाने का खयाल जाहिर करता है तो उसके इस भोलेपन पर अनायास मुह से निकल पड़ता है—

यह कोई वक्त है, पहलू से उठके जाने का ?"

उस्ताद असर लखनवी के इस शेर पर—

हम उसी को ख़ुदा समझते है।
जो मुसीबत मे याद आ जाए।।

उन्होने लिखा—"खुदा की तलाश मे लोग वनों-पर्वतों की ख़ाक़ छानते है। मन्दिरो-मस्जिदों मे भटकते है। मगर खुदा नही मिलता। अगर किसी को मिलता भी है तो वह उसे पहचानता नही और इस तरह उसके दर्शनेच्छु दुनिया मे भटकते

हुए अपनी जिन्दगी बरबाद कर देते है। ऐसे ही भटके हुए लोगों के लिए देखिये 'असर' खुदा की कितनी आसान पहचान वताते है।"····

उनके वोलने-चालने का एक खास तरीका था। जिस दुकान में जाते दुकानदार आपको वहुत इज्जत से वैठाता। उसकी कुशल-क्षेम पूछते। पुरलुत्फ वात कहते। दुकान में सभी लोग मस्त हो जाते। महीने का सारा सामान एक वार खरीदते। भुगतान नगद करते। मोल-भाव मे आप ज्यादा विश्वास नही करते थे। वे दुकानदार की भावना का बहुत ध्यान रखते थे। उधार से पिताजी को सख्त नफरत थी।

सहारनपुर मे रिक्शे से जाते समय स्कूटर से पिताजी के हाथ में वहुत चोट आयी। उस समय भी उन्होंने स्कूटर वाले का मुंह नहीं देखना चाहा और उस अनजान व्यक्ति को क्षमा कर दिया। उनका कहना था—'स्कूटर वाले को देखकर मैं क्यों अपने परिणाम बिगाड़ता।'

उनकी पुस्तके जब छपकर उनके सामने आती, प्रत्येक पुस्तक को अपने सामने २-३ दिन तक रखते और उसे वीसों बार उलट-पलटकर देखते। किताब की अशुद्धि, भूल, गेटअप, वाइंडिंग, प्रिंटिंग इत्यादि सभी चीजों पर फिर से विचार करते। अशुद्धि को तत्काल दुरुस्त करते। शब्दकोश देखने मे जरा भी विलम्ब नही करते। उन्हे ग्रन्थ-प्रकाशन एव प्रिंटिंग प्रेस का वहुत अच्छा ज्ञान था। इस मामले मे श्रीकृष्णप्रसादजी दर को अपने से बीस मानते थे।

वे बोलते, वातावरण सुवासित हो उठता। बच्चे सही भाषा बोलें, मुहावरों और व्याकरण का शुद्ध उपयोग हो, शब्दो का चयन सुन्दर हो, व्यर्थ का शब्द-पलोथन न हो, इसका वे वहुत ध्यान रखते। बच्चो को वढिया फिकरा, लतीफ़ा, मुहावरा सुनाने पर नगद इनाम देते थे। बच्चे की तारीफ़ सबके सामने करते।

उनकी वोली मुहब्बत की वोली थी। जो उनसे एक बार मिला, वह उनका हो गया।

वे/और वे

श्री विष्णु 'प्रभाकर' के शब्दो मे, "जिस काम के लिए जरा भी सकेत किया कि काम पूरा हो गया। ऐसे जन विरले होते है। कहां मिलेगे अव ? सचमुच वे सब कुछ स्वान्त सुखाय करते थे।"

काका हाथरसी की निगाह मे, "उर्दू हिन्दी के सितारे थे, परमप्रिय हमारे थे।'

श्री यशपाल जैन की भावना मे, "· गोयलीयजी मे अनेक दुर्लभ गुण थे। वह वहुत ही स्पष्ट वक्ता, परिश्रमशील और मिलनसार थे। जिन्दगी उन्होंने बड़े स्वाभिमान

(शेष पृष्ठ १६१ पर)

'जब गोम्मटसार प्रकाशित हुआ' ....किन्तु अब ?

☐ लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रेस के तकनीकी विकास के साथ ही धर्म-ग्रन्थो के जीर्णोद्धार की समस्या प्राचीन-काल जैसी नही रही; किन्तु आश्चर्य है कि जिन कठिन परिस्थितियों मे आज से प्रायः ५५ वर्ष पूर्व 'गोम्मटसार' तथा 'लब्धिसार' जैसे सिद्धान्त-ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ, वे अब और भी उलझी हुई प्रतीत होती है। इन ग्रन्थों को जैनधर्म के सिद्धान्तों का किला कहा जाता है। यत्र-तत्र गणित के प्रतीकों से गुँथी हुई भाषा ही इनकी किलेबन्दी है जो 'षट्खण्डागम', 'महाबन्ध' और 'कषायप्राभृत' की परम्परानुवंशी है। सभवतः इनकी सामग्री 'काइबर्नेटिक्स' (जो समस्त विज्ञानों का विज्ञान है) को अंशदान दे सकती है। इनके गणितीय सौदर्य की तुलना श्रमणबेलगोल की गोम्मटेश्वर मूर्ति-कला के शिल्प-शौर्य से ही हो सकती है; अतएव इन ग्रन्थों का प्रकाशन भी एक चुनौती ही है, जिसे कोई भी प्रकाशक स्वीकार नही कर सका। इनमें प्रतीकों की भरमार है और सैकड़ों पृष्ठ गणितीय सामग्री और प्रतीकों से पूरी तरह आच्छादित है। फिर जिन पण्डितों ने इस प्रकाशन-कार्य को हाथ मे लिया और उन्हे शुद्ध रूप मे पवित्र प्रेस के पवित्र साँचों में ढालने में सफलता प्राप्त की, उनकी कहानी इस लेख के साथ जोड़ना अप्रासंगिक न होगा। उनकी साहसिक गाथा ग्रन्थ-प्रस्तावना मे अंकित है।

ग्रन्थ-परिचय : 'गोम्मटसार' में मूल प्राकृत गाथा आचार्य श्री नेमीचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती-कृत व संगृहीत (७३३ जीवकाण्ड, ९६२ कर्मकाण्ड श्लोकमय) है। गाथा के नीचे संस्कृत छाया, उसके नीचे केशव वर्णी-कृत 'जीव तत्त्वप्रदीपिका' नाम की संस्कृत टीका, उसके नीचे अभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती-कृत 'मंद प्रबोधिका' नाम की संस्कृत टीका ('ज्ञान मार्गणा' के कुछ अंश तक) और उसके नीचे (पं. श्रीलाल के अनुसार) प्रसिद्ध भाषा टीकाकार श्री पं. टोडरमलकृत ५०००० श्लोकमय भाषा-वचनिका है (पं. हुकुमचन्द्र भारिल्ल के अनुसार यह ३८००० श्लोकमय है।) यह ग्रन्थ ५० पौंड के पवित्र देशी कागज में बड़े, मध्यम, सब तरह के टाइपों में पवित्र प्रेस में जीवकाण्ड २ खण्ड तथा कर्मकाण्ड २ खण्ड में प्रकाशित हुआ। जीवकाण्ड में १३२९ पृष्ठ (प्रत्येक २९× २० सें.मी.) तथा कर्मकाण्ड १२०० पृष्ठ (प्रत्येक २९× २० सें.मी.) और 'अर्थ संदृष्टि' ३०८ पृष्ठ (प्रत्येक २९× २० सें. मी.) साइज में प्रकाशित किये गये। उस समय (लगभग १९१९ ई.) इनकी लागत प्रकाशन का खर्च प्रायः १४२८० रु. वी. नि. से. २४४६ तक आ चुका था। प्रकाशित प्रतियों की संख्या इस प्रकार थी—

जीवकाण्ड : प्रथम खण्ड ४५६; द्वितीय खण्ड १२६०

कर्मकाण्ड . प्रथम खण्ड १४९२; द्वितीय खण्ड १५००

उक्त संख्या वतलाती है कि प्रकाशक का संघर्ष आर्थिक और सामाजिक रहा होगा।

इसी प्रकार 'लब्धिसार' मे मूल प्राकृत गाथा आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत व संग्रहीत (६४९ श्लोकमय) है। गाथा के नीचे संस्कृत छाया, उसके नीचे केशव वर्णी कृत 'जीवतत्त्व प्रदीपिका' नाम की संस्कृत टीका तथा उसके नीचे पंडित टोडरमल-कृत 'सम्यग्ज्ञान चंद्रिका' नाम की हिन्दी टीका दी गयी है जो १३००० श्लोक प्रमाण है। यह ग्रन्थ ७६६ पृष्ठों मे है तथा इसकी 'अर्थ संदृष्टि' २०७ पृष्ठो में है, जिनकी साइज २५×१९ से. मी. है। लागत का ब्यौरा उपलब्ध नही है; किन्तु अनुमानतः यह खर्च उस समय ६००० रु. रहा होगा।

ग्रन्थ-प्रकाशन संस्था : इन ग्रन्थो का प्रकाशन करनेवाली संस्था का नाम 'भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी' संस्था है। इसके संपादक पं. गजाधरलाल जैन न्यायतीर्थ और श्रीलाल जैन, काव्यतीर्थ है। मुद्रक 'श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ, जैन सिद्धान्त प्रकाशक (पवित्र) प्रेस, नं. ८ महेंद्रवासलेन, श्याम बाजार, कलकत्ता है। संरक्षक हरीभाई देवकरण गाधी नाम की प्रसिद्ध फर्म है, जिसके मालिक श्रीमान् सेठ हीराचन्द शोलापुर है। संपादकों ने स्वीकार किया है कि उक्त पॉच सिद्धान्त खण्डों के प्रकाशन का श्रेय उक्त फर्म के श्रेष्ठिद्वय की असाधारण सहायता को है।

इस संस्था के महामंत्री पं. पन्नालाल वाकलीवाल है, जो प्रकाशक भी है। पं. पन्नालाल 'जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय' के जन्मदाता थे और उन्होंने छापे का आदि-प्रचार किया था; ऐसा वर्णन संस्था के मंत्री श्रीलाल जैन ने त्रैमासिक विवरण (वी. वि. २४४४ से ४६ तक) मे किया है। पंडित पन्नालाल ने बम्बई से संबन्ध विच्छेद कर लिया और इस संस्था की नीव "जैन धर्म प्रचारिणी सभा" के नाम से बनारस मे डाली। यह लगभग १९१२ ई. को बात होगी। उन्हें सर्वप्रथम दो हजार रुपयो का अनुदान सेठ नेमीचन्द वहालचन्द से प्राप्त हुआ। उन्होंने 'आप्त परीक्षा', 'पात्र परीक्षा', 'राजवार्तिक', जैनेन्द्र प्रक्रिया' आदि अनेक ग्रंथों का प्रकाशन दो-तीन वर्षो में कर दिया।

धनाभाव और सामाजिक संघर्ष की स्थिति का पुनः सामना करने हेतु संस्था के मंत्रियो ने दौड़े की योजना वनायी और संस्था के सस्थापक और संरक्षक के रूप मे उन्हे सेठ हरीभाई देवकरण फर्म के मालिक सेठ वालचन्द्रजी व उनके वर्तमान छोटे भाई हीराचन्द्र ने आश्रय दिया। यद्यपि शोलापुर में सेठजी ने ५०००) रु. की सहायता स्वीकार की थी, पर कलकत्ता पहुँचने पर उन्होने १५०००) रु. की स्वीकृति दे दी। यह सभवतः द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व की वात रही होगी।

महामंत्री पं. पन्नालाल ने यह आश्वासन पाकर तथा बंगाल में जैनधर्म प्रचार की सदिच्छा से कलकत्ता प्रस्थान किया। उस समय वह विश्व-कोष प्रेस के मालिक श्री नगेन्द्रनाथ बसु के यहां रु. २५ मासिक भाड़े का मकान लेकर संस्था का सामान लाकर पं. गजाधरलाल तथा पं. श्रीलाल के साथ व्यवस्थित हो गये।

पवित्र प्रेस की स्थापना : विरोधियों के आक्रमण और उसके परिहार के मध्य, इन मंत्रियों ने प्रेस की कठिनाइयों से ऊबकर निजी प्रेस खोलने का विचार किया। इसके साथ ही सरेस गलाने का प्रश्न सामने आया। अभी तक ग्रंथ दूसरे के यहाँ छपते थे इसलिए स्पर्श-दोष समझकर ही वे चुप थे, पर अब तो एक अपवित्र वस्तु को बाजार से स्वयं खरीद कर लाने और गलाने तथा काम में लाने तक की नौबत आ गयी थी।

आखिर एक घटना ने उन्हें नया रास्ता बतला दिया। सहायक महामंत्री की ऐड़ी में घाव हो गया। उसके लिए विलायती रूई की आवश्यकता हुई। डाक्टर के यहाँ रूई के बंडल मे सरेस की कोमलता दृष्टिगत हुई। रूई का एक रूलर बनाया गया और प्रयोग सफल हुआ विजली से चलने वाली 'अमृत बाजार पत्रिका' की मशीन पर ये रूलें चलने लगी। इस प्रकार नवीन प्रेस खरीदने की तैयारी हुई। इस समय तक मंत्रियों ने अवैतनिक रूप मे ही कार्य किया था। बाद में पं. गजाधरजी ने फार्म के हिसाब से ही काम किया।

गोम्मटसार का प्रकाशन : इस 'सिद्धान्त राज' के छपाने की सम्मति सेठ वालचन्द हीराचन्द, शोलापुर से प्राप्त की गई। छपाने में तकमीना पन्द्रह सोलह हजार बांधा गया और कागजों का रुपया सेठजी ने देना स्वीकार किया। कुछ रुपये 'अर्थ प्रकाशिका' और 'हरिवंश पुराण' की बिक्री से प्राप्त हुए थे। शेष रुपयों का प्रबन्ध करने के लिए पाँच हजार विज्ञापन पृथक् छपाकर बाँटे गये। अखवारों में आंदोलन किया गया, प्राइवेट पत्रों द्वारा ग्राहक वनने की विनती की गयी और भी भिन्न-भिन्न किस्म के प्रयास किये गये। विरोधियों ने भी अपना कर्त्तव्य-निर्वाह किया और लिखना शुरू किया, "गोम्मटसारजी छपाने की जरूरत नही है, रायचन्द्र और शास्त्रमाला मे निकल तो गया है, पन्द्रह-सोलह हजार रुपया खर्च करना पहाड़ खोद चूहा निकालना है, आदि।" परन्तु विरोधियों का भीतरी अभिप्राय संभवतः यह था कि इस ग्रन्थ के प्रकट होते ही यह संस्था चिरस्थायी हो जाएगी और पण्डितों का सिक्का जैन समाज पर जम जाएगा।

सेठ साहव की शर्त थी और वह उचित भी थी कि जब तक चार सौ ग्राहक न वन जाएँ, काम प्रारम्भ न किया जाए। इन तीन मंत्रियो के अध्यवसाय से ६-७ माह के भीतर ही चार सौ ग्राहक वन गये और उनकी सूची शोलापुर भेज दी गयी। विरोधियों का मुँह वन्द हो गया, जो वह रहे थे कि रकम अटक जाएगी और इतने वड़े ग्रन्थ को कोई नही खरीदेगा। श्रीलाल जी ने लिखा है कि अहमदावाद निवासी सेठ माधवालाल भोगीलाल धन्यवाद के पात्र है कि उन्हों ने 'गोम्मटसार' के छपने के समाचार पाते ही संस्था को हर प्रकार से उत्साहित किया। उन्होंने लिखा कि यदि चार सौ ग्राहक पूरे न होंगे

तो हम २१ प्रतियों के ग्राहक वन जाएँगे फिर भी चार सौ के स्थान पर पाँच सौ बन गये और उक्त सेठ ने प्राय: ४००) रु. न्यौछावर २१ प्रतियों के भेज ही दिये।

जिस समय विज्ञापन छपाकर ग्राहक बनाये गये उस समय कागज का भाव चार आने पौड था और छपाई भी सस्ती थी, किन्तु यूरोपीय महायुद्ध के कारण जो हिसाब १५ या १६ हजार का बना था वह अब २८-३० हजार का दृष्टिगत होने लगा। यद्यपि पतला लगाकर और छपाई महीन अक्षरों में कराकर पूर्व योजनानुसार छपाई हो सकती थी; यद्यपि प्रकाशक का मंतव्य था कि ऐसा महान् ग्रंथ सदा नही छपता, और मोटे अक्षरों के विना सर्वसाधारण के हित मे भी नही आ सकता। फिर से ग्राहको को पत्र लिखे गये कि संस्था उन्हे लागत मूल्य जो आयेगी उस पर ही उन्हे व्ही. पी. छुड़ाना होगी। दस-पाँच ग्राहकों को छोड़ शेष तैयार हो गये। अन्त में प्रथम खण्ड ७५ फार्मों का पचास पौड वजन के कागज पर ५) रु. के न्यौछावर में प्रकाशित हो गया। इस समय कागज का भाव छह आने पौड हो गया था, किन्तु निजी प्रेस मे छपाई का खर्च कम पड़ा था। तृतीय और चतुर्थ खण्ड में सवा दस आने पौड का कागज लगा, और वह भी छह-छह आठ-आठ माह वीत जाने पर प्राप्त हो पाता था। प्रथम दो खण्डों का मूल्य १७) रु. और अन्तिम दो खण्डों का मूल्य २३) रु. रखा गया।

इतना बड़ा ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में ५००) रु. मे भी प्राप्त नही हो सकता था। ग्रन्थ प्रकाशित हो गये; किन्तु जन्मदायिनी संस्था चिरस्थायी हुई या नही, ज्ञात नही। अव ये ग्रन्थ केवल मंदिरो में ही उपलब्ध है, वे भी कही-कही।

ग्रंथराज का पुनः प्रकाशन (?)

लेखक को इस ग्रन्थ के दर्शन १९५९ में हुए, इन्दौर के उदासीन आश्रम मे पंडित वंशीधरजी के निर्देश पर। धवला ग्रन्थों के गणित की सीढ़ियो के पूर्व 'गोम्मटसार' के मंच पर पहुँचना आवश्यक है। कर्म-विज्ञान का शोधार्थी इन ग्रन्थो के विना अपग है। शोधार्थियों को सहज मे ग्रन्थ प्राप्य हो सके, लेखक ने योजना वनाकर प्रकाशित की तथा 'ज्ञानपीठ' काशी को एवं स्व. साहु शान्तिप्रसादजी को भी पत्र लिखे। उन्होंने 'गोम्मटेश्वर समिति' को लिखने के लिए सुझाव दिया। वहाँ से कोई उत्तर प्राप्त नही हुआ। लेखक ने 'यूनेस्को' तथा 'इंटरनेशनल मेथामेटिकल यूनियन' को भी इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु पहल की, किन्तु सफलता नहीं मिली।

'उपा ऑफसेट प्रिंटर्स, वम्बई' से इन ३८१० पृष्ठो के ग्रन्थ-प्रकाशन के खर्च का आकलन इस प्रकार प्राप्त हुआ है : डबल डेमी १९.५ कि. ग्रा., प्राकृतिक शेड पेपर, दो रंगों का रेशमी कवर;

१०० प्रतियाँ	८००००) रु.
१००० ,,	११६०००) रु.
५००० ,,	३२४०००) रु.

जापान से निम्नलिखित एस्टीमेट प्राप्त हुआ——

	एलीफेक्स प्रतियाँ	फोटो प्रतियाँ	
	१००	१००	१०००
'गोम्मटसार' (२८३७ पृ.)	येन-१,१००,०००	३,५००,०००	५,८००,०००
'लब्धिसार' (९७३ पृ.)	येन- ४००,०००	१,५००,०००	२,०००,०००

(१ रुपया लगभग ५० येन का होता है ।)

यह लेख 'तीर्थंकर' के सम्पादक के अनुरोध पर लिखा गया । वे अभी मैसूर सेमिनार से लौटे और श्रमण बेलगोला के भट्टारक स्वामीजी के विशेष परिचय में आये है । संभव है इससे प्रेरणा पाकर इस ग्रन्थ के पुन. प्रकाशन का बीडा उठाया जाए—विशेष रूप से गोम्मटेश्वर के महामस्तकाभिषेक के पुनीत अवसर पर ज्ञान के हर अलौकिक दीपक को फिर से प्रज्वलित किया जा सके । वैज्ञानिक प्रगति के इस युग मे अब यह कार्य निस्सन्देह ही अत्यन्त सरल है, किन्तु क्या सचमुच इतना सरल है ? □

(गोयलजी बेटे के आईने मे · पृष्ठ १५६ का शेष)

के साथ बितायी । कभी और कही भी अनाचार-अत्याचार के आगे नही झुके । हमेशा सीना तान कर रहे । लगन उनमे हद दर्जे की थी । जिस चीज के पीछे पड़ते थे, उसे विना लिए छोड़ते नही थे । बड़े ही अध्ययनशील थे । · · · गोयलीयजी क्रान्तिकारी व्यक्ति थे । समाज को सुधारने मे उन्होंने वहुत वड़ा योगदान दिया ।" · · ·

आदरणीय रायकृष्णदास के वहुमूल्य शब्दो में, " · · · वे अपने आप मे एक संस्था थे । ज्ञान की मूर्ति थे साथ ही शालीनता के आगार थे ।" · · · ·

भैया साहब श्री नारायणजी चतुर्वेदी ने पिताजी के बारे मे कहा——"वे हिन्दी के सम्मानित और मान्य लेखक थे । उर्दू के मर्मज्ञ काव्य-प्रेमी होते हुए भी उन्हे हिन्दी से वडा प्रेम था । 'सरस्वती' के वे सम्मान्य लेखक थे और उसके विशेष कृपापात्र थे । व्यवसाय मे रहकर भी अपनी उत्कट साहित्यिक अभिरुचि और हिन्दी-प्रेम के कारण वे व्यवसाय की व्यस्तता से भी हिन्दी की सेवा करने का समय निकाल लेते थे । उनके उच्च चरित्र और मृदु स्वभाव के कारण वे बड़े लोकप्रिय थे ।"

आइये, आज उनके किस्से को यही रहने दें । नीद तो अव उड़ ही चुकी है ।

□

•••एक दीप ईमान का

□ बाबूलाल जैन 'जलज'

रहे न नाम-निशान धरा पर, अंधकार अज्ञान का।
अगर जला ले, मन-मंदिर में, एक दीप ईमान का।।
परम्पराओं के जंगल में, भूल गये अपनी मंजिल।
युग के अंधे चौराहों पर, बिखर गये मन के शतदल।।

भाग्य-सितारा चमक उठेगा, नवयुग के निर्माण का।
अगर जला ले, मन-मंदिर में, एक दीप ईमान का।।

भ्रम का कुआ खोदते फिरते, चमत्कार के अभ्यासी।
अन्तर्मन का मैल छुड़ाने, फिरते है कावा-काशी।।
धर्म-कर्म से टूटा मानव, लेता शरण अँधेरे की।
परस न पाती दुर्बल आत्मा, स्वर्णिम किरण सबेरे की।।

नयी चेतना से भर जाए, कुंठित मन इंसान का।
अगर जला लें, मन-मंदिर में, एक दीप ईमान का।।

जिस दिन फूटेगा भीतर से, एक गीत सच्चाई का।
बन जाएगा कीर्तिमान नव, मानव की ऊँचाई का।।
कठिन प्रश्न हल हो जाएगा, भूख-प्यास-बीमारी का।
बीज न बोयेगा जब कोई, छल-प्रपंच-मक्कारी का।।

हो जाए चिर मिलन अलौकिक, धर्म-कर्म-विज्ञान का।
अगर जला लें, मन-मंदिर में, एक दीप ईमान का।।

ज्योति-पर्व हर साल मनाते, बीत गयी घड़ियाँ।
तम-पहाड़ की फटी न छाती, लाखों छोड़ीं फुलझड़ियाँ।।
सरल नहीं है तिमिर ठेलना, सुख-सुहाग की बातों से।
सिद्ध न होते मंत्र कर्म के, सपनों की सौगातों से।।

शाश्वत रूप सँवर जाएगा, आत्म-तेज बलिदान का।
अगर जला लें, मन-मंदिर में, एक दीप ईमान का।।

गौरीशंकर की चोटी हो, चाहे हो खंदक - खाई।
रात और दिन झांका करती, आत्मज्योति की परछाई।।
आत्म-दीप की एक किरण ने, जब-जब तम को ललकारा।
हुआ सत्य उद्भूत धरा पर, वही ज्ञान-गंगा-धारा।।

खुल जाता है द्वार स्वयं ही, विश्व-प्रेम कल्याण का।
अगर जला लें, मन-मंदिर में, एक दीप ईमान का।।

इस स्तम्भ के अन्तर्गत समीक्षार्थ पुस्तक अथवा पत्र-पत्रिका की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक है

जैन सिद्धान्त सूत्र · ब्र.कु. कौशल . आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज ट्रस्ट, दिल्ली : मूल्य—दस रुपये . पृष्ठ ३५८ : डिमाई–१९७६ ।

आलोच्य कृति विदुषी लेखिका की प्रथम कृति नही है, इसके पूर्व उसकी और-और कृतियाँ हैं और उसने 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' जैसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त-कोश के संकलन-संपादन में क्षु. श्री जिनेन्द्र वर्णी के साथ काम किया है। मानना चाहिये, सहज ही, कि 'जैन सिद्धान्त सूत्र' उसी की एक कड़ी है अथवा प्रश्नोत्तर शैली में 'मिनी जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश' है। पुस्तक मे आठ अधिकार है, जिनमे क्रमशः न्याय, द्रव्य गुण पर्याय, भाव व मार्गणा, गुणस्थान, तत्त्वार्थ, स्याद्वाद, नय-प्रमाण आदि पर गहन विचार हुआ है। वर्णीजी ने इसे 'जैन दर्शन का प्रवेश-द्वार' कहा है। संपूर्ण ग्रन्थ प्रश्नोत्तरों के रूप मे है, जिसका मूल आधार पं. गोपालदास बरैया की 'जैन सिद्धान्त-प्रवेशिका' है। इसमे जैन तत्त्व की गूढ़ताओं को जिस सहज-सुगम ढंग से रखा गया है और प्रतिपाद्य का जैसा समस्त-संक्षिप्त-प्रांजल निरूपण किया गया है उसे देखते यह नि.संकोच कहा जा सकता है कि उक्त कृति श्रावकीय स्वाध्याय का एक विश्वसनीय साथी है। यद्यपि भाषा-प्रयोग यत्र-तत्र शिथिल और सदोष है तथापि इसके साहित्येतर होने के कारण उसकी चुभन इतनी तीखी नही है; फिर भी हमें आश्वस्त होना चाहिये कि ये भूले आगामी संस्करण मे, जो जल्दी ही होगा, सुधार ली जाएँगी।

जैन आगम साहित्य . देवेन्द्र मुनि शास्त्री . श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान) : मूल्य—चालीस रुपये : पृष्ठ ७६८ . डिमाई–१९७७ ।

प्रस्तुत ग्रन्थ आगमों और तत्संबन्धी व्याख्या-ग्रन्थों का एक शोधपरक मन्थन है। ग्रन्थ का चरित्र तुलनात्मक है, इसीलिए वह सफलतापूर्वक जैन, वौद्ध और वैदिक दर्शनों को विभिन्न संदर्भो मे एक विशिष्ट वस्तुनिष्ठा के साथ रख पाने में समर्थ है। ग्रन्थ के ७ खण्ड है—जैन आगम साहित्य का अनुशीलन, अंग साहित्य का पर्यावलोकन, अंगबाह्य आगम साहित्यका समीक्षण, आगमोंका व्याख्यात्मक साहित्य, दिगम्बर जैन आगम साहित्य, जैन वौद्ध वैदिक दार्शनिक मतों का तुलनात्मक अध्ययन, तथा आगम साहित्य के सुभाषित। परिशिष्टों मे पारिभाषिक शब्द-कोश, ग्रन्थगत विशिष्ट शब्द-सूची, संदर्भ ग्रन्थ-विवरण, तथा शब्दानुक्रमणिका देकर विद्वान् लेखक ने ग्रन्थ को अधिक उपयोगी वना दिया है। इसका संप्रदायातीत होना और बिना किसी पूर्वग्रह या दुराग्रह के जैन साहित्य को सम-

कालीन संदर्भो मे संयोजित करना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है । मनीषी साधु-लेखक ने अकथ श्रमपूर्वक इस विशद ग्रन्थ का आयोजन किया है, किन्तु वह अंग्रेजी के अनावश्यक मोह से वच नही पाया है । सूच्य है कि जब पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का बहुमूल्य ग्रन्थ 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' प्रकाशित हुआ था तव कई लोगो ने सुझाव दिया था कि इसका अंग्रेजी संस्करण भी लाया जाए किन्तु स्व. ओझाजी ने यह कहकर इसके आग्ल संस्करण से इनकार कर दिया था कि जिसे इसका उपयोग करना होगा वह हिन्दी सीखेगा; और हुआ भी यही । इस ग्रन्थ का उपयोग करने के लिए प्राच्य विद्या और भाषा-विज्ञान के वीसियो यूरोपीय विद्वानों ने हिन्दी सीखी । क्या हम इतने महत्त्व के नही है कि हमारे द्वारा प्रणीत साहित्य पढ़ने के लिए भारतीय भापाओ के अध्ययन का लोभ विदेशियो के मन में उत्पन्न हो ? हमे विश्वास है हमारे विद्वान् साधु-लेखक इस ओर ध्यान देगे और अंग्रेजी के व्यर्थ के व्यामोह से मुक्त होगे । प्रस्तुत ग्रन्थ न केवल उपयोगी है वरन् प्रथम वार इस तरह की सहज तुलनात्मक मुद्रा मे तथ्यों को संयोजित करने मे सफल हुआ है । छपाई सुघड़, गेटअप आकर्षक और मूल्य उचित है ।

विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ . सपादक-मण्डल — सर्वश्री लालवहादुर शास्त्री, वावूलाल जैन जमादार, विमलकुमार सोरया, बावूलाल फागुल्ल, निहालचन्द जैन . अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिपद् के निमित्त चादमल सरावगी चेरिटेबल ट्रस्ट, गौहाटी : मूल्य — इक्यावन रुपये . पृष्ठ ७२३ : क्राउन — १९७६ ।

समीक्ष्य ग्रन्थ शास्त्रि-परिषद् का १०० वाँ पुष्प है और महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि इसमे लगभग ७३७ व्यक्तियो का परिचय है । आचार्य शान्तिसागर महाराज से लेकर ब्र. कु. मजू शास्त्री तक विभिन्न ज्ञान-क्षेत्रो से इसमे विद्वानो को चुनकर सयोजित किया गया है; माना, ऐसे कामो मे संपादको को काफी परेशानियाँ भोगनी होती है और आवश्यक सामग्री कई-कई स्मरणपत्रों के वाद ही उपलब्ध होती है, किन्तु अन्तत: जो फसल आती है वह गौरवशाली होती है, और कई पीढियो तक एक चिरस्मरणीय संदर्भ के रूप मे काम आती है । सामग्री के आकलन मे जो कठिनाइयाँ आती है, आम पाठक को उसका अनुमान लग ही नही पाता । मसलन कुछ लोग अपने परिचय भेजते ही नही है, कुछ ऐसा करने मे अपनी हेटी मानते है, और कुछ तो यह मानकर ही चलते है कि वे काफी महत्त्व के है, उन्हें छोडकर चल पाने का साहस ही कौन कर पायेगा, अत. वे लिखे-न-लिखे, उत्तर दे-न-दे, उन्हे सम्मिलित कर ही लिया जाएगा; ऐसे अनेक कारणों से संपादको को निराश होना होता है और कई वार वे उदासीन भी हो उठते है । यही कारण है कि ऐसे ग्रन्थो की योजना काफी महत्त्वाकाक्षिणी होती है, किन्तु जव वे प्रकाशित होते है तव वहुत दीन-हीन-निस्तेज-फीके-फस्स, पूरी जानकारी देने मे असमर्थ-असहाय । प्रस्तुत ग्रन्थ पर भी कमोवेश यह वात लागू होती है; किन्तु इसमे कोई सदेह नही है कि संपादकों ने अपार परिश्रम किया है और वे अभिनन्दनीय है । इतना होते हुए भी हम विद्वान् संपादकों का ध्यान इस ओर अवश्य आकर्षित करेगे कि परिचय अव्यवस्थित है, दुहरावटो से भरपूर है, भाषा कई जगह दोषपूर्ण है, संयोजन अ-वैज्ञानिक है । कुछ लोग छूटे भी है, और कुछ अनावश्यक रूप से

सम्मिलित है; तथापि ग्रन्थ एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ है और प्रथम बार विभिन्न आध्यात्मिक तबकों की जानकारी देने में सफल हुआ है। फिलहाल, दिगम्बर जैन मुनियो, आर्यिकाओं, क्षुल्लकों, ऐलकों, ब्रह्मचारियों और विद्वानों की इतनी विपुल जानकारी देनेवाला अन्य ग्रन्थ हमारे सामने नही है; फिर भी इसके आगे की राह खुली हुई है और एक अधिक प्रशस्त संदर्भ की, जिसका चरित्र ऐसा ही हो, प्रतीक्षा की जाना चाहिये। आशा यह भी की जानी चाहिये कि जब प्रस्तुत ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित होगा तब खामियों को दूर कर लिया जाएगा और नयी या छूट-छोड़ दी गयी जानकारी सम्मिलित कर ली जाएगी। ग्रन्थ में ५ खण्ड है – आचार्य, मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी वर्ग के जीवन-परिचय; परम्परागत संस्कृति के वर्तमान साहित्यिक विशिष्ट विद्वानो के परिचय; जैन विद्वानो, निष्णातो, साहित्यकारो और कवियो के अकारादिक्रम से संयोजित जीवन-परिचय तथा साहित्य और संस्कृति पर कुछ चुने हुए लेख। लेख, हमारे विनम्र मत में, इसलिए अधिक उत्कृष्ट होने थे कि यह विद्वानो का एक विशद परिचय-ग्रन्थ है। ग्रन्थ की जन्म-कथा इस प्रकार है – १९६८ मे बीजारोपण, १९६९ में अंकुरण तथा १९६९-१९७६ मे पल्लवन-पुष्पन-फलन। ग्रन्थ की छपाई व्यवस्थित, निर्दोष है, गेटअप नयनाभिराम है। मूल्य पर चिपकी लगी हुई है, इसे उघाड़ कर देखा गया है।

आचार्य तुलसी दक्षिण के अंचल में. साध्वी कनकप्रभा : आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राजस्थान) · मूल्य – पचास रुपये : पृष्ठ – ९९० . डिमाई – १९७७।

हिन्दी मे वैसे भी यात्रा-साहित्य अधिक नही है, और फिर पद-यात्राओं के विवरण तो आचार्य विनोबा भावे के अलावा किसी अन्य के उपलब्ध नहीं है। जैन साधुओ के विवरणों की न तो कोई परम्परा ही है और न ही आज तक इनकी उपयोगिता पर किसी का ध्यान ही गया है। आलोच्य ग्रन्थ इस दृष्टि से एक सुखद और महत्त्वपूर्ण उपक्रम है। यह आकार में बृहद् तो है ही, शैली और प्रस्तुति मे भी विशिष्ट है। इसमें तेरापन्थ के आचार्यप्रवर और भारत मे एक विशिष्ट आन्दोलन—अणुव्रत—के प्रवर्तक आ. तुलसी की २७ फरवरी १९६७ से २८ जनवरी १९७१ तक की राजस्थान, गुजरात, कच्छ, सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, तामिलनाडु, केरल, कर्णाटक, आन्ध्र, मध्यप्रदेश, और उड़ीसा की यात्राओं और चातुर्मासो का संस्मरणात्मक-प्रेरक वर्णन-विवरण है। ये विवरण जहाँ एक ओर किंचित् व्यक्तिपरक – इसीलिए यथार्थ भी—है, वही दूसरी ओर एक सास्कृतिक पुलक लिये हुए है। इनके द्वारा कई श्रमण-श्रेष्ठताएँ उजागर हुई है और हम आश्वस्त हुए है कि यदि धर्म अपनी किसी सक्रिय भूमिका मे उतर सके तो वह भारत के लोकचरित्र को एक निर्मल धरातल प्रदान कर सकता है। कई निष्कर्ष भी हमारे सामने आये है, मसलन आचार्यश्री का यह कथन कि "उत्तर भारत मे जैनत्व के संस्कार इतने परिपक्व नही है, जितने कि दक्षिण भारत मे है"। जहाँ तक समीक्ष्य ग्रन्थ की भाषा-शैली का प्रश्न है वह सरस, सहज, मर्मस्पर्शी और प्रशस्त है। विदुषी साध्वीप्रमुखा ने तथ्यों के आकलन मे कोई कोर-कसर नही रहने दी है, और इसे सर्वागता प्रदान करने मे अथक परिश्रम किया है। उक्त ग्रन्थ के अन्य कोई लाभ हो-न-हों इतने फायदे तो है ही कि जैन साधुओ का आकिंचन्य, उनकी निष्कामता

और उनकी सादगी जनता-जनार्दन को प्रत्यक्ष देखने को मिली है, तथा साधुओं को अपने देश का व्यापक स्वाध्याय करने का मौका सुलभ हुआ है। साधु – जिसे ज्ञान की आँख कहा गया है – जब देश में अपने विशिष्ट साधु-परिकर के साथ घूमता है तब लगता है कोई अपलक कैमरा घूम रहा है जो सत्य को बिना किसी रंगत या लाग-लपेट के कह सकेगा; इसीलिए समीक्ष्य ग्रन्थ मे भाषा-नीति जैसे पेचीदे सवाल पर भी सहज विचार हुआ है, और सारे देश की एक बेलौस झाँकी-झलक मिली है। ग्रन्थ रोचक है, ज्ञानवर्द्धक है। हमारे विनम्र विचार मे यदि यह ग्रन्थ जैन श्रमणो के लिए प्रेरक सिद्ध हो सके और वे भी अपने यात्रा-विवरणों को इस तरह उपलब्ध करा सके तो भारतीय साहित्य मे यह उनका एक विशिष्ट और बहुमूल्य अवदान होगा और इससे सदाचार की शक्तियाँ एकत्रित होकर अभिनव बल प्राप्त कर सकेगी। वस्तुत. इस बहुमूल्य उपलब्धि के लिए हमे आचार्यश्री तुलसी तथा उनकी विदुषी साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभाजी का कृतज्ञ होना चाहिये कि जिन्होंने इस क्षेत्र में इतना प्रशस्त नेतृत्व किया है। कुल मे, ग्रन्थ पठनीय, सकलनीय और अनुसरणीय है। जहाँ तक मुद्रण और सज्जा का प्रश्न है आदर्श साहित्य संघ के व्यवस्थापक श्री कमलेश चतुर्वेदी इसके विशेषज्ञ है, और उक्त कृति इसका एक उत्कृष्ट प्रमाण है।

जैन न्याय का विकास मुनि नथमल, संपादक - मुनि दुलहराज : जैन विद्या अनुशीलन केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर : मूल्य – बीस रुपये : पृष्ठ – १७९ : रॉयल – १९७७।

आलोच्य ग्रन्थ मुनिश्री नथमलजी के जैन विद्या अनुशीलन केन्द्र में प्रदत्त चार व्याख्यानों का एक सकलनीय सग्रह है, जो न्याय जैसे सूक्ष्म, गूढ-गहन, जटिल विषय को एक सहज परिवेश और भाषा-शैली मे संपूर्ण प्रामाणिकता के साथ सफलतापूर्वक प्रस्तुत करता है। मुनि नथमलजी की एक विशिष्टता है कि वे जिस किसी विषय को प्रतिपादन के पटल पर न्योतते है, उसकी गहराइयों मे यात्रा करते है और ऐसा करते हुए अपने पाठक या श्रोता को अपनी अगुली नही छुड़ाने देते। वे सहज ही उसका विश्वास संपादित कर लेते है और बातचीत-जैसी शैली मे प्रतिपाद्य विषय के सारे सूत्र-स्रोत उसके हवाले कर देते है। प्रस्तुत कृति इसकी एक जीवन्त गवाही है। विद्वान् व्याख्यानकार का यह निष्कर्ष कि जैन परम्परा मे तर्क का विकास बौद्धो के बाद हुआ – कई हस्ताक्षरों की जरूरत रखता है। यह महत्त्वपूर्ण है और इस पर पर्याप्त कार्य होना चाहिये। ग्रन्थ मे जिन विषयों पर विचार हुआ है, वे है – आगम युग का जैन न्याय, दर्शन युग और जैन न्याय, अनेकान्त व्यवस्था के सूत्र, नयवाद, स्याद्वाद, सप्तभंगी न्याय, प्रमाण-व्यवस्था, अनुमान, अविनाभाव, भारतीय प्रमाणशास्त्र के विकास मे जैन परम्परा का योगदान तथा परिशिष्ट। नि संदेह, ग्रन्थ सर्वथा उपयोगी है – विद्वानो के लिए, सामान्य स्वाध्यायी के लिए, ग्रन्थालयो के लिए। मुद्रण निर्दोष है, सज्जा सादा और स्वाभाविक, तथा मूल्य उचित। □□

स्व. मुनिश्री चौथमलजी द्वारा विषम परिस्थियों में भी अहिंसा का व्यापक प्रचार

जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमल जन्म-शताब्दी-वर्ष का शुभारंभ

'जब विश्व में हिंसक प्रवृत्तियाँ पनपने लगती है और उसके क्रूर प्रहारों से चारों ओर भय और अशान्ति का वातावरण व्याप्त हो जाता है, ऐसे समय में महान् सन्त-पुरुषो के अहिंसा-सिद्धान्त के सुदृढ़ स्तम्भ पर ही विश्वशान्ति को स्थापित किया जा सकता है। आज देश में असात्त्विक प्रवृत्तियाँ बढ़ रही है। सन्त और समाज मानवीय उद्देश्यों से प्रेरित होकर देश को सात्त्विकता की ओर मोड़ सकते है। जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी ने अपने समय मे विषम एवं विरोधी परिस्थतियों में भी अहिसा का व्यापक प्रचार किया।' उक्त उद्‌गार जैन कांफ्रेंस के मध्यप्रदेशीय शाखा के अध्यक्ष श्री सौभाग्यमल जैन ने इन्दौर-स्थित महावीर चौक मे जैन दिवाकर जन्म-शताब्दी-वर्ष के शुभारम्भ (२३ नवम्बर, ७७) पर आयोजित समारोह में व्यक्त किए। →

जैन दिवाकर विद्या निकेतन का भूमि-पूजन करते हुए श्री मागरमल वेताला और श्रीमती सुशीलाबाई वेताला। (न्यू पलासिया, इन्दौर, १ दिसम्बर, १९७७)

समाचार : शीर्षक-रहित; संक्षिप्त, किन्तु महत्त्वपूर्ण

—जैन विश्व भारती, लाडनू (राजस्थान) के तत्त्वावधान मे आचार्य श्री तुलसी के ५३ वें दीक्षा-दिवस के उपलक्ष्य मे त्रिदिवसीय (३० दिसम्बर, ७७ से १ जनवरी, ७८) 'जैन पत्र-पत्रिका' प्रदर्शनी' का आयोजन किया जारहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य पत्र-पत्रिका-जगत् मे जैन पत्र-पत्रिकाओं के महत्त्वपूर्ण योगदान को जनता के सामने प्रकट करना है। प्रदर्शनी के संयोजक श्री रामस्वरूप गर्ग, पत्रकार हैं।

—श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वर की जन्म-सार्द्ध शताब्दी के उपलक्ष्य मे अ. भा. श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद् की ओर से गत ३० नवम्बर को रतलाम मे मुनिश्री जयन्तविजयजी 'मधुकर' के सान्निध्य मे 'श्री राजेन्द्र ज्योति' नामक बृहद् ग्रन्थ का विमोचन-समारोह संपन्न हुआ।

इस अवसर पर डॉ नेमीचन्द जैन ने 'अभिधान राजेन्द्र' कोश की बढती मांग को देखते हुए इसके हिन्दी, अंग्रेजी और गुजराती संस्करण के प्रकाशन पर जोर दिया। मुनि श्री हस्तीमलजी और जयन्तविजयजी 'मधुकर' के सारगर्भित प्रवचन हुए।

—जवाहर विद्यापीठ कानोड़ (उदयपुर) तथा जैन शिक्षण संघ के संस्थापक-संचालक पं. उदय जैन का असामयिक निधन गत २७ नवम्बर को हृदयगति रुक जाने से हो गया। उनके द्वारा सस्थापित संस्थाओ मे बालमन्दिर से लगाकर महाविद्यालय की शिक्षा दी जाती है।

—सुख्यात लेखक, विचारक और सपादक श्री जमनालाल जैन की द्वितीय सुपुत्री श्री रेखा का शुभ विवाह गत २२ नवम्बर को प्रमुख सर्वोदय-कार्यकर्ता श्री मणिलाल संघवी के सुपुत्र श्री दिनेश के साथ नीलपुर (कच्छ) मे अत्यन्त सादगीपूर्ण वातवरण में संपन्न हुआ। दोनों पक्षों की ओर से अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया गया।

—समारोह का उद्घाटन करते हुए श्री मिश्रीलाल गंगवाल ने कहा कि सन्त का जीवन समाज, राष्ट्र और विश्व-मानवता के हित में समर्पित होता है। इस शताब्दी-महोत्सव के प्रसंग पर हम अपने जीवन की विकृतियो को दूर करने का संकल्प करे। सत्कर्म द्वारा ही हम उनके जीवन को आत्मसात् कर सकेंगे।

इस अवसर पर जैन दिवाकरजी के सुशिष्य कविवर्य श्री केवल मुनि महाराज को 'धर्म-विभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया गया। मालव-केशरी मुनि श्री सौभाग्यमलजी महाराज ने इस अलंकरण की घोषणा की। इस अध्यात्मिक सम्मेलन मे मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल' और मुनिश्री यतीन्द्र विजयजी महाराज ने भी जैन दिवाकरजी के जीवन पर प्रकाश डाला। समारोह की अध्यक्षता श्री सुगनमल भंडारी ने की।

पं. मुनिश्री रामनिवासजी महाराज के मंगलाचरण से प्रारंभ हुए समारोह मे श्री हस्तीमल झेलावत ने 'जैन दिवाकर विद्या निकेतन' की रूपरेखा प्रस्तुत की। श्री योगेन्द्र कीमती ने अध्यात्मिक गीत प्रस्तुत किया। समारोह का संचालन श्री फकीरचन्द मेहता ने किया।

जैन दिवाकर जन्म-शताब्दी-समारोह के महत्त्वपूर्ण चरण के रूप में इन्दौर के पूर्वी क्षेत्र (न्यू पलासिया) स्थित भूखण्ड पर 'जैन दिवाकर विद्या निकेतन' की स्थापना की जा रही है, जिसकी भूमि-पूजन-विधि श्री सुगनमल भंडारी की अध्यक्षता मे गत १ दिसम्बर को श्री सागरमल बेताला तथा श्रीमती सुशीलाबाई बेताला द्वारा संपन्न की गयी। इस प्रकार श्री केवल मुनि की प्रेरणा और श्री फकीरचंद मेहता आदि के प्रयत्न से योजना का शुभारंभ हुआ।

—जैन मित्र के वयोवृद्ध संपादक श्री मूलचन्द किसनदासजी कापड़िया की ९५वी वर्षगाठ पर उनका अभिनन्दन करने के लिए श्री कापड़ियाजी अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

—वरिष्ठ लेखक और संपादक पं. परमेष्ठीदासजी जैन की विशिष्ट सेवाओं को ध्यान मे रखकर उनके अभिनन्दन का आयोजन करने का निश्चय किया गया है। इस अवसर पर एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भी प्रकाशित किया जा रहा है।

—सुप्रसिद्ध समाजसेवी, वयोवृद्ध और 'जैन-जगत्' के संपादक श्री रिषभदासजी रांका का पूना मे उनके निवास-स्थान पर गत १० दिसम्बर को ७५ वर्ष की आयु में निधन हो गया। वे पिछले दो वर्षो से ब्लेडर के कैंसर से पीडित थे। फिर भी अपने अंगीकृत संपादन व सेवा-कार्य मे तत्पर थे।

—इन्दौर में म. प्र. तृतीय अणुव्रत-सम्मेलन के निमित्त प्रकाशित 'अणुव्रत-ज्योति' का विमोचन गत ११ दिसम्बर को मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल' के सान्निध्य मे संपन्न हुआ।

—'वीर', मेरठ का साहू शान्तिप्रसाद जैन स्मृति-विशेषाक फरवरी, ७८ मे प्रकाशित किया जा रहा है।

—'जैन जगत', बम्बई स्व. श्री शान्तिप्रसाद जी जैन और स्व. रिषभदासजी रांका की स्मृति मे शीघ्र ही 'श्रद्धाजलि-अक' प्रकाशित कर रहा है।

—आगमपथ, दिल्ली द्वारा फरवरी मे स्व ब्र. शीतलप्रसाद-स्मृति-अंक प्रकाशित किया जा रहा है।

—पं बाबूलालजी जैन जमादार की उल्लेखनीय सेवाओं को दृष्टि में रखकर जैन भारती प्रकाशन, बडौत (मेरठ) ने उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने का निश्चय किया है।

—दिल्ली प्रशासन द्वारा बाल अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत शकुन प्रकाशन के संचालक श्री सुभाष जैन को प्रथम श्रेणी का ऑनरेरी मजिस्ट्रेट मनोनीत किया है।

—जैन मठ, मूलबिद्री मे ३१ दिस को भगवान् महावीर भवन का शिलान्यास सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री श्रेयासप्रसाद जैन द्वारा किया जा रहा है।

—अ. भा. दिगम्बर जैन युवा-परिषद बडौत द्वारा दिगम्बर जैन युवा सम्मेलन किसी तीर्थक्षेत्र पर आयोजित किया जायेगा।

—बारहवाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार बंगला उपन्यासकार श्रीमती आशापूर्णादेवी को उनके उपन्यास 'प्रथम प्रतिश्रुति' पर प्रदान किया गया है।

—१९७७ का लक्ष्मीदेवी जैन पुरस्कार सर्वश्री वीरेन्द्रकुमार जैन (बम्बई), डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री (नीमच), डा भागचन्द्र जैन (दमोह), डा नरेन्द्र भानावत (जयपुर) और डा. राजेन्द्र गर्ग (मेरठ) को जैन कालेज बडौत (मेरठ) के प्रागण में १८ दिसम्बर को पूज्य उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी के सान्निध्य मे आयोजित समारोह मे प्रदान किया गया। केन्द्रीय विदेश मंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी मुख्य अतिथि थे।

—जैन विश्व भारती लाडनूं के अन्तर्गत तुलसी आध्यात्म नीडम् के तत्त्वावधान मे एक अष्ट दिवसीय प्रेक्षा ध्यान शिविर आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य मे और

मुनिश्री नथमलजी के निर्देशन में १८ दिसम्बर को संपन्न हुआ। इसमें विभिन्न राज्यों के १०८ साधको ने भाग लिया। शिविर-निदेशक मुनिश्री नथमलजी ने 'आध्यात्मिक चेतना द्वारा व्यक्तित्व का रूपातर' विषय पर प्रतिदिन मध्याह्न मे होनेवाले प्रवचन साधको को नया जीवन-दर्शन देने मे बहुत उपयोगी सिद्ध हुए।

—मुनिश्री नगराजजी, डी लिट् के सान्निध्य मे उपाध्याय मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'प्रथम' द्वारा कलकत्ते मे २४ वे विश्व शाकाहारी-सम्मेलन के प्रतिनिधियो के मध्य स्मृति विलक्षणता के यौगिक प्रयोग किये गये, जिन्हे देख कर विदेशी प्रतिनिधियो को सहज ही स्मृति हो गयी कि मानव-मस्तिष्क को भी टेप रिकार्डर, कम्प्यूटर तथा कैमरा बनाया जा सकता है।

—कलकत्ते मे मुनिश्री नगराजजी के सान्निध्य मे 'भारतीय सस्कृति मे अपरिग्रह-दर्शन' विषयक विचार-परिषद् का कार्यक्रम संपन्न हुआ, जिसमे मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' भी सम्मिलित हुए।

—अहिसा इन्टरनेशनल, नई दिल्ली के तत्त्वावधान मे श्रीराम भारतीय कला-केन्द्र के कलाकारो द्वारा श्रीमती कुन्था जैन-रचित 'वेलैट भगवान् महवीर' (अग्रेजी) को गत २६ दिसम्बर को मच पर प्रस्तुत किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता लोकसभाध्यक्ष श्री के एस. हेगडे ने की और केन्द्रीय विधि-मन्त्री श्री शान्तिभूषण ने उद्घाटन किया।

—वम्वई मे मानव दर्शन प्रोडक्शन की 'महासती मैना सुन्दरी' फिल्म का शूटिंग वारसोवा-वीच स्थित जहाज पर सपन्न हुआ।

—अ भा सत-सेवक समुद्यम परिषद् के तत्त्वावधान मे गत १० दिसम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र, महावीरनगर, चिंचणी (महाराष्ट्र) मे जैनमुनि श्री सतबालजी के सान्निध्य मे संत-सेवक-सम्मेलन सपन्न हुआ।

—दिव्य ध्वनि प्रतिष्ठान के अध्यक्ष डॉ. कुलभूषण लोखडे के अमेरिका मे अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान केन्द्र मे 'आचार्य हेमचन्द्र और योग' विपय पर छह व्याख्यान हुए। डॉ लोखडे की प्रेरणा से भारत मे २९-३० दिसम्वर को इण्टर असोसिएशन रिलीजस फ्रीडम का एक प्रतिनिधि-मडल धर्म तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए आ रहा है।

—ग्राम डेरी (जावरा)—स्थित वलाई समाज मे आयोजित एक भोज के अवसर पर श्री मानव मुनि की प्रेरणा मे ५० गॉवो के लगभग १००० लोगो ने शराव-मॉस आदि बुराइयो का त्याग कर अच्छा जीवन विताने की सामूहिक प्रतिज्ञा की। □

नये आजीवन सदस्य रु. १०१

३१७. सेठ श्री गगलभाई आलचन्द
रतन पोल, नगर सेठ मार्केट
पो. **अहमदाबाद-३८०-००१**

३१८. श्री बाबूलाल चांदमल गंगवाल
पो. **चन्द्रावतीगंज** (सावेर)
जि. इन्दौर (म. प्र.)

३१९. श्री भेरूलाल पटेल
मांगलिया
इन्दौर (**म प्र**)

३२०. श्री महीपाल भूरिया
बिशप्स हाउस
पो. बॉ. नं. १६८
पो. **इन्दौर ४५२ ००१** (म. प्र.)

३२१. श्री एन सुगालचन्द जैन
२१४, ट्रिप्लीसेन हाई रोड
पो. **मद्रास ६००-००५**

जैन पत्र-पत्रिकाएँ-विशेषांक : अभिमत

अद्वितीय

'तीर्थंकर' के अनेक विशेषांकों में यह अद्वितीय विशेषांक है, जिसमें अत्यन्त परिश्रमपूर्वक सन् १८७५ से १९७७ तक १०२ वर्ष की लगभग ४०० से अधिक जैन-पत्र-पत्रिकाओं का अकारादिक्रम व कालक्रम से खोजपूर्ण विवरण प्रकाशित किया गया है। डा. ज्योतिप्रसादजी जैन ने 'मेरी पत्रकारिता के पचास वर्ष' तथा श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'जैन पत्रिकाएँ : पहला पुरखा' में जैन पत्र-पत्रिकाओ और उनके संपादको, प्रकाशकों आदि के संबन्ध मे ऐतिहासिक परिचय एवं समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। भाषा की दृष्टि से मराठी और गुजराती जैन पत्र-पत्रिकाओं का उद्भव, परम्परा और विकास-कथा तथा अन्य अंग्रेजी, उर्दू, कन्नड़, तमिल, बंगला, संस्कृत, हिन्दी भाषाओं की पत्रिकाओं की इसमे अवधि एवं राज्यानुसार सारणी है। पुराने विशिष्ट सामाजिक पत्र सनातन जैन, ज्ञानोदय, जैन प्रकाश, जैन मित्र आदि पर स्वतंत्र लेख हैं। प. नाथूरामजी प्रेमी, श्री कापडियाजी व पं. परमेष्ठीदासजी की पत्रकारिता-सवन्धी सेवाओ का उल्लेख तथा महिला-पत्रकार चन्दावाईजी की स्मृति से यह अंक समर्पित किया गया है। इसी मे श्रीमती रमा जैन की जीवन-झांकी, व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय-सामग्री जोड़ कर विशेषांक को अधिक प्रभावशाली बना दिया है। इस विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण विशेषांक के प्रकाशन हेतु उभय विद्वान् संपादक-बन्धु धन्यवादार्ह है।

—**सन्मति-वाणी**, इन्दौर; दिसम्बर, ७७

सन्दर्भ ग्रन्थ

प्रस्तुत विशेषांक एक संदर्भ ग्रन्थ है, जिसे तैयार करने मे बडा परिश्रम करना पड़ा है। डा. नेमीचन्दजी ने विशेषांक का ऐसा विषय चुना जो आज तक अछूता था। इसमे बताया गया है कि जैन पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास १०२ वर्ष का इतिहास है। इस लम्बे युग मे कितनी पत्र-पत्रिकाएँ जन्मीं, पनपी, अद्यलौ जीवित हैं या अतीत में विलीन हो गयी — इन सबका समयानुक्रम, नामानुक्रम, भाषानुक्रम, प्रान्तानुक्रम, अवध्यनुक्रम से विवरण इस अंक में दिया गया है। यह बहुत बड़ी कमी थी जिसकी पूर्ति संपादकजी ने बहुत बड़ा श्रम के साथ की है। अंक में पत्रकारिता के संबन्ध में अनेक विद्वान् पत्रकारों के संस्मरण एवं जैन पत्रों के विकास सवन्धी पठनीय एवं पत्र-संपादकों के लिए मननीय सामग्री दी है। साथ ही श्री रमा जैन की स्मृति मे उनके संस्मरण आदि भी दिये है। अंक बड़ा सुन्दर, संग्रहणीय एवं पत्र-सपादकों को दिशाबोध करनेवाला है। इसके लिए संपादकजी धन्यवादार्ह हैं।

—**वीर-वाणी**, जयपुर; दिसम्बर, ७७

पठनीय

प्रस्तुत विशेषांक के आरम्भ के ६१ पृष्ठों मे विशिष्ट विद्वानों के पत्र-पत्रिकाओं पर खोजपूर्ण लेख है, जिनमे डा. ज्योतिप्रसाद जैन का लेख विशेष रूप से पठनीय है। तत्पश्चात् २० पृष्ठों मे जैन पत्र-पत्रिकाओं की भावी भूमिका पर एक परिचर्चा दी गयी है। इसके पश्चात् विशिष्ट विद्वानों के विचार दिये गये है। तत्पश्चात् ४० पृष्ठों मे जैन पत्र-पत्रिकाओ के बारे मे परिचयात्मक टिप्पणी दी गयी है। रमा जैन की स्मृति मे भी सामग्री है। प्रमुख संपादको के परिचयात्मक लेख है। पूरा अंक पठनीय है। साज-सज्जा आधुनिक है। डा. नेमीचन्द जैन की सूझ-बूझ व श्रम सराहनीय है।

—**जैनपथ प्रदर्शक**, विदिशा; १६ दिस., ७७

एक बड़े अभाव की पूर्ति

प्रस्तुत विशेषांक प्रकाशित कर 'तीर्थंकर' ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। विशेषांक में आरम्भ के ६१ पृष्ठों में विशिष्ट विद्वानों के पत्र-पत्रिकाओं पर खोजपूर्ण लेख हैं, जिनमें डा. ज्योतिप्रसाद जैन का लेख विशेष रूप से पठनीय है। तत्पश्चात् २० पृष्ठों में जैन पत्र-पत्रिकाओं की भावी भूमिका पर एक परिचर्चा दी गयी है। इसके पश्चात् विशिष्ट विद्वानों के विचार दिये गये हैं। तत्पश्चात् ४० पृष्ठों में जैन पत्र-पत्रिकाओं के बारे में परिचयात्मक टिप्पणी दी गयी है। इसी अंक में रमा जैन की स्मृति में लेख दिये गये हैं। अंक में प्रमुख संपादकों के बारे में लेख दिये गये हैं। पूरा अंक संकलन एवं पढ़ने योग्य है। प्रकाशन सुन्दर है। इसके प्रकाशन के में डा. नेमीचन्द जैन ने जो प्रयास किया है, उसके लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं।

—**वीर,** मेरठ, १५ नवम्बर ७७

एक अछूते विषय पर विवेचन

'तीर्थंकर' ने जैन पत्र-पत्रिकाएँ विशेषांक प्रकाशित कर समाज को एक अछूते विषय पर विवेचन करने के लिए बाध्य कर दिया है। प्रस्तुत विशेषांक से एक महत्त्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट हुआ है कि जैन पत्र-पत्रिकाओं ने एक शताब्दी पूर्ण कर ली है। इस शताब्दी के अन्तराल में निकली अधिकांश जैन पत्रिकाएँ (पत्र शब्द भी जोड़ना उपयुक्त नहीं है) दिवंगत हो चुकी हैं, कतिपय आज लंगड़ी फौज की सदस्य हैं एवं कुछ ऐसी अवश्य है, जिन पर संतोष प्रकट किया जा सकता है। जैन पटल के जैन पत्रकारों का आपसी रिश्ता नहीं के बराबर है, केवल परिवर्तन में पत्रिकाओं का ले-देकर लेते हैं। इसके सिवाय उन्होंने एक घोसले में एकत्र होकर आपसी सुख-दुःख पर विचार करने की कोई कोशिश नहीं की। अधिकांश के घोंसले ही अलग-अलग हैं। और वे एक-दूसरेके घोंसलों को बिखेरनेमें जुटी हुई हैं।

दरअसल बुनियादी सवाल यह है कि वर्तमान में निरन्तर कोई डेढ़ सौ पत्रिकाएं साहित्य, समाज या संस्कृति के प्रति क्या कोई योग कर पा रही हैं? अतिशयोक्ति की ऊँचाई तक उड़ान किये जाने के बाद भी साकार उत्तर देना कठिन है। जैन पत्रिकाओं का इससे अधिक कोई योग नहीं है कि वे नामों की एक लम्बी फेहरिश्त बना सकती है। बाकी अधिकांश तो समाज की रूढियों, परम्पराओं व संस्थाओं से प्रतिबद्ध होकर एक निश्चित सुर निकालने का अनिवार्य कष्ट भोग रही है। कई इश्तहार से अधिक नहीं है। न उन्नत स्तर का ध्यान है और न समाज के हित-अहित का कोई चिन्तन है। अपने घोंसलों की रहवासी बने रहने के बाद भी जैन पत्रिकाओं ने समाज व संस्कृति के उभय सवालों पर निर्भीक चिन्तन किया होता तो शायद समग्रता की जोड़ कुछ उपलब्धि तक पहुँच पाती, किन्तु ऐसा नहीं है।

जैन पत्रिकाओं पर समाज का भारी धन व शक्ति व्यय हो रही है। यदि सभी पत्रिकाओं के वार्षिक व्यय को जोड़ा जाये तो कम-से-कम पच्चीस लाख रुपये का आँकड़ा तो सरलता से अंकित किया जा सकता है। लेकिन यदि जैन पत्रिकाएँ अपनी उपयोगिता साबित करें, तो कई गुने रचनात्मक कार्य किये जा सकते हैं। पत्रकार समाज को बदल सकता है, जैन पत्रकार ऐसा प्रयत्न करें तब न।

आशा है कि 'तीर्थंकर' का उक्त विशेषांक समाज में नयी परिचर्चा को जन्म देगा, जिसकी गूँज समाज के हर मंच पर ध्वनित होगी और जैन पत्रकारिता वर्तमान शताब्दी के प्रति ईमानदार बनाने में कामयाब हो जाएगी।

—**शाश्वत धर्म,** मन्दसौर, १० दिस., ७७

परिश्रम पूर्णतः सफल—सार्थक

विशेषांक बहुत सुन्दर है। यह आपकी लगन, सूझबूझ, प्रतिभा तथा परिश्रम का

फल है । आप त्रुटियों की सूचना देने को लिखते है पर वह तो कही नजर नही आयी और अच्छाई की तो. कोई सीमा ही नही है । क्या मै इससे अच्छा कुछ पाता ? कव्हर से सामग्री तक सभी मनोज्ञ है । जैन पत्र-पत्रिकाओं का काल, स्थान व नामानुक्रमिका और ग्राफ सभी यथोचित है । आपका परिश्रम पूर्णत सफल हुआ है, सार्थक हुआ है । फिर भी आपकी आज्ञानुसार एक-दो कमियों का उल्लेख करूँगा ।

इस अंक मे श्रीमती रमाजी का रगीन चित्र इतना अधिक रंगीन है कि उनकी शालीनता को नष्ट करता है । इससे तो अच्छा होता वह रगीन नही होता । दूसरी कमी 'ले आउट' में स्थान का अत्यधिक उपयोग । इस संवन्ध में आपसे मेरा मतभेद हो सकता है । फिर भी मै कहूँगा कि जैन पत्र-पत्रिकाओ की कव्हर के जो ब्लाक अपनी सामग्री के साथ स्पेस न देकर छापा है उससे वह मन पर कोई 'इम्प्रेशन' नही डाल पाता । वैसे आपने दौड़-धूप करके जो यह सब सामग्री बटोरी, वह 'नेपोलियनिक' है ।

—गणेश ललवानी, कलकत्ता

एक सदी का इतिहास समाहित

बिलकुल आशा के अनुरूप इस विशेषाक के सौन्दर्य ने मुझ-जैसी भावुक को तो एक बार मन्त्रमुग्ध ही कर दिया । कितनी देर तक तो देखती रही कव्हर पर विभिन्न भाषी पत्रिकाओ की कतरन से लिखित 'तीर्थकर' शब्द को !

खोलने पर कुछ निश्चित ही नही कर पायी क्या पहले पढ़ूँ, क्या बाद मे । क्योकि दीपावली की कार्य-व्यस्तता जो थी । सभी लेख एक-से-एक उत्कृष्ट । विशेषांक के इस छोटे से कलेवर में कितनी निपुणता से समाहित किया है आपने एक सदी के दीर्घ इतिहास को । जैन पत्र-पत्रिकाए क्या थी, क्या है और उन्हे क्या होना चाहिये; सभी कुछ एक बारगी ही उभर कर स्पष्ट हो गया है । 'इंडेक्सिग' पर अथक परिश्रम करने के लिए राशि-राशि धन्यवाद! क्या ही अच्छा होता यदि आप लोगो जैसा कोई दूरदर्शी एवं साहसी व्यक्ति अव इन पत्रिकाओ के व्यक्तित्व का परिचय भी लिख डाले और इसी आधार पर उनका समूहीकरण भी करे ।

श्रीमती रमा जैन का पूर्ण परिचय प्राप्त कर हृदय उनके प्रति असीम श्रद्धा और गौरव से भर उठा है । अपने विलक्षण कार्यो से भारतीय नारी-जाति के इतिहास को कितना महिमान्वित किया है उन्होंने !

और आपका संपादकीय ? वह तो जहाँ भी है अपूर्व है, अभिनव है, कल्याणमय है ।

—राजकुमारी बेगानी, कलकत्ता

विचारोत्तेजक उपयोगी सामग्री

'तीर्थंकर' का रमा जैन स्मृतिपूर्ति-सहित जैन पत्र-पत्रिकाएँ-विशेषाक विद्वान् सपादक की सामयिक सूझबूझ, लगन एवं परिश्रम का सुपरिचायक है । जैन पत्रकारिता के इतिहास, विकास, स्वरूप, क्षमता एवं आवश्यकताओ के क्षेत्र मे अभी कितना कुछ होना अपेक्षित है, इस संबन्ध मे विचारोत्तेजक उपयोगी सामग्री से पूरित इस विशेषाक के प्रकाशन के लिए विद्वान् संपादक बधाई के पात्र है । साहित्यिक एव सास्कृतिक क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण अवलम्व स्व. रमाजी की स्मृति में संयोजित सामग्री भी उपयुक्त है ।

—डा. ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

विश्वकोश

एक ही सास मे सारा विशेषांक देख गया । जैन पत्र-पत्रिकाओ का वह विश्वकोश है । उसमे अतीत का इतिहास है, वर्तमान का विश्लेपण है और भविष्य की कल्पना है । सीमित पृष्ठों मे आपने 'गागर में सागर' की कहावत चरितार्थ कर दी है । वड़ा परिश्रम किया है आपने, और बड़ी ही सूझबूझ दिखाई है । इस अंक को पढ कर पाठकों का ज्ञानार्जन तो होगा ही, भावी

दायित्व का बोध भी होगा । मुझे पूरा विश्वास है कि पाठक इस अंक को एक बार पढ कर पटक नही देंगे, सहेज कर रखेंगे । मेरी हार्दिक बधाई, अभिनन्दन !

—यशपाल जैन, नई दिल्ली

संग्रहणीय

विशेषांक संग्रहणीय बन गया है। कई महत्त्व की गलतियाँ भी रह गयी है। कुछ नयी जानकारी भी फिर कभी दूँगा ।

मेरी राय मे रमा जैन सबन्धी सामग्री अलग अक मे देनी चाहिये थी । वह अंक महत्त्व का बन जाता । असंगति नही लगती ।

—अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

प्रत्याशा से कई गुना अधिक समृद्ध

जैन पत्रकारत्व विशेषाक मेरी प्रत्याशा से कई गुना अधिक समृद्ध निकला है । प्रत्येक लेख पढ जाने का लोभ होता है, पर अपनी समय-सीमा में वह कर नही पा रहा । जिस जैन समाज के लिए तुम खप रहे हो, वह इस पूरी जड़ व्यवस्था का केवल अग नही, बल्कि इस जड़त्व की 'जड़' मे बैठा है। इस जडत्व को तोडने के लिए ज्ञान काफी नही, उस ज्ञान को तलवार हो जाना पड़ेगा ।

तुम्हारी यह प्रतिभा, साधना और समय किसी व्यापक अखिल भारतीय 'रेज' की सांस्कृतिक पत्रिका निकालने में लगे, तो तुममें इतनी शक्ति है कि तुम एक सास्कृतिक 'रिनेसॉं'—पुनरुत्थान को लाने की मशाल खड़ी कर सकते हो ।

मेरी सलाह है कि अब 'तीर्थंकर' को ही एक व्यापक सांस्कृतिक—आध्यात्मिक-साहित्यिक पत्रिका मे परिणत कर दो । उसमे विशिष्ट जैन सामग्री को उच्च स्थान दो तो जैन विद्या अधिक व्यापक बौद्धिक जगत तक पहुँचेगी और तब यह पत्र अखिल भारतीय महत्त्व भी प्राप्त कर सकता है ।

—वीरेन्द्रकुमार जैन, बम्बई

श्रेष्ठ प्रयास

हिन्दी पत्रकारिता मे आपका प्रयास श्रेष्ठ है । जैन पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास संकलन कर उनकी प्रगति हेतु दिये गये सुझाव शायद आज का नेतृत्व न माने पर यह निश्चित है कि भविष्य समन्वय का है । वस्तु को यथोचित स्थान पर रखने की तथा उसे संजोने की जो कला आप मे है, वह आपको चूमने लायक है ।

—बाबूलाल पाटोदी, इन्दौर

बड़ी प्रसन्नता

विशेषाक के दर्शन कर बड़ी प्रसन्नता हुई । ...आपने इस अंक मे प्रेमीजी को उभारने का प्रयास तो किया है, जो सराहनीय है, पर प. जुगलकिशोरजी मुख्तार को कैसे भूल गए ? उनका स्वरूप प्रेमीजी से कुछ कम नही रहा है । वे कलम के धनी रहे है और उनकी कलम की वर्चस्विता को प्रेमीजी तक मानते थे । आशा है, इस ओर दृष्टिपात करेंगे ।

—कुन्दनलाल जैन, दिल्ली

सर्वथा अनुपम

विशेषाक सचमुच बहुत बड़े अभाव की पूर्ति है । सर्वथा अनुपम, महत्त्वपूर्ण, सुन्दर, सग्रहणीय । इस श्रेष्ठ एव अत्युपयोगी विशेषांक के लिए अन्तर हृदय से सप्रसन्न सादर शतश. साधुवाद !

—मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल', रतलाम

अपूर्व सूझबूझ

विशेषांक देख-पढकर मन आनन्दित हो गया । सच मानिए, एक-एक अंक आजीवन सदस्यता-शुल्क का मूल्य चुकाता है। पत्रकारिता के क्षेत्र में आपकी सूझ-बूझ अपूर्व है, आप जैन समाज को वरदान है ।

—नेमीचन्द जैन, शिवपुरी **(म.प्र.)**

चुम्बकीय आकर्षण

अन्य लेखन-कार्यों में अत्यधिक व्यस्त होने पर भी विशेषांक पढ़ने के लोभ को मैं

संवरण न कर सका। जब तक उसे न पढ़ा, तक तक चैन न पड़ा। प्रत्येक पृष्ठ पर आपकी प्रतापपूर्ण प्रतिभा झलक रही है। आप इतना बढ़िया लिखते है और इतना सुन्दर संपादन करते है कि पाठक को वह चुम्बक की तरह आकर्षित कर लेता है। कई बार आपकी संपादन-कला को देखकर मन में विचार आता है कि मैं भी इतना सुन्दर संपादन कर पाता तो कितना अच्छा होता। वस्तुत: आपकी कलम में जादू है। इतने श्रेष्ठ विशेषांक के लिए मेरे हृदय के कोटि-कोटि साधुवाद स्वीकार करे।

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री, बंगलोर

चिरस्मरणीय

विशेषाक देख और पढ़कर आपकी सफलता के लिए बधाई भेजता हूँ। यह अंक एक संदर्भ ग्रन्थ के रूप मे अपनी उपयोगिता के लिए हमेशा याद किया जायेगा।

—सुबोधकुमार जैन, आरा

सुपाठ्य सामग्री से भरपूर

विशेषांक वहुत सुन्दर बन पड़ा है। पढ़ने योग्य बहुत सामग्री हैं। प्रयास सफल रहा है।

—सतीश जैन, दिल्ली

मील का पत्थर

विशेषांक देखकर और आपके संपादकीय के अलावा उसके अनेक लेख पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। अंक के साथ बहुत परिश्रम आपने किया है और कहाँ-कहाँ से सामग्री जुटाई है। यह अंक संग्रहणीय ही नही किन्तु जैन पत्र-पत्रिकाओं के इतिहास को लिखने के लिए मील के पत्थर का काम देगा।

विभिन्न स्थानों, विभिन्न कालों, विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित इतने पत्र-पत्रिकाओं का संकलन-परिचय और सुधरी भाषा का प्रयोग एवं एक-सी धारा सभी स्तुत्य है, इसके लिए हृदय से वधाई! कुछ लेखकों ने तो पत्रों का परिचय क्या आत्मपरिचय ही दे डाला है। पर वह ऐसा नही, जो पाठकों को आकर्षित न करें।

—डा. दरबारीलाल कोठिया, वाराणसी

उत्कर्षांक

विशेषाक अपनी पूर्व परम्परा मे एक उत्कर्ष चिह्न है। संपादकीय 'बाद/एक सदी के' हमें विशेषाक का सार प्रदान करता है। इसमे जैन पत्र-पत्रिकाओं का एक सदी का शोधपूर्ण सिंहावलोकन है। अन्य लेखों में माणकचन्द कटारिया की परिचर्चा उस भूमिका को प्रस्तुत करती है, जो हमें प्राप्त करनी है।

इस विशेषांक मे 'रमा जैन स्मृति पूर्ति' अंश भी एक श्रद्धांजलिपूर्ण अभिनन्दन-ग्रन्थ का रूप प्रस्तुत करता है। विशेषांक का परिशिष्ट अपनी निराली शान के साथ कृतिकार यशस्वी संपादकों को एक भाव-भीनी श्रद्धांजलि है। 'तीर्थंकर' के इस उत्कर्षांक के लिए बधाई!

—डा. जयकिशनप्रसाद खंडेलवाल, आगरा

महान् और अनुपम देन

विशेषांक तो आपकी एक महान् व अनुपम देन है। 'जैन पत्र-पत्रिका-प्रदर्शनी' का आयोजन मुख्यत. उसी से प्रेरित है। आप ही इस आयोजन के प्रमुख प्रेरक हैं।

—रामस्वरूप गर्ग, पत्रकार; लाडनूँ

बड़ा उपादेय कार्य

विशेषांक में आपने बड़े परिश्रम से पत्र-पत्रिकाओं से संबन्धित सामग्री संकलित कर बड़ा उपादेय कार्य किया है। उसके लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये। यह अंक सब के लिए लाभदायक और संग्रहणीय है। इसके द्वारा एक स्थायी रूप से पत्र-पत्रिकाओं संबन्धी जानकारी सब के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—व्योहार राजेन्द्रसिंह, जबलपुर

प्रकाश-स्तम्भ

वैसे तो आजकल चाहे जिस ग्रन्थ के विषय मे 'संग्रहणीय' लिख देते है। पर 'तीर्थंकर' के विशेषाको की परम्परा मे यह (भी) एक सार्थक, सोद्देश्य और सग्रहणीय ग्रन्थ वनाया गया है। आपका श्रम आगामी कई पीढियो को प्रकाश-स्तम्भ-सा मार्गदर्शन कराता रहेगा। —सुरेश 'सरल', जबलपुर

उपयोगिता अपरिहार्य

विशेषाक देखकर मन प्रसन्न हो उठा। भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में आप का यह अथक परिश्रम अविस्मरणीय रहेगा। शोध के क्षेत्र में इस सन्दर्भ ग्रन्थ की उपयोगिता अपरिहार्य है।

श्रीमती रमारानी स्मृति-खण्ड भी कई पक्ष उजागर करता है उनके व्यक्तित्व के। उनको समर्पित एक स्मृति-ग्रन्थ ही निकलता चाहिये, प्रारूप उसका नयापन लिये हो। पुन. वधाई इस अनुष्ठान की सम्पूर्ति के लिए। —डा. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर

अद्भुत — असाधारण

विशेषाक अद्भुत है, असाधारण है। प्रत्येक पृष्ठ संग्रहणीय है। आप मे सपादन की अनूठी क्षमता और सूझबूझ है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करे।

—कन्हैयालाल सेठिया, कलकत्ता

आशातीत उपलब्धि

विशेपाक मे सामग्री का संयोजन अद्भुत है। इतने अच्छे अक की आशा नही की जा सकती थी। पर आशा से बहुत ऊपर की उपलब्धि हुई है। मै तो प्रसन्नता से गद्गद हो गया। बहुत-बहुत बधाइयाँ ! !

—बालचन्द्र जैन, जबलपुर

अनुप्रेक्ष्य स्थान

विशेषाक देखकर हृदय गद्गद हो उठा। उसे पढ़कर लगा कि एक सही और सफल पत्रकार ने जैन पत्र-पत्रिकाओ को समाचार-पत्र-जगत् मे अनुप्रेक्ष्य स्थान बना दिया है। इस श्रम-साध्य कार्य मे आपने अपने ललाट से कितना पसीना बहाया होगा, यह सहज अनुमेय है। आपकी कर्मठ क्रियाशीलता अविस्मरणीय है। पुण्यशीला स्व रमाजी की भी स्मृतियाँ आपने इसी में संजो दी है। धर्म, साहित्य और समाज की उन्नति तथा प्रचार-प्रसार में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान को कौन भूल सकता है। आपने उसे तरो-ताजा कर दिया। इस सब के लिए आपको बधाइयाँ !

—डा. भागचन्द्र जैन 'भास्कर', नागपुर

संपादन-कलाकी ऊँचाइयों को छूनेवाला

विशेपाक क्रम-क्रम से पढ़ा। इसके उत्तरार्ध मे छपी श्रीमती रमा जैन-स्मृति-पूर्तिवाली सामग्री और परिशिष्ट के रूप में दी गयी सारी सामग्री मैने विशेष रुचि के साथ पढी। जैन पत्र-पत्रिकाओ से संबन्धित सामग्री का भी अधिकाश पढ़ा। अपने इस विशेषाक के रूप मे 'तीर्थंकर' ने सपादन-कला की जिन ऊँचाइयों को छुआ है, उसके लिए मै समूचे 'तीर्थंकर'-परिवार का और उसके संपादक-मण्डल का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ और परम मगलमय परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि भारत के पत्र-जगत् मे 'तीर्थंकर' अपनी उज्ज्वल प्रखर सेवा द्वारा अद्वितीय बनता चला जाए।

—काशिनाथ त्रिवेदी, इन्दौर

सर्वप्रथम साहसिक प्रयास

विशेषाक को गहराई से पढा। यह मेरे खयाल से भारत मे पहला प्रयास 'तीर्थंकर' के माध्यम से आपने किया होगा। आपके इस साहसिक प्रयास के लिए किन शब्दो मे अभिनन्दन करूँ ? 'तीर्थंकर' ने पाठको के ज्ञान मे वृद्धि ही नही की, किन्तु व्यापकता का भी अध्ययन के लिए समय-समय पर अवसर दिया।

—मानव मुनि, इन्दौर

तीर्थंकर : और तीन वर्ष (मई १९७५ से अप्रैल १९७७)

वर्ष ४ (मई १९७४ से अप्रैल १९७५)

वर्ष ५ (मई १९७५ से अप्रैल १९७६)

वर्ष ६ (मई १९७६ से अप्रैल १९७७)

(संपादकीय : पृष्ठ ८ का शेष)

कोई कुछ देने आया तो उससे दुर्गुण माँगे, धन-वैभव नही माँगा,
व्यसन माँगे, असन या सिंहासन नहीं माँगा,
विपदा माँगी, संपदा नही माँगी;
उन्हें ऐसे लोग अपना सर्वस्व अर्पित करने आये जिनके पास शाम का खाना तक नहीं
और ऐसे लोग भी सब कुछ सौपने आये जिनके पास आनेवाली अपनी कई पीढ़ि
लिए भरण-पोषण था,
किन्तु उन्होंने दोनों से,
अहिंसा माँगी, जीव दया-व्रत माँगा, सदाचरण का संकल्प माँगा,
बहुमूल्य वस्त्र लौटा दिये, धन लौटा दिया;
इसीलिए हम संतत्व की इस परिभाषा को भी सजीव देख सके कि संत को कुछ नही च
उसका पेट ही कितना होता है?
और फिर वह भूखा रह सकता है, प्यासा रह सकता है, ठंड सह सकता है, लू झेल सक
मूसलाधार वृष्टि उसे सह्य है,
किन्तु यह सह्य नही है कि
आदमी आदमी का शोषण करे,
आदमी आदमी का गला काटे,
आदमी आदमी को धोखा दे,
आदमी आदमी न रहे ।
उसका सारा जीवन आदमी को ऊपर
और ऊपर,
और ऊपर,
उठाने में प्रतिपल लगा रहता है। संतों का सबमें बड़ा लक्षण है उनका मानवीय
करुणामय होना, लोगों की उस जुबान को समझना जिसे हम दरद कहते है, व्यथ
भाषा कहते है।
मुनिश्री चौथमलजी की विशेषता थी कि वे आदमी के ही नही प्राणिमात्र के व्यथा-
को समझते थे, उनका आदर करते थे, और उसे दूर करने का प्राणपण से प्रयास कर

आये, व्यक्ति-क्रान्ति के अनस्त सूरज को प्रणाम करे,
ताकि हमारे मन का, तन का और धन का आँगन किसी सास्कृतिक धूप की गर
महसूस कर सके,
और रोशनी ऐसी हमे मिल सके जो अबुझ है,
वस्तुतः मुनिश्री चौथमल एक ऐसे सूर्योदय है, जो रोज-ब-रोज केवल पूरब से नही
दिशाओ से ऊग सकते है,

क्या हम सूर्यवंशी होना पसद करेगे ? □

श्री जैन दिवाकर महाराज सूझ-बूझ के धनी थे। वे सुदूरदर्शी भी थे। अनेक प्रसंगों पर –सामाजिक या व्यक्तिगत–उनकी दूरदर्शिता और गंभीरता को देखा जा सकता था। आत्मीयता, सब के लिए, उनके मन मे इतनी थी, कि शायद आसमान की व्यापकता और सिन्धु की गहराई का माप भी उसके लिए बौना पड़ सकता था। भेदभाव वे जानते ही नही थे। अमीर कौन, गरीब कौन; राजा कौन, रंक कौन; छोटा कौन, बड़ा कौन– यह बात उनके मन में कभी उठती ही नही थी। सब के प्रति एक समभाव, एक निर्मल ममभाव उनके हृदय मे हर क्षण बना रहता था।

'दुनिया में चार अच्छी बातें कम हो गयी है और चार बुरी बातें फैल गयी हैं। वे चार बातें कौन-सी है? दया, दान, सत्य और शील। इन चार के कम होने से झूठ, फूट, लूट और माथाकूट की अधिकता हो गयी है। —मुनि चौथमल

जैन जगत् के क्रान्तदृष्टा मनीषी जैन दिवाकर जगत्वल्लभ प्रसिद्ध वक्ता

पंडित मुनिश्री चौथमलजी म.

के

पावन चरणों में शतशत वंदन

हम हैं आपके

श्री जैन दिवाकर जन्म-शताब्दी समारोह महासमिति के कार्यकर्तागण :

संरक्षक	: श्री सुगनमल भंडारी
,,	: श्री हेमराज संघवी
अध्यक्ष	: श्री फकीरचन्द मेहता
उपाध्यक्ष	: श्री पूनमचन्द जैन
	: श्री लक्ष्मीचंद तालोड़ा
	: श्री सुजानमल मेहता
	: श्री कन्हैयालाल नागोरी
	: श्री सुजानमल चाणोदिया
महामंत्री	: श्री चांदमल मारू
	: श्री बापूलाल बोथरा
कोषाध्यक्ष	: श्री शान्तिलाल धाकड़
प्रबन्ध-मंत्री	: डॉ. प्रेमसिंह राठौड़
मंत्री	: श्री अभयराज नाहर
	: श्री सोभागमल कोचट्टा
	: श्री नाथूलाल चंडालिका
	: श्री शान्तिलाल नाहर
	: श्री वर्द्धमान चाणोदिया
प्रचार-मंत्री	: श्री हस्तीमल झेलावत
	: श्री मानवमुनि

श्री. जे. एल. जैनी ट्रस्ट, इन्दौर

(१) न्यास का पूरा पता— श्री जे. एल. जैनी ट्रस्ट,
"सुविज्ञान", ९/१, न्यू पलासिया, इन्दौर-४५२ ००१
टेलीफोन नं. ७४२७

(२) न्यास के निर्माण का वर्ष—दिनाक १८-४-१९२६

(३) न्यास के निर्माता एव न्यासियों (ट्रस्टियों) के नाम एवं पते—

निर्माता—

राय बहादुर स्व. जस्टिस जगमन्दरलालजी जैनी, एम. ए. बैरिस्टर-एट-ला,
भूतपूर्व चीफ जस्टिस, तत्कालीन होल्कर स्टेट, इन्दौर

ट्रस्टीज—

१. श्री शिरोमणिचन्द्र जैन, ९/१, न्यू पलासिया, इन्दौर-१ (म. प्र.)
२. श्री एम. एम. जैन, बी. कॉम. सेन्ट्रल इडिया काटन एसोसिएशन, छोटा सराफा, उज्जैन (म. प्र.)
३. श्री चन्द्रप्रकाश जैन, एम. काम., ९/१, न्यू पलासिया, इन्दौर-१ (म. प्र.)

(४) पंजीयन क्रमांक— पंजीयन सार्वजनिक न्यास
क्यू।रीडर।१।४६।६४—६४ दिनाक ३०-९-६४

(५) आयकर के भुगतान का स्थायी खाता क्रमाक— **18-000-ए.जेड-2942** इंदौर (सी)

(६) न्यास के उद्देश्य— जैन धर्म का प्रचार व प्रसार मानव कल्याण हेतु व जैनी सा. की अप्रकाशित पुस्तकों का प्रकाशन आदि।

(७) न्यास की वार्षिक आय एवं व्यय (तीन सर्ष का)

	आय :	व्यय :
१९७३	रु. ७,८८६-३१	रु. ४,५६०-२५
१९७४	रु. ८,९१०-९४	रु. ८,९१२-१७
१९७५	रु. ११,३९३-८९	रु. १०,५९७-९५

(८) चल संपत्ति जिससे आय प्राप्त होती है—करीब रु. १,१०,०००)

(९) आवश्यक जानकारी:—ट्रस्ट, बाल साहित्य निर्माण या उपलब्ध हो उससे वितरित करने, बालको में जैन संस्कार बनाने, पोस्टर, बोर्ड, पत्थर के शिलालेख, लगवाने में और जैन-लायब्रेरीज को जैन साहित्य अर्धमूल्य में देने मे रुचि रखता है।

श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक-संघ

महावीर भवन, इमली बाजार, इन्दौर (मध्यप्रदेश) के

सदस्यगण :

श्री जैन दिवाकर, प्रसिद्ध वक्ता

पंडित मुनिश्री चौथमलजी महाराज

के

जन्म-शताब्दी-समारोह पर

अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते है :

शताब्दी-वर्ष में मालव-केसरी श्री सौभाग्यमलजी म., पंडित मुनिश्री रामनिवासजी म., कविरत्न श्री केवलमुनिजी, पंडित श्री जीवनमुनिजी म. एवं आदरणीया सतीयांजी आदि के वर्षावास में यहाँ जो प्रेरणा प्राप्त हुई उससे हमारा हृदय आपके प्रति श्रद्धानत हो रहा है :

हम हैं आपके श्रावक संघ

अध्यक्ष : श्री सुगनमल भंडारी

उपाध्यक्ष : श्री हस्तीमल जैन, भँवरलाल धाकड़

महामंत्री : श्री राजमल जैन

चातुर्मास-समिति

संयोजक : फकीरचंद मेहता

उपसंयोजक : हस्तीमल झेलावत

कोषाध्यक्ष : मोहनलाल बोरा

भोजन-संयोजक : फूलचंद जैन (सवाई माधोपुर वाले)

'ज्ञानी और धर्मनिष्ठ पुरुष मृत्यु के सामने उपस्थित हो जाने पर भी दुःखी नहीं होते। मृत्यु उनके लिए एक सामान्य प्राकृतिक नियम ही है।

—मुनि चौथमल

श्री महेन्द्र मुनि 'कमल' फाउन्डेशन

(1) ट्रस्ट का नाम : श्री महेन्द्र मुनि 'कमल' फाउन्डेशन
'सुविज्ञान', ९/१, न्यू पलासिया, इन्दौर-४५२ ००१ (म. प्र.)

(2) स्थापना-तिथि . १३-९-१९७६

(3) ट्रस्टकर्ता : श्री गुलाबचन्द आत्मजश्री चम्पालालजी भंडारी

(4) वर्तमान ट्रस्टीज़ :

(5) उद्देश्य : कवि श्री महेन्द्र मुनिजी 'कमल' द्वारा लिखित पुस्तकों का प्रकाशन तथा अन्य धार्मिक कार्य।

(6) ट्रस्ट की मूल रकम . २१,०००)

(7) अभी तक का प्रकाशन : "इन्द्र-धनुष" का प्रकाशन हुआ है।

शिरोमणिचन्द्र
ट्रस्टी-मंत्री

'संसार में ऐसी कोई अभिलाषा नही है, जिसकी तपस्या से पूर्ति न हो सके और ऐसी कोई प्राप्त वस्तु नही है जो तपस्या से प्राप्त न हो सके।

—मुनि चौथमल

'जैसे अमृत का पान करने के पश्चात् खारा पानी रुचिकर नहीं हो सकता, उसी प्रकार सत्य-स्वरूप प्रभु का साक्षात्कार हो जाने पर अन्य कोई भी रूप आँखों को रुचिकर नहीं होता।

—मुनि चौथमल

'किसी को बुरा-भला कहने से, बदनाम करने से काम नहीं चलता; काम चलता है न्याय से। इस न्याय के पीछे सत्य का बल होना चाहिये।

—मुनि चौथमल

'प्रत्येक आत्मा हीरे के समान है। उसमें अपनी स्वाभाविक चमक है।

—मुनि चौथमल

'जैसे दीपक से प्रकाश भिन्न नही है, मधु से मिठास पृथक् नहीं है, और मक्खन से चिकनापन अलग नहीं है, उसी प्रकार आत्मा से ज्ञान भिन्न नही है।

—मुनि चौथमल

'कपटी मनुष्य जितना नीचा नमता है, उतना ही खतरनाक होता है और उतना ही हानि पहुँचाता है।

—मुनि चौथमल

'संसार में स्वार्थ की आत्मीयता है। सरोवर जब तक जल से परिपूर्ण रहता है, तब तक पक्षीगण उसके किनारे-खड़े वृक्षों पर चहचहाते है, जैसे सरोवर की स्तुति कर रहे हों; मगर जब जल सूख जाता है, तो उड़ जाते है।

—मुनि चौथमल

'जाति, कुल, धन, वैभव आदि किसी गिनती में नहीं है। असल में गुणों की ही प्रतिष्ठा है, इन्हीं की कीमत है। गुणों से ही आत्मा का उद्धार और कल्याण होता है।

—मुनि चौथमल

···किन्तु भूलकर भी आत्महत्या नहीं करूँगा

"गुरुजी ! मै आत्महत्या करने के लिए जंगल मे जा रहा हूँ ।" एक वेझिझक आवाज ने श्री जैन दिवाकरजी महाराज को भीलवाड़ा से आगे बढते हुए चौका दिया । पीछे से आयी यह अनजानी आवाज एक घवराये हुए निराश युवक की थी । 'आत्महत्या' शब्द सुनकर श्री गुरुदेव के चरण वही रुक गये । करुणार्द्र स्वर मे गुरुदेव ने पूछा । "ऐसी कौनसी मुसीवत तुझ पर मडरा रही है जिससे परेशान होकर तू अपने अमूल्य जीवन का अन्त करना चाहता है ?"

बड़े ही आर्त स्वर मे वह युवक वोला—"गुरुजी, मेरे पिता ने वहुत तकलीफ बर्दाश्त कर मुझे वी. ए. तक पहुँचाया । मैने भी डटकर अध्ययन किया, पेपर भी अच्छे हुए, किन्तु कर्मो की माया । सारे उत्तर ठीक होते हुए भी कल जव नतीजा निकला तो अखवार मे कही भी मेरा नामोनिशान नही था, अर्थात् मेरा रोल नम्वर ही नही था, आप ही वताये प्रभु, ऐसी स्थिति मे मै कैसे, किसको मुँह दिखाऊँ ?"

महाराज श्री ने सान्त्वना देते हुए कहा—"आश्चर्य और लज्जा की वात है कि एक साधारण असफलता से विचलित होकर तुम मरने के लिए तैयार हो गये; अगर कही इससे भी भारी विपत्ति आ जाए तो तुम उसे कैसे सहन करोगे ? तुम जैसे भीरु हृदय युवक से भारत माता क्या अपेक्षा करेगी ? तुम उसके पैरो मे जकड़ी गुलामी की जजीरे कैसे काट सकोगे ? देखो वत्स ! आत्मघात किसी समस्या का समाधान नही है । तुम्हारे 'कर्मो की माया' सचमुच ही तुम्हारे साथ रहेगी, सफलता और विफलता कर्म की फलश्रुति है । अस्तु, बिना किसी उद्विग्नता के निष्ठापूर्वक और परिश्रम के साथ अपने कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होते रहना ही पौरुष है ?"

नितान्त वोधगम्य शैली मे उस विद्यार्थी को बोध प्रदान करते हुए महाराज श्री कुछ क्षण आत्मस्थ रहने के पश्चात् आदेशात्मक स्वर मे वोले—"वत्स ! अभी तू मेरे साथ सीधे शहर चल और कल का दैनिक पत्र देखकर फिर मेरे पास आना; सम्भव है तेरी समस्या का कोई समाधान सामने आ जाए ।"

वैसा ही हुआ, दूसरे दिन उस विद्यार्थी के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा जव उसने अपने रोल नम्वर को उसी दैनिक पत्र मे 'भूल सुधार' नोट के साथ उत्तीर्ण सूची मे देखा ।

युवक सीधे गुरुदेव के चरणो मे उपस्थित हुआ और उसने आभार प्रकट करते हुए श्री-गुरुदेव को एक शुभेच्छु के रूप मे वार-वार प्रणाम किया । अपने तृतीय श्रेणी मे उत्तीर्ण होने के शुभ संवाद से भी उन्हे अवगत कराया जिस पर प्रसन्न होकर महाराजश्री ने आगे के लिए मार्गदर्शन दिया—"इस वात का हमेशा ध्यान रखना चाहिये कि हम क्षणिक आवेश में आकर कोई ऐसा कार्य न करे जिससे सभी परेशानी म पड़ जाएँ और तुम्हारे जैसे मेधावी तथा होनहार युवक को तो और भी सोच-विचार कर कोई कदम वढाना चाहिये ।"

"अव चाहे जैसी दुस्सह विपत्ति क्यो न आ जाए उससे निपट लूँगा, किन्तु भूलकर भी आत्महत्या नही करूँगा ।" इस सुदृढ़ संकल्प के साथ वह उत्तीर्ण छात्र अपने गाँव की ओर चला गया । □